गुरु की वाणी
प्रभु कहानी

गुरु ग्रंथ साहिब के शबदों पर
जिज्ञासुओं व साधकों के बीच सदगुरु
ओशो की दृष्टि पर आधारित
स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती के 22 प्रवचन

अनुक्रमांक

लोभ की लहरों में डूबता आदमी

लोभ लहरि अति नीझर बाजै।
काइआ डूबे केसवा।। 1।।
संसारु समुंदे तारि गोबिंदे।।
तारि लै बाप बीठुला।। 1।। रहाउ।।
अनिल बेड़ा हउ खेवि न साकउ।।
तेरा पारु न पाइआ बीठुला।। 2।।
होहु दइआलु सतिगुरु मेलि तू मोकउ।।
पारि उतारे केसवा।। 3।।
नामा कहै हउ तरि भी न जानउ।।
मोकउ बाह देहि बाह देहि बीठुला।। 4।।

प्यारे मित्रो, नमस्कार! आज के इस सत्र में सभी जिज्ञासु मित्रों का स्वागत है।

आओ, इस प्यारे शबद के भावार्थ का रसपान करें–

लोभ लहरि अति नीझर बाजै काइआ डूबे केसवा।

संत नामदेव कहते हैं कि हे भगवन्, हे केशव, मैं डूब रहा हूं लोभ की लहरों में।

संसारु समुंदे तारि गोबिंदे, तारि लै बाप बीठुला।

अर्थात्, हे प्रभु! मुझे इस समुद्र से उबारो, बचाओ। याद रखना, संत जिसे भवसागर कह रहे हैं, संसार समुंद कह रहे हैं, वह बना है लोभ की लहरों से जिसमें हम डूब रहे हैं। लोभ हमें जीने ही नहीं देता, बस हम जीने का इंतजाम ही करते रहते हैं। वह इंतजाम ऐसा है जो कभी पूरा हो ही नहीं सकता क्योंकि लोभ में एक अद्‌भुत लचीलापन है, इलास्टीसिटी है; वह फैलता ही चला जाता है, बड़े से और बड़ा होता चला जाता है।

पूरा जीवन खत्म हो जाता है लेकिन वे कामनाएं कभी पूरी नहीं हो पाती हैं। जितनी पूरी हो जाती हैं उससे और आगे निकलती जाती हैं– क्षितिज के समान। यह लोभ की खूबी है। हम जितने आगे बढ़ते हैं वह हमसे और भी आगे बढ़ जाता है। कोई व्यक्ति कभी क्षितिज को नहीं छू सकता। हां, इस छूने की कोशिश में उसकी जिंदगी बरबाद हो जाएगी। यह जो लोभ है, यह डुबाने वाला है।

तो संसार समुंद को खूब अच्छे से समझ लेना– यह जो वस्तुगत संसार नजर आ रहा है, ये नदियां और पहाड़, वृक्ष, मनुष्य, जानवर, पशु–पक्षी, धरती–आकाश, यह संसार नहीं है जो डुबा रहा है, यह तो हमारे जीवन में सहयोगी है। जो चीज हमारे जीवन को नष्ट कर रही है वह है लोभ की लहर।

लोभ लहरि अति नीझर बाजै काइआ डूबे केसवा,
संसारु समुंदे तारि गोबिंदे तारि लै बाप बीठुला।
अनिल बेड़ा हउ खेवि न साकउ, तेरा पारु न पाइआ बीठुला।

नामदेव कहते हैं पाल वाली नाव चलाने की कोशिश कर रहा हूं किन्तु वह भी काम नहीं आ रही।

नामा कहै हउ तारि भी न जानउ,

मुझे तो तैरना भी नहीं आता, पतवार चलाना भी नहीं आता, पाल वाली नाव भी काम नहीं आ रही। जो–जो मैं कर सकता था सब कर लिया।

तेरा पारु न पाइआ बीठुला।

इस संसार का मैं पार नहीं पा रहा हूं, मैं क्षितिज तक नहीं पहुंच पा रहा हूं।

होहु दइआलु सतिगुरु मेलि तू मोकउ, पारि उतारे केसवा।

हे प्रभु! दया करके सद्गुरु से मिलवा दें ताकि यह बात समझ में आ सके कि मैं पार क्यों नहीं हो पा रहा, क्यों डूबता जा रहा हूं?

मोकउ बाह देहि बाह देहि बीठुला।

हे प्रभु! मुझे सहारा दो और सहारे की विधि क्या है? सद्गुरु से मुलाकात हो जाए जो यह बात समझी जा सके कि कौन सी चीज डुबा रही है।

काम में ग्रस्त व्यक्ति के अपने तर्क होते हैं, वह डूब रहा है यह बात तो उसको पता है। वह जी नहीं पा रहा है ठीक से, यह बात भी उसे पता है; लेकिन उसके तर्क उससे क्या कहते हैं? पहली बात उसका मन कहता है कि तुम ठीक से दौड़ नहीं रहे हो, देखो अन्य लोग आगे निकलते जा रहे हैं। और यह बात तार्किक भी लगती है और इसका प्रमाण भी दिखाई देता है। ऐसा लगता है कि हमसे तीन-चार किलोमीटर आगे जो लोग हैं, वे क्षितिज के पास पहुंच गए और हम पीछे रह गए तो हम कमजोर हैं, हम उतने चालाक नहीं हैं। अन्य लोग जो आगे निकल गए वे ज्यादा होशियार थे, ज्यादा शक्तिशाली थे, ज्यादा चालाक थे। देखो, वे क्षितिज के बिल्कुल पास पहुंच गए, उन्होंने पा लिया। पहला तर्क और काफी बड़ा प्रमाण भी इसका है जो कि स्पष्ट दिखाई दे रहा है। काश हम और तेजी से दौड़ना शुरू करते।

दूसरा तर्क हमारा मन प्रस्तुत करता है- जब और तेज दौड़-दौड़ के भी हम नहीं पा पाते, तब हम कहते हैं कि हम जो पाना चाह रहे हैं, जीवन का आनंद वह है ही नहीं। ऐसी कोई चीज होती ही नहीं, सब बकवास है, सब झूठ है। जीवन में कोई शांति संभव नहीं, कोई आनंद संभव नहीं, जीवन निरर्थक है। इसमें भी हम कहेंगे कि हमें पूरा अनुभव है, पूरा सबूत है। आनंदित होने के लिए इतनी भाग-दौड़ की और नहीं हो पाए। और-और दुख में फंसते चले गए, यह काफी वजनदार प्रमाण है कि जीवन निरर्थक है। जीवन का कोई सार ही नहीं है।

पिछली सदी में पश्चिम में एक बड़ा मूवमेंट हुआ उसे कहते हैं वे 'एग्ज़िस्टेंशियलिज्म'। उनका मुख्य बिन्दु यही है कि जीवन में कोई सार ही नहीं है, यह कैसी मूर्खतापूर्ण कहानी है जिससे कोई अर्थ नहीं निकलता। और उन लोगों का मानना है कि इसलिए आत्महत्या कर लेना ही एक समझदारी का काम है। जीवन को जीना ही व्यर्थ है, मूर्ख लोग हैं वे जो जिंदा हैं। समझदार आदमी तो सुसाइड कर ले। कायर लोग हैं जो जिंदा हैं यह जानते हुए कि जिंदगी को कोई मतलब नहीं है। जो साहसी हैं, वीर हैं, उनकी जीने की हिम्मत नहीं पड़ रही है। वे तो कब के मर चुके।

ये दोनों विचित्र तर्क हैं और दोनों में ही बहुत मजबूत प्रमाण नजर आता है।

नामदेव कह रहे हैं कि जब तक प्रभु कृपा से कोई सद्‌गुरु न मिल जाए तब तक बात पकड़ में नहीं आने वाली। क्योंकि हमारे जीवन के तर्क, हमारे प्रमाण, अपनी आंखो देखी बात, अपना खुद का अनुभव तो यही कहता है। पहले कहता था और तेजी से दौड़ो, खूब दौड़ के जब बुरी तरह थक जाते हैं तब समझ में आता है कि जीवन निरर्थक है, बिल्कुल व्यर्थ है, बकवास है।

तीसरी बात हमें अपने आप कभी समझ में नहीं आती और वह यह कि जीवन का अर्थ लोभ में नहीं, क्षितिज पकड़ने की दौड़ में नहीं, जीवन का अर्थ तो अभी, तुरंत, वर्तमान के क्षण में है, जहां हम खड़े हैं वहीं। क्षितिज तक पहुंचने में नहीं, जहां हम हैं इसी क्षण में, तुरंत, नाउ एण्ड हियर, वहीं जीवन का सार छिपा है। इसलिए किसी दौड़ की आवश्यकता नहीं है, किसी प्रतियोगिता में आगे निकलने की बात नहीं है।

जीवन अपने आप में आनंदमय है, उसका स्वभाव ही आनंद है। उसको पाने की कोशिश नासमझीपूर्ण है, वह तो अभी, तुरंत में है। लेकिन जिस व्यक्ति की नजर दूर कहीं अटकी है पहले वह उस तरफ भागने की कोशिश करेगा, उसको पकड़ने की कोशिश करेगा और जब पकड़ में नहीं आएगा तब भी वह एक निराशाजनक निष्पत्ति में पहुंच जाएगा कि यह सब व्यर्थ है। उसका यह निष्कर्ष भी गलत है। जीवन बहुत सार्थक है, बहुत आनंदपूर्ण है बशर्ते कि भागना छोड़ो, रुको, जीवन को जियो।

प्रेम समाधि में मैं आपसे यह भी स्पष्ट करना चाहूंगा कि अंग्रेजी का जो शब्द है प्रेम के लिए 'लव' वह संस्कृत के लोभ धातु से ही बना है। उसकी स्पेलिंग अगर आप देखें, और आपको पता न हो कि इसका उच्चारण क्या है तो आप उसका उच्चारण लोभ ही करेंगे। लोभ में हम कामना से भरे हुए हैं। हम कहते हैं कि हम फलां चीज को चाहते हैं, हमारी चाहत में उस पर कब्जा जमाने की इच्छा है, इसका नाम है लोभ। और प्रेम जो है इसका ठीक विपरीत है, उसमें कब्जा जमाने की कोशिश नहीं है, उसमें कब्जा जमाने की चाहत नहीं है, माल्कियत की चाहत नहीं है। प्रेम कुछ बात ही अलग है, वह भिखमंगापन नहीं, वह दान है। लेकिन दान तो वही कर सकता है जो आनन्दित हो, जो कुछ बांट सके, दे सके।

लोभी व्यक्ति तो महाकंजूस होता है, उसके पास तो कुछ है ही नहीं, देने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता। वह तो और लेने की कोशिश में है, छीना-झपटी की कोशिश में है। एक में देने का भाव है, एक में लेने का भाव है। लोभ का उल्टा दान। लेकिन चूंकि यह वास्तविक प्रेम दुनिया में नजर ही नहीं आता और इसलिए हम अपनी तमन्नाओं को, अपनी चाहतों को, अपनी वासनाओं को ही प्रेम का नाम दे देते हैं और दुनिया में जो प्रचलित है प्रेम के नाम पर वह है लोभ, भांति-भांति के लोभ। हम उसी को प्रेम समझते हैं। इस बेसिक कन्फ्यूज़न से मुक्ति पाना है, इस भ्रम से उबरना है।

लोभ डुबाने वाली बात है, कीचड़ है, और प्रेम उबारने वाला तत्व है, दोनों बिल्कुल ही विपरीत हैं एक–दूसरे के, जितने विपरीत हो सकते हैं उतने विपरीत हैं। आश्चर्य है कि इन दोनों को एक समझा जाता है। यहां तक कि अंग्रेजी में लव शब्द ही बन गया प्रेम के लिए। क्योंकि यही नजर भी आता है, सब लोग इसी में लगे हुए हैं लोभ में कि यह पाना है, वह पाना है और जिससे पाना है उसे वह कहते हैं कि उससे हमें प्रेम है। वह व्यक्ति हो, कोई विशेष परिस्थिति हो, कोई वस्तु हो, नाम हो, प्रतिष्ठा हो, इज्जत हो।

जो कुछ भी हो जिसे वह पाने की सोच रहे हैं जिसका लोभ उनके भीतर है वह कहते हैं मुझे फलां व्यक्ति से प्रेम है। अर्थात् मैं उसे पाना चाहता हूं, उस पर कब्जा जमाना चाहता हूं, मैं उसका मालिक हो जाना चाहता हूं। और नामदेव कह रहे हैं यही लोभ लहर है संसार के समुद्र का जिसमें डूब रहा हूं। न तैर पाता हूं, न पतवार चला पाता हूं, न पाल वाली नाव काम आती, कोई भी उपाय नहीं लग रहा उस पार पहुंचने का।

वह क्षितिज जैसा है, बस दिखाई देता है और वास्तव में वह है नहीं। किन्तु हमें यह बात अपने अनुभव से समझ नहीं आती, हमारा मन तो उल्टा ही तर्क देता है। और इसलिए यह प्रार्थना कि हे प्रभु दया करो किसी सद्गरु से मिलन हो जाए तो शायद उबरना हो जाए, अपने बलबूते पर तो मुश्किल लग रहा है। क्योंकि हम तो अगर धर्म में भी उत्सुक होंगे, ध्यान में और अध्यात्म में भी अगर रुचि लेंगे तो किसी लोभ और लालच के कारण ही, यह याद रखना।

हमारा लोभ फिर एक नई दिशा पकड़ेगा कि ठीक है संसार के क्षितिज नहीं मिले कोई बात नहीं, यह धन, संपत्ति, शक्ति, राजनीति, व्यक्ति, चलो छोड़ते हैं इनको कोई बात नहीं, मोक्ष को पाकर रहेंगे, बुद्धत्व को पाकर रहेंगे, निर्वाण जरूर हासिल करके रहेंगे, मरने के बाद स्वर्ग जाएं इसका इंतजाम तो कर ही लेंगे। लोभ ने फिर एक नई दिशा पकड़ी। तो धर्म में जो लोग उत्सुक भी होते हैं उनका बुनियादी कारण ही गलत होता है और इसलिए फिर सारी की सारी यात्रा गलत हो जाती। बिल्कुल स्टार्टिंग प्वाइंट ही गलत है। नामदेव का कहना बिल्कुल ठीक है, तैरने की कोशिश की, पतवार चलाने की कोशिश की, पाल वाली नाव की कोशिश की लेकिन कोई भी काम नहीं आ रहा। कुछ बात बन नहीं रही, कुछ सूझबूझ काम नहीं कर रही, सद्गुरु से मिलन एक नई घटना बनता है।

सद्गुरु जो संदेश देते हैं वह बहुत ही संक्षिप्त है। वे कहते हैं कि अभी और यहीं मजा लेना शुरू कर दीजिए। किसी चीज को 'पोस्टपोन' न करो, कल के लिए या अगले क्षण के लिए। कुछ होने वाला है, कुछ घटने वाला है, कुछ पाने वाले हो, उसके

बाद मजा करोगे... अगर ऐसी धारणा है तो फिर कभी न कर पाओगे। जीवन के प्रति प्रेमपूर्ण होओ अर्थात् जो है, जो उपलब्ध है, जो तुम हो, जहां तुम हो, वहां प्रेमल हो जाओ। यही एक चीज है जो लोभ से मुक्ति बन सकती है, स्वर्ग की कामना नहीं, बुद्धत्व की कामना नहीं, निर्वाण की कामना नहीं और मोक्ष की कामना नहीं। वे तो फिर लोभ के ही नए–नए एक्सटेंशन्स हैं, नाम बदल गया बात वहीं की वहीं है कि भविष्य में कुछ होगा।

लोग आते हैं और पूछते हैं कि हम ध्यान तो करेंगे लेकिन इसका लाभ क्या होगा, वही व्यवसायी चित्त फिर आ गया। अगर कोई उनको समझा दे कि इससे लाभ होगा तो उनका लोभ भड़क जाएगा, वे ध्यान करने के लिए तैयार हो जाएंगे लेकिन स्टार्टिंग प्वाइंट ही गलत हो जाएगा। फिर वे इंतजार करते रहेंगे कि कब वह लोभ पूरा होगा। वे अभी, यहां, इस क्षण में जिएंगे ही नहीं और वस्तुतः कहो तो कहना पड़ेगा कि उनको ध्यान कभी घटा ही नहीं। क्योंकि ध्यान का अर्थ तो है अभी और इसी क्षण में जीना। पर वे उसके लिए तैयार ही नहीं हैं, उन्होंने तो ध्यान के द्वारा भी भविष्य के इंतजाम के लिए कोशिश करनी शुरू कर दी। ध्यान के द्वारा भी कुछ मिलेगा।

परन्तु, वास्तव में ध्यान स्वयं में उपलब्धि है, कुछ और मिलने का सवाल नहीं है। ध्यान का अर्थ है वर्तमान में होना, अभी और यहीं में होना। लोभ से मुक्ति का एक ही उपाय है, इस लहर में डूबने से बचने का एक ही उपाय है वर्तमान के क्षण के प्रति प्रेम। अभी हम जहां हैं, जो हैं, उससे लगाव, उसे ठीक से जिएं। उससे भागें नहीं, हमारा लोभ हमें हमेशा दौड़ाता रहता है, भगाता रहता है। जो है उससे हम राजी नहीं हैं, कुछ और चाहिए।

प्यारे मित्रों, आपके मन में भी दो प्रकार के तर्क चलते होंगे कि जीवन का आनंद क्यों नहीं पा रहे हैं। पहला तर्क यही आएगा कि हम कुछ कमजोर थे, हम पीछे रह गए और अन्य लोग आगे निकल गए और उन्होंने पा लिया। और जिन लोगों ने खूब भागदौड़ कर ली उनको फिर दूसरा तर्क रास आता है कि जिंदगी ही व्यर्थ है बिल्कुल, हम भ्रम में पड़ गए थे। ये दोनों तर्क गलत हैं। न तो जो आगे निकल गए हैं उन्होंने पा लिया है और न ही जिंदगी निरर्थक है। जिंदगी में तो बड़ा सार है, बड़ा अर्थ है, आनंद है और बड़ा रस है। बशर्ते कि हम ठहरकर मजा लेना सीखें तो सही! लेकिन हमें तो उतनी भी फुर्सत कभी नहीं मिलती।

बुद्ध को हम वृक्ष के नीचे बैठे देखें कि आनंदमग्न हैं, अपनी श्वास का ही मजा ले रहे हैं तो हमारे मन में एक तीसरा तर्क पैदा होता है कि ठीक है, इनको शांति मिल गई, इनको निर्वाण मिल गया इसलिए ये शांति से बैठे हैं। जिस दिन हमें मिल जाएगा तो हम भी बैठेंगे। यह और एक विचित्र तर्क है कि ठीक है इनको तो आनंद मिल गया देखो

कैसी फुर्सत में बैठे हैं मजे से। निश्चित ही हम भी चाहते हैं कि हम भी एक दिन ऐसे ही बैठेंगे, बस पा लें उसको जरा... फिर हमारा लोभ शुरू।

जबकि वस्तुस्थिति क्या है, बुद्ध भी जब तक दौड़ रहे थे धर्म की आकांक्षा से भरे थे तब तक उनको भी शांति नहीं मिली थी। वे भी बहुत अशांत और बेचैन थे, 29 साल संसार में और छः साल संन्यासी होकर। वे भी बहुत दुखों में जिए। जिस दिन वे चुपचाप बैठ गए उस दिन शांति मिली। हम समझते हैं कि इनको शांति मिल गई इसलिए देखो कैसे मजे से बैठ गए हैं। अब सारी भाग–दौड़ बंद हो गई। सच्चाई क्या है? बैठ गए इसलिए उपलब्धि हुई। जब तक दौड़ रहे थे उनको भी उपलब्धि नहीं मिली थी। यह तीसरा तर्क भी बहुत खतरनाक तर्क है और हमें लोभ में फंसा के रखता है।

हमको लगता है कि ठीक है जिन लोगों ने पा लिया है आनंद को वह खूब आनंद से बैठे हैं। जब हम भी पा लेंगे तो बैठेंगे आनंद से, फिर हम चूक गए। आज का दिन तो गया, जब मिलेगा तब मिलेगा। बुद्ध ने भी छः साल खूब मेहनत की और उनको नहीं मिला। जिस दिन उन्होंने भागदौड़ छोड़ दी उस दिन मिला, शांत बैठने से मिला, भागने से नहीं मिला। तो इस तीसरे तर्क से खूब सावधान रहना, यह भी बड़ा इल्यूज़न पैदा करता है। हमको लगता है कि ठीक, जब परमात्मा मिल जाएगा तब हम भी चैन से बैठेंगे, हम भी चैन की बांसुरी बजाएंगे। ऐसा कभी भी नहीं होगा, आज तक ऐसा नहीं हुआ, जब भी हुआ है उल्टा हुआ है, जो लोग चैन की बांसुरी बजाने लगे उनको परमानंद मिला है।

इन तीन कुतर्कों से सावधान रहना, लोभ प्रेम नहीं है यद्यपि साधारण भाषा में हम जिसको लोभ कह रहे हैं वह, और अंग्रेजी का लव बिल्कुल पर्यायवाची हैं। दुनिया में लाखों लोगों को देखकर जो निष्कर्ष निकलता है वह ठीक है, लोभ और प्रेम पर्यायवाची हो जाते हैं, हमेशा कुछ पाने की तमन्ना। वास्तविक प्रेम बिल्कुल इसके विपरीत है। कुछ पाने का सवाल नहीं, जो मिला है उसके प्रति धन्यवाद का भाव, उसको ठीक–ठीक जीना शुरू करें। यही स्वयं के प्रति प्रेमपूर्ण होना है, यही सबके प्रति प्रेमपूर्ण होना है, यही जीवन का वास्तविक सम्मान है। कुछ पाना नहीं है, कुछ होना नहीं है, ठीक से, समग्रता से इस क्षण को जीना है।

आओ, इस प्यारे शबद के साथ हम उत्सव मनाएं। जय ओशो!

सब कुछ तू है मेरे प्यारे

कहिआ करणा दिता लैणा। गरीबा अनाथा तेरा माणा।
सभ किछुं तूं है तूं है मेरे पिआरे
तेरी कुदरति कउ बलि जाई जीउ।। 1।।
भाणै उझड़ भाणै राहा। भाणै हरिगुण गुरमुखि गावाहा।
भाणौ भरमि भवै बहु जूनी सभ किछु तिसै रजाई जीउ।। 2।।
ना को मुरखु ना को सिआणा। वरतै सभ किछु तेरा भाणा।
अगम अगोचर बेअंत अथाहा तेरी कीमति कहणु न जाई जीउ।। 3।।
खाकु संतन की देहु पिआरे। आइ पइआ हरि तेरै दुआरै।
दरसनु पेखत मनु आघावै नानक मिलणु सुभाई जीउ।। 4।।

प्यारे मित्रो, नमस्कार! आज के सत्र में आप सबका स्वागत है। आओ, इस प्यारे शबद के भावार्थ में डुबकी मारें। कहते हैं गुरु अर्जुनदेव जी–

'कहिया करणा दिता लैणा।'

हे प्रभु जो तू उपदेश दे वहीं करनी है, करने योग्य है और जो तू हमें देता है वहीं लेने योग्य है।

'गरिबा अनाथा तेरा माणा।'

हम दीन दरिद्रों को बस तेरा ही मान है।

'सभ किछुं तूं है तूं है मेरे पिआरे
तेरी कुदरति कउ बलि जाई जीउ।।'

हे प्रिय परमेश्वर तू ही सर्वस्व है, सब कुछ है, सब कुछ तू है। यही है कैवल्य का अनुभव – सब कुछ तू है। 'तू है मेरे प्यारे।'– इस 'प्यारे' शब्द पर भी ध्यान देना। बहुत लोग आध्यात्मिक साधना शुरू करते हैं बिना प्रेम भाव के। हम जिन्हें ध्यानी कहें, योगी कहें, तांत्रिक कहें, नाना प्रकार की साधनाएं प्रचलित हैं। भक्त को छोड़कर अन्य जितनी भी साधनाएं हैं वे सब बिना प्रेम भाव के शुरुआत करती हैं। और इसलिए वे उस महालक्ष्य को हासिल नहीं कर पाते जो प्रेम से ही हासिल होता है। वह अद्वैत या निर्वाण या कैवल्य जो भी नाम दो, वह बिना प्रेम भाव के उपलब्ध नहीं होता। यह बात जितनी जल्दी समझ में आ जाए उतना श्रेष्ठ। विशेषकर आज के जमाने में, जहां प्रतियोगिता, अहंकार और ईर्ष्या की बहुत ज्यादा ट्रेनिंग चल रही है। बचपन से लेकर घर तक शरुआत हो जाती है। फिर स्कूल, कॉलेज, यूनिवर्सिटी, बाजार और दुनिया, सब तरफ प्रतियोगिता, अहंकार सिखाया जा रहा है, प्रेम तो कहीं भी नहीं सिखाया जा रहा। प्रेम के विपरित जो–जो चीजें हैं वे सिखायी जा रही हैं और उसी को सफलता का मापदण्ड माना जा रहा है। हमारा हृदय लगभग सूख ही गया है। केवल बुद्धि तेज हो गयी है, चालाक बुद्धि। और हृदय की भावनाएं बिल्कुल मुरझा गयी हैं।

पुराने जमाने में भी ऐसा ही था लेकिन इससे कम मात्रा में था। इसके बावजूद भी लोग काफी हृदयपूर्ण हुआ करते थे। ठीक है कुछ लोग होते थे चालाक, बहुत थोड़े लोग। अधिकांश लोग भाव के तल पर जीते थे। उनके लिए भक्तिभाव में डूबना आसान था। जैसे–जैसे समय गुजरता गया, सभ्यता विकसित होती गयी, वैसे–वैसे हम ज्यादा से ज्यादा बुद्धि केंद्रित होते चले गए और हमारा हृदय सूखता चला गया। आज हमारे पास विचार, विचार और विचारों की भीड़ तो है लेकिन भाव नाम की चीज गायब ही हो गयी है। करीब–करीब गायब हो गयी है। कभी–कभार झलक रूपी प्रगट होती है बस। वह कोई स्थाई भाव नहीं होता, बस थोड़ी देर के लिए होता है। आप फिल्म देखने गए और उसमें हिरोइन का पिता तैयार नहीं हो रहा था हिरोइन की शादी

हीरो के संग करने के लिए। आप भी तैश में आ गए और आप हिरोइन के बिल्कुल पक्ष में थे। लग ऐसा रहा था कि आप भावनात्मक रूप से प्रेम के पक्ष में हैं और आपको क्रोध आ रहा था हिरोइन के बाप पर कि वह विवाह क्यों नहीं होने दे रहा? वे दोनों इतना प्यार करते हैं।

आप ऐसा मत समझ लेना कि आप बड़े भावनात्मक हो गए हैं, टॉकिज के बाहर निकल कर आप एकदम बदल जाएंगे। आप घर पहुंचेंगे और आपकी बेटी आप को खबर कर दे कि पापा मैं फलाने–फलाने लड़के से प्यार करती हूं। आप दो थप्पड़ लगाएंगे। ये सब टॉकिज के अंदर की बातें थीं, उसे आप व्यवहारिक जीवन में बिल्कुल लागू करने को तैयार नहीं होंगे।

तो आपको भी कभी–कभी लगता है कि आप प्रेम के पक्ष में हैं, भावनाओं के पक्ष में हैं, बहुत टेंपररी फेज है और दूसरों के जीवन की घटनाओं के बारे में है। कहानी, किस्से और कविताओं के बारे में है। अपने वास्तविक जीवन और पारिवारिक जीवन के बारे में वे नहीं हैं। वहां आप एकदम कठोर और निर्दयी हैं।

गांव में कोई संन्यासी आया और आप प्रवचन सुनने चले गए और उसके पैर छू लिए, पैसे चढ़ा आए और बड़ी तारीफ की कि बड़ा पहुंचा हुआ महात्मा है। अगर आपका बेटा कहे कि ठीक है पापा मैं भी दुकान छोड़ देता हूं और महात्मा बन जाता हूं, जब इतना आदरणीय है संन्यासी होना, तो वही काम किया जाए जो करने योग्य है। तब आप उसकी जम कर धुनाई कर देंगे कि नालायक इसलिए तुझको पैदा किया था? वह कहे कि आप उस आदमी के पैर छू रहे थे और बड़ी तारीफ कर रहे थे, वह भी तो किसी का बेटा था। दूसरे का बेटा बाजार छोड़कर चला जाए तो आप खुश होते हैं। आप चाहते हैं कि आपका बेटा दुकान चलाए, दूसरे का बेटा संन्यासी हो जाए, उनके हम पैर छुएंगे। कितना डबल स्टैंडर्ड दूसरे के बेटे के लिए और अपने बेटे के लिए।

तो कभी–कभी जब हमें लगता है कि हम भी प्रेम, श्रद्धा इत्यादी के पक्ष में हैं तो हमारा ऐसा लगना बिल्कुल झूठा है। बहुत टेंपररी और झूठा है और डबल स्टैण्डर्ड से भरा हुआ है। जहां–जहां अपने व्यवहारिक जीवन की बात आएगी वहां हम बिल्कुल निर्दयी और कठोर हो जाएंगे। लेकिन ऐसी जो झूठी अनुभूति है, उससे हमें भी ख्याल बना रहता है कि हैं तो हम बड़े प्रेमपूर्ण, हैं तो हम प्रेम के पक्ष में, हैं तो हम श्रद्धा के पक्ष में और भक्ति के पक्ष में।

हमें मीराबाई की कहानी पढ़ कर कि उसके देवर ने जहर का प्याला भेजा था, बड़ा क्रोध आता है राणा के ऊपर। और हमें लगता है कि हम मीराबाई के पक्ष में हैं और राणा के विरोध में हैं और आपके घर की बहु–बेटी कहने लगे कि ठीक है मुझमें भी अब भक्ति–भाव उमड़ आया है, अब मैं चली, सड़क पर नाचूंगी। मीरा के गीत जैसे गीत

गाऊंगी। आप उसके हाथ पैर में रस्सी बांध डालेंगे। खबरदार ऐसा किया! आप राणा से भी खतरनाक सबित होंगे।

यद्यपि आपने कभी सोचा नहीं था। आपने हमेशा मन ही मन मीराबाई का पक्ष लिया था। और राणा की खिलाफत की थीं कि दुष्ट आदमी, कृष्ण की इतनी महान भक्त हुई मीरा, उसको सताया। सांप भेजा काटने के लिए। आप होते तो आप बंदूक चलाते। सांप पर आप विश्वास नहीं करते पता नहीं काटे कि नहीं काटे। बंदूक विश्वसनीय है बिल्कुल। कनपट्टी पर रख कर गोली चला देते, सांप का तो कोई पक्का नहीं है। और ना ही हिंदुस्तान में जहर का भरोसा है। सारी चीजें तो यहां अशुद्ध मिलती हैं, दवाई तक शुद्ध नहीं मिलती है, जहर कौन सा शुद्ध मिल जाएगा?

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन के बारे में कि एक दिन बहुत ही निराश था, बड़ा दुखी था। रात को उसने लेटर लिखा और तकिये के बगल में रखकर जहर खाकर सो गया कि सुबह लोग पढ़ लेंगे तो पता लग जाएगा। सुबह पत्नी उठी, उसने कागज उठा कर पढ़ा वो तो चीख-चीख कर रोने लगी, पतिदेव जी खतम हो गए, जहर पीकर सोए हैं। उसकी चीखें सुनकर अड़ोस-पड़ोस के लोग आ गए। सभी लोग काफी दुखी हुए कि नसरुद्दीन मर गया। सब का रोना-चीखना सुनकर नसरुद्दीन उठकर बैठ गया। पहले तो उसको लगा कि मर चुका हूं, परलोक पहुंच गया हूं। और नरक का दृश्य है, वहां भी पत्नी और पड़ोसी मौजूद हैं। उसने कहा, अरे तुम लोग यहां भी पहुंच गए हो! तुम मुझे यहां भी चैन से जीने न दोगे। तब उनलोगों ने समझाया कि तुम मरे-वरे नहीं हो, यहीं इसी लोक में हो। नसरुद्दीन ने कहा यह हो ही नहीं सकता। इतना महंगा जहर मैं केमिस्ट से लेकर आया था, निश्चित रूप से मैं मर गया हूं। बा-मुश्किल उसे समझाया गया कि वह मरा नहीं।

पत्नी तो बहुत खुश हुई कि मैं विधवा नहीं हुई। उसने कहा- मैं तो मिठाइयां बंटवाऊंगी, खुशी में। उसने बाजार से मिठाइयां मंगवाईं। जितने लोग थे सब को खिलायी, पूरे मोहल्ले में मिठाइयां खिलाईं, रात तक बीस आदमी मर गए। मिठाई खाने से फूड प्वॉईजनिंग हुआ। मेरा भारत महान्! यानी जहर खाओ नहीं मरते, मिठाई खाओ मर जाते हैं। कुछ भी हो सकता है। तो राणा ने जो जहर भेजा था मीराबाई नहीं मरी, इसमें ऐसा नहीं समझना कि मीराबाई की कोई खूबी थी। हिंदुस्तानी जहर की खूबी थी!

कितने लोग बेचारे रात को नींद की गोलियां खाकर सोते हैं। और सुबह जब उठते हैं तो बड़ी शर्म महसूस करते हैं, अब क्या करें? अक्सर तो लोग रात जो सुसाईडल लेटर लिख कर रखते हैं, सुबह होने पर खुद ही फाड़ते हैं कि अब करोगे क्या? बड़े मरने चले थे। यहां नींद की गोली खाकर नींद तक नहीं आती, मरोगे कहां

से?

प्रेम की शिक्षा नहीं है। ये सारी जहरीली शिक्षाएं हैं– अहंकार की शिक्षा, प्रतियोगिता की शिक्षा, बुद्धि की शिक्षा, तर्क की शिक्षा और इस वजह से प्रेम लगभग खो सा गया है। अध्यात्म की शुरुआत भी लोग करते हैं बिना प्रेम के।

'आनंद प्रज्ञा' में जब लोग आते हैं, मैं पूछता हूं कि आप किसलिए आएं हैं, क्या खोज रहे हैं? अधिकांश लोग अपने दुख–दर्द सुनाते हैं। किसी को क्रोध से मुक्ति चाहिए, किसी का मन अशांत है बहुत विचार से भरा है, किसी को कुछ तकलीफ, किसी को कुछ तकलीफ, किसी के संबंध खराब हैं जिसे सुधारना है। परमात्मा से प्रेम के लिए कोई नहीं आता। और जो लोग कहते भी हैं कि उन्हें परमात्मा चाहिए, उनसे थोड़ा और विस्तार में 'काउंटर क्वेश्चन' करो तो पता लग जाता है कि कोई प्रेम–व्रेम नहीं है।

एक बार प्रदीप जी ने 65 साल की एक वृद्ध महिला से पूछ लिया था, गांव से आयीं थीं, सीधी–साधी महिला थीं, सच्ची बात कह दीं। अन्य लोग चालाक हैं, घुमा–फिरा कर उसी बात को कहते हैं। उस ग्रामीण महिला ने कह दिया कि अब साठ से ऊपर उमर हो गयी मेरी। घर का बाकी सब काम तो मैं कर लेती हूं। पर कमर दर्द की वजह से, घुटने दर्द की वजह से बैठते नहीं बनता। तो झाडू–पोछा लगाते नहीं बनता, बर्तन धोते नहीं बनता। परमात्मा ये दो काम निपटा दें बाकी तो सब मैं कर ही लेती हूं। इसलिए प्रभु को खोज रही हूं। वह ग्रामीण महिला थी, उसने सच्ची बात कह दी।

आप तलाश करना, अधिकांश लोग क्या खोज रहे हैं? कभी मंदिर में जाकर चुपचाप बैठ जाना कोने में और जो लोग प्रार्थना कर रहे हैं उनकी सुनते रहना कि लोग क्या–क्या कह रहे हैं? मस्जिद में, कहीं मजार में चले जाना, पानीपत में बढ़िया मजार है, जाकर बैठ जाना और जो वहां आए उनकी सुनते रहना। और जो मन ही मन प्रार्थना कर रहे हैं उनसे रोक कर पूछना, भई क्या मांगने आए थे? तुम्हें पता लग जाएगा कि सब परमात्मा से झाडू–पोंछा लगवाना चाह रहे हैं। वो झाडू–पोंछा अलग–अलग प्रकार के होंगे। किसी को मुकदमा जीतना है, किसी को लड़की की शादी करानी है, किसी को लड़के की नौकरी लगवानी है, किसी का ट्रांसफर करवाना है।

अलग–अलग प्रकार के झाडू–पोछा हैं जो अपन से नहीं लग रहे बाकी तो अपन सब कर ही रहे हैं। जो अपन से नहीं हो रहा है वह काम परमात्मा से करा लो, परमात्मा है किसलिए? ऐसे काम करने के लिए है बेचारा। वैसे तो हम ही सर्वशक्तिमान हैं काफी कुछ, 99 परसेंट काम तो कर ही लिया, अब एकाध काम नहीं हो रहे तो हे ईश्वर, अब तू कर दे। ईश्वर की तलाश में भी जो निकले वे प्रेम की खातिर नहीं निकले, उन्हें कोई

काम कराना था। परमात्मा को 'एक्सप्लॉएट' करना था कि किसी प्रकार इसे फुसला लें, कि इससे भी कुछ काम बन जाए अपना... और नहीं बनता तो लोग ईश्वर बदल लेते हैं।

एक आदमी राम का भक्त था। खूब प्रार्थना करता रहा कि हे प्रभु शादी करा दे, हो गयी उसकी शादी। बड़ा खुश हुआ। लेकिन चार दिन बाद अपहरणकर्ता उसकी बीवी को उठा ले गए। फिर वह आया कि हे प्रभु, अन्याय हो गया, सरासर अन्याय, मेरी बीवी को उठा ले गए। बार–बार आकर प्रार्थना कर रहे हैं, सुन–सुनकर राम जी गुस्से में आ गए और तीर–धनुष निकाल लिया। उन्होंने कहा कि सिर तोड़ दूंगा। मेरी बीवी को भी उठा ले गए थे मैं कुछ नहीं कर पाया था। तो उसने कहा फिर मैं क्या करूं? उसने कहा तू हनुमान की शरण में जा ऐसे काम हनुमान ही करते हैं। वे एक्सपर्ट हैं, पहले भी उन्होंने यही काम किया था। उस आदमी ने कहा ठीक। अगले दिन से हनुमान मंदिर जाने लगा।

हमें देवी–देवता से क्या लेना–देना? हमें अपने काम से मतलब है। जो शादी करवा दे उससे शादी के लिए प्रार्थना कर ली।

जापान में मैंने देखा कि बराबर संख्या में लोग चर्च और सिंटो धर्म के मठ में दिखाई दे रहे हैं। मैंने पूछा कि आपलोग कहां जा रहे हैं? उन्होंने कहा कि एक्चुअली शादी ज्यादा अच्छी चर्च में होती है, ज्यादा धूम–धाम से, तो शादी चर्च में कराते हैं। और दाह–संस्कार, वह सिंटो मठ में कराते हैं। दाह–संस्कार वहां सस्ता भी है। अपने को क्या मतलब ईसाई धर्म से कि सिंटो रिलेशन से, भाड़ में जाए। जहां अपने काम सस्ते में निपट जाए वहां करवा लेंगे... ये बात मुझे एकदम जंची। शादी करवायी चर्च में, वहां जरा धूम–धाम से होती है। दाह–संस्कार सिंटो रिलेशन से करवा लिए, वहां सस्ते में निपट जाते हैं। यह प्रेम नहीं हुआ यह उपयोग हुआ, 'एक्सप्लॉएटेशन' हुआ। और इसलिए ऐसा व्यक्ति उस लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाएगा साधना में जहां वह पहुंचना चाह रहा था क्योंकि शुरुआत का प्वॉईंट ही बिल्कुल गलत था। वह अस्तित्व के प्रति प्रेम से भर कर नहीं चला था, धन्यवाद भाव से भरकर नहीं चला था। अब देखते हैं इसमें नानक कितने धन्यवाद भाव से भरे हैं?

'कहिया करणा दिता लैणा।'

हे प्रभु जो तू करा रहा है वो हम करते हैं। जो तू दे रहा है वही हम लेते हैं। ... धन्यवाद का भाव।

'गरिबा अनाथा तेरा माणा।'

हे प्रभ,ु हम तो दीन–दरिद्र हैं, तूने तो सब कुछ दिया। इतना अद्‌भुत दिया, अहोभाव से भरे हैं, प्रेमभाव से भरे हैं, एक दिन अवश्य ये कहेंगे 'सब कुछ तू है तू है मेरे

प्यारे।' ये प्यारे का संबोधन शुरुआत से हीं हुआ है। ओशो ने 'एक ओंकार सत्‌नाम' में कहा है कि नानक ने ध्यान नहीं किया, नानक ने योग नहीं साधा, नानक ने हठ नहीं किया, नानक ने तंत्र की साधना नहीं की, नानक ने बस प्रेम से गीत गाए। और गा–गा कर हीं उन्होंने परमात्मा को पाया। अब यह भी कोई तरीका है?

कुछ आसन करते, कुछ प्राणायाम करते, शीर्षासन लगाते तो कुछ समझ में आता। और याद रखना आसन, प्राणायाम, शीर्षासन वाले किसी को परमात्मा नहीं मिलता। ओशो कहते हैं नानक का मार्ग गीतों से पटा है। नानक के जीवन में कोई उल्लेख नहीं है कि उन्होंने ध्यान किया हो, कि योग साधा हो, कि प्राणायाम किया हो। प्रेम से भरा हृदय था, गीत फूटे। धन्यवाद के गीत,

'सभ किछुं तूं है तूं है मेरे पिआरे
तेरी कुदरति कउ बलि जाई जीउ।।'

हे प्रभु तेरी कुदरत को, तेरी इस प्रकृति को जो चारों तरफ दिखाई दे रही है, इस पर मैं बलिहारी जाता हूं। कैसा घना धन्यवाद भाव होगा!

'तेरी कुदरति कउ बलि जाई जीउ।।'

जैसे हमारा शरीर है जो दिखाई देता और हमारे भीतर चेतना है, जो दिखाई नहीं देती, तो एक साकार हिस्सा है रूपवाला, आकृतिवाला और एक हिस्सा है निराकार, अरूप, ठीक वैसे ही इस पूरे अस्तित्व में, पूरे ब्रह्माण्ड में, पूरी प्रकृति में एक साकार रूप है जो दिखाई दे रहा है, प्रकृति का, और इसके भीतर छिपा हुआ निराकार परमात्मा। इस ब्रह्माण्ड को परमात्मा का शरीर समझो। यह भी वहीं है जैसे हमारा शरीर, हमारा साकार रूप और भीतर हमारी निराकार चेतना। ऐसे ही यह संसार ब्रह्माण्ड का शरीर है और ब्रह्म उसकी आत्मा है। जो हमारे भीतर छोटे पैमाने पर है वहीं चीज पूरे जगत में बड़े पैमाने पर है। शबद आपने आगे सुना ही हुआ है, मैं विस्तार में नहीं जाऊंगा सिर्फ दो लाईन और मजेदार है।

' भाणै उझड़ भाणै राहा।
भाणौ भरमि भवै बहु जूनीं सभ किछु तिसै रजाई जीउ।।'

हे प्रभु तेरी मर्जी से ही हम पथ से भ्रष्ट हो जाते हैं। 'भांड़े रहा' तेरी ही मर्जी से हम राह को पाते हैं। गजब की बात कही, तेरी ही इच्छा होती है तो हम रास्ते पर लग जाते हैं और तेरी ही इच्छा होती है तो हम भटक जाते हैं।

' भाणै हरिगुण गुरमुखि गावाहा।'

तेरी ही इच्छा से हम गुरुमुख हो जाते हैं, शिष्य बन जाते हैं, तेरी इच्छा से हम गुरु से विमुख भी हो जाते हैं।

' भाणौ भरमि भवै बहु जूनीं
सभ किछु तिसै रजाई जीउ।।'

कहते हैं तेरी ही इच्छा से हम चौरासी लाख योनियों में भटकते हैं। और तेरी ही इच्छा से हम मोक्ष और निर्वाण प्राप्त करते हैं। सब कुछ तेरी रजाई से, तेरी रजा से हो रहा है। अद्‌भुत है यह बात! अकसर भक्तों की वाणी में तुम पाओगे कि अच्छी-अच्छी चीजों के लिए तो परमात्मा को कह रहे हैं कि हे प्रभु तूने ऐसा किया। बुरी चीज के लिए नहीं कह रहे। वह किसने किया अगर सब कुछ तू है, तू है मेरे प्यारे। सब कुछ वही है तो हम जिसे बुरा कह रहे हैं वह भी उसी ने किया। अगर हम चौरासी लाख योनियों में भटक रहे हैं, दुख पा रहे हैं तो यह भी प्रभु के मर्जी से।

ऐसी हिम्मत, ऐसा चौड़ा हृदय, ऐसी चौड़ी छाती है गुरुनानक देव जी की। कहतें हैं कि हे सर्वेश्वर जब तेरी मर्जी हुई तो हम भटक जाते हैं, तेरी मर्जी हुई तो हम ठीक राह पर लग जाते हैं। तभी हम उसको सर्वेश्वर कह सकते हैं नहीं तो कह नहीं सकते। अगर कुछ चीजें उसके हाथ में है अच्छी-अच्छी वाली और बुरी-बुरी वाली कोई और कंट्रोल कर रहा है तब तो फिर अद्वैत ना रहा। एक भगवान, एक शैतान, दो अलग-अलग डिपार्टमेंट के हैं, फिर तो बड़ी मुसीबत हो जाएगी। फिर आप नहीं कह सकते कि सब कुछ तू है, तू है मेरे प्यारे। फिर तो कहना पड़ेगा तू दो है। फिर तो एक संभव ही नहीं।

नानक की इस बात को खूब अच्छे से हृदयंगम करना। सब कुछ उसकी मर्जी से हो रहा है। जो भी आनंद का अनुभव हमें होता है वह इसीलिए हो पाता है क्योंकि चिंताओं की पृष्ठभूमि में, पीड़ाओं के बैकग्राउंड में हम पहले गुजर चुके हैं। कष्टों से गुजर चुके हैं हम। तो उस कंट्रास्ट में आनंद की अनुभूति होती है। कष्ट भी जरूरी था आनंद की अनुभूति के पहले, वह भी प्रभु की मर्जी से हुआ कि हम चिंता में पड़ जाएं, अहंकार में पड़ जाएं, दुखी हो जाएं। और यह भी प्रभु मर्जी से हो रहा है कि हम फिर निश्चिंत हो जाएं, आनंदित हो जाएं।

पतझड़ भी उसकी मर्जी से आया था और यह पुनः बसंत ऋतु भी उसकी मर्जी से आयी है। और ऐसा ही होना जरूरी था। अगर पतझड़ न होता तो यह फिर से बसंत ऋतु भी नहीं हो सकती थी। इसको खूब अच्छे से हृदयंगम कर लो ताकि द्वैत भाव पूरी तरह समाप्त हो जाए, कैवल्य भाव जन्मे। दुख भी प्रभु ने ही दिए हैं। उसके बाद ही सुख का अनुभव हो सकेगा। जितनी गहराई में हम उदासी में चले जाएंगे उतनी ही ऊंचाई में हम उत्सव में शिखर को छू सकेंगे। रात भी उसकी, दिन भी उसका।

'सभ किछुं तूं है तूं है मेरे पिआरे
तेरी कुदरति कउ बलि जाई जीउ।।'

आएं, हम इस शबद के संग आनंदपूर्वक उत्सव मनाते हैं। जय ओशो!

सारी सृष्टि का स्वामी कौन?

कूपु भरिओ जैसे दादिरा कछु देसु बिदेसु न बूझ।
ऐसे मेरा मनु बिखिआ बिमोहिआ कछु आरा पारु न सूझ।। 1।।
सगल भवन के नाइका इकु छिनु दरसु दिखाइ जी।। 1।। रहाउ।।
मलिन भई मति माधवा तेरी गति लखी न जाइ।
करहु क्रिपा भ्रमु चूकई मैं सुमति देहु समझाइ।। 2।।
जोगीसर पावहिं नहीं तुअ गुण कथनु अपार।
प्रेम भगति कै कारणै कहु रविदास चमार।। 3।।

सभी मित्रों को नमस्कार! आज के प्यारे शबद में कहते हैं संत रविदास जी–

' सगल भवन के नाइका
इकु छिनु दरसु दिखाइ जी।।'

कहते हैं सारे संसार के मालिक, 'सगल भवन के नाइका'... किसको संबोधित कर रहे हैं? इस सारी सृष्टि का स्वामी कौन है? खोजेंगे तो आप पाएंगे कि वह जो चैतन्य ऊर्जा हमारे भीतर है वही सर्वत्र व्याप्त है। जैसे हमारे भीतर की चैतन्य ऊर्जा, हमारी जीवन ऊर्जा, हमारे शरीर को चला रही है, ठीक ऐसे ही सारे ब्रह्माण्ड की जो जीवन ऊर्जा है वह सारे ब्रह्मण्ड को चला रही है। वही असली मालिक है, हिंदू उसे कहते हैं आदि शक्ति।

वह शक्ति ही सब कुछ है, याद रखना। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं बल्कि शक्ति है। जीवन शक्ति एक 'वाइटल फोर्स' है और घट–घट में व्याप्त है। और अगर उसे जानना है तो हम कहां जानेंगे, सबसे निकट हमारे कौन है? हम स्वयं। अपने भीतर ही जानेंगे। वही निकटतम होना है।

'सगल भवन के नाइका
इकु छिनु दरसु दिखाइ जी।।'

कहते हैं, हे प्रभु! ऐसी कृपा करो कि मैं जान सकूं।

' कूपु भरिओ जैसे दादिरा कछु देसु बिदेसु न बूझ।
ऐसे मेरा मनु बिखिआ बिमोहिआ कछु आरा पारु न सूझ।।'

फिर कारण बताते हैं कि क्यों मैं तुझे नहीं जान पा रहा हूं? क्योंकि मेरे भीतर बहुत विचार हैं, बड़ा ज्ञान है और हम ज्ञान की दीवार के भीतर बंद हैं। वे उदाहरण देते हैं–

' कूपु भरिओ जैसे दादिरा'

जैसे किसी कूप में, कुएं में मेंढक भरे हों, उन मेंढकों को कुएं के आर–पार का कुछ भी न पता। ' कछु देसु बिदेसु न बूझ'... वो मेंढक वहीं जन्मे, पीढ़ी दर पीढ़ी वहीं बड़े होते हैं और वहीं मर जाते हैं, उन्हें पता ही नहीं चलता कि इस कुएं के बाहर भी कुछ है। वे समझते हैं ये कुआं ही सब कुछ है। ठीक ऐसी ही हमारी स्थिति है।

'ऐसे मेरा मनु बिखिआ बिमोहिआ
कछु आरा पारु न सूझ।।'

कहते हैं रविदास जी कि ऐसा ही मेरा मन विमोहित हो गया है। हिप्नोटाइज्ड, हम सम्मोहित हैं। किस चीज से? जो भी हमने सुना, देखा, समझा, अनुभव किया, जिसको हम अपना ज्ञान कहते हैं, अपनी स्मृति कहते हैं वह हमारे चारों तरफ कुएं की दीवार के भांति हो गया है और हम कुएं के मेंढक हो गए। बस इस ज्ञान की दीवार के

उस पार हम नहीं देख पाते।

हमारे बंधन हमारे द्वारा, स्वर्निमित हैं। एक हिंदू, हिंदू कुएं में रह रहा है, एक ईसाई, ईसाई कुएं में रह रहा है, मुसलमान, मुस्लिम कुएं में जी रहा है। इनकी दीवारें ज्ञान की दीवारें हैं। गीता, कुरान, बाईबल, इनकी ईंटे लगी हुई हैं, सभी चारों तरफ से घिरे हैं इसके आर–पार देखना ही संभव नहीं। हम बिल्कुल अंधे हो गए हैं अपने ज्ञान से। सुनकर आपको विचित्र लगेगी यह बात, किंतु यही है सत्य।

संत रविदास जी बिल्कुल ठीक कह रहे हैं कि मेरा मन विमोहित हो गया है और कुछ आर–पार का पता नहीं चल रहा। बस मैं घिर गया हूं अपने ही विचारों के घेरे में, सिद्धांतो में, फिलॉसफी में, मजबूत दीवार है। जैसे छा जाएं आषाढ़ के बादल और आकाश दिखाई देना बंद हो जाए, ठीक ऐसे ही हमारे भीतर जो जीवन ऊर्जा है चैतन्य की, जिसे हम अपनी आत्मा कहें, जिसका दर्शन असंभव हो गया है, इन विचारों के मेघों की वजह से। जिसने आकाश को आच्छादित कर लिया है।

वास्तव में बादलों ने तो आकाश का कुछ नहीं बिगाड़ा, आकाश तो ज्यों का त्यों है। लेकिन प्रैक्टिकली, व्यवहारिक रूप से हमारे लिए तो आकाश गायब ही हो गया है। सब तरफ बादल ही बादल हैं, यद्यपि सच्चाई तो यह है कि आकाश अनंत है और ये बादल के छोटे–छोटे टुकड़े, ये आकाश का क्या बिगाड़ेंगे, उसे कैसे ढाकेंगे? संभव ही नहीं। लेकिन हमारे लिए तो आकाश गायब ही हो गया है। आकाश में तारे होंगे किंतु हमें दिखाई न देंगे, चांद निकलेगा लेकिन हमें पता न चलेगा।

पिछले बरस मैं मास्को गया था। करीब दस दिन हम लोग वहां पर रहे। उन दस दिनों में हमें कभी यह नहीं पता चला कि कब सुबह हो रही है? कब दोपहर हो रही है? कब शाम हो रही है? तो घड़ी देखकर नाश्ता करते थे, घड़ी देखकर लंच करते थे, घड़ी देखकर डिनर करते थे। एक दो दिन तो बड़ा अटपटा लगा। पुरानी आदत थी कम से कम अंधेरा हो जाए तब डिनर करेंगे, रात को खाना खाएं। वैसा तो समय आने वाला नहीं था, सभी वक्त सब एक सा ही लगा, कभी हम लोगों ने सूरज को नहीं देखा। इस प्रकार की हल्की धुंध छायी रहती थी कि हमेशा ऐसा लगता था कि शाम का समय है। दोपहर को भी वैसा ही लगता, शाम का भी पता नहीं चलता, घड़ी देखकर समय पर सो जाते थे।

सुबह के वक्त भी वैसा ही रहता, जब उठते थे अलार्म पर तब भी वैसा ही लगता था। बीच में कब रात थी, कैसी रात थी कुछ पता नहीं। न चांद कभी देखा, न कभी सूरज देखा, न दिशा तक का अंदाज लगा सकते थे कि सूरज किधर से उगा। वहां के बादल अलग प्रकार के थे। जैसे यहां बादल होते हैं वैसे नहीं थे। यहां कम से कम दिशा का तो पता लग जाता है कि सूरज किस तरफ से उग रहा है क्योंकि उस दिशा में कुछ ज्यादा

रंग हो जाते हैं। मास्को में तो कुछ नहीं पता चलता था क्योंकि वहां रंगों का एक सा डिस्ट्रीब्युशन दिखता था। तो प्रैक्टिकली बादलों ने हमको घेर लिया है, याद रखना आकाश को तो नहीं घेरा है लेकिन हमारी आंखों पर पर्दा डल गया है, और हम उसके आर–पार नहीं देख पा रहे।

ठीक ऐसे ही हमारे विचार, हमारे ज्ञान, हमारी स्मृतियां, हमारे सिद्धांत, ये सब भी बिल्कुल हवाई हैं। फिर भी बादलों में चलो 'भाप' है, कुछ तो है। हमारे विचारों में, हमारे भावों में तो उतना भी सत्य नहीं है। इस झूठ ने सत्य को बुरी तरह आच्छादित कर लिया है। माया ने ढांक लिया है परम सत्य को और उसके आर–पार देखना संभव नहीं। ऐसा मत समझना कि हिंदू, मुसलमान, ईसाई की मैं बात कह रहा हूं। किसी भी क्षेत्र का ज्ञान हमें अंधा बना देता है।

समझो एक आयुर्वेदिक डॉक्टर है। उसने बचपन से सुना है, पढ़ाई–लिखाई के दौरान और मजबूत हो गयी उसकी यह धारणा कि ऐलोपैथिक दवाइयां नुकसानप्रद हैं, साइड इफेक्ट्स होते हैं, हानिकारक हैं। आयुर्वेदिक दवा ही सच्ची दवा है। अब इस ज्ञान के बाहर आप उसको नहीं ला सकते, चाहे कुछ भी कर लें। बाहर दुनिया में क्या हो रहा है, उसे नहीं सुनना है। कुएं के बाहर का तथ्य यह है कि 80 से 90 प्रतिशत लोग ठीक हो रहे हैं ऐलोपैथिक दवाईयों से। लेकिन ये जो आयुर्वेदाचार्य हैं, ये देखते ही नहीं, इनको कुछ दिखाई नहीं देता। इसे दूसरी तरफ से समझ लें कि कोई ऐलोपैथिक डॉक्टर है, पांच–सात साल पढ़ते–पढ़ते, फिर बाद में सालों प्रैक्टिस करते–करते कंडिशनिंग हो गयी, संस्कार पड़ गया कि बस ऐलोपैथी ही एकमात्र साइंटिफिक ट्रीटमेंट है, बाकी सब बकवास। अब इस धारणा के बाहर उसको नहीं ला सकते, चाहे कितने ही तथ्य उसको दिखाओ कि लोग होमियोपैथी ले रहे हैं उससे भी ठीक हो रहे हैं, एक्यूप्रेशर से भी ठीक हो रहे हैं, ऐरोमाथेरेपी से भी ठीक हो रहे हैं, हर्बल ट्रीटमेंट से भी ठीक हो रहे हैं। और पच्चीसों पद्धतियां हैं जिनसे लोग ठीक हो रहे हैं। परन्तु वह देखेगा ही नहीं, उसको ऐलोपैथी के सिवाय कुछ दिखाई नहीं देगा। हमारी कंडिशनिंग से हमारी आंखों पर पट्टी बंध जाती है। तथ्य दिखने बंद हो जाते हैं।

तो ऐसा नहीं सोचना कि सिर्फ धर्म का मामला है। किसी भी क्षेत्र में, अगर तथाकथित ज्ञान हो तो हमारी आंखों पर पट्टी बंध जाती है। उसके अतिरिक्त फिर हम कुछ नहीं देख सकते। उसके विपरीत भी तथ्य मौजूद हैं, पर तुम्हारी नजर ही नहीं पड़ सकती। संत रविदास कह रहे हैं कुएं के मेंढक जैसी मेरी हालत हो गयी है, मैं विमोहित हो गया हूं, हिप्नोटाइज्ड हो गया हूं। जो मैंने जाना है उससे सम्मोहित हो गया हूं और कुछ आर–पार की सूझ–बूझ उत्पन्न नहीं हो रही।

हे प्रभु, 'सगल भवन के नाइका', तुम ही सत्य का दर्शन कराओ तो बात बने।

मेरे अपने बल–बूते यह बात न बन सकेगी। क्योंकि मैं जो करता हूं उसमें फिर मेरा अहंकार आ जाता है, मेरा कर्ताभाव आ जाता है, मैं अपने ही ज्ञान के माध्यम से ही तो कुछ करूंगा। और वही ज्ञान तो मेरी मुसिबत है, सारी मुश्किल का कारण तो वही है। और उसी ज्ञान के आधार पर मैं कुछ करूंगा। तो हल तो होने वाली नहीं ये पहेली।

कुएं का मेंढक छलांग लगाएगा, कुएं के भीतर ही तो लगाएगा वह। कुएं के बाहर जंप आउट नहीं कर सकता। यह संभव नहीं है, यह कुएं के मेंढक की औकात के बाहर है। वह तो चार–पांच फीट उचकेगा, कुआं बहुत गहरा है। कुछ बाहर से ही मदद मिले, या कोई इस कुएं के मेंढक को बाहर निकाल ही दे। तभी कुछ बात बन सकती है। इसी भावदशा में प्रार्थना उत्पन्न होती है जब हमें असहायता का अहसास होता है, फीलिंग ऑफ हेल्पलेसनेस, मानो यह हमारी औकात के बाहर है।

‘ मलिन भई मति माधवा तेरी गति लखी न जाइ।’

कहते हैं, हे माधव, मेरी मति तो कुमति हो गयी है, मलिन हो गयी है, मैली हो गयी है। और इसलिए तेरी गति के बारे में मुझे कुछ वास्तविक एहसास नहीं हो पा रहा है। अपनी कुमति की वजह से मैं तुझे नहीं जान पा रहा हूं।

‘ करहु क्रिपा भ्रमु चूकई मैं सुमति देहु समझाइ।’

हे प्रभु, मुझ पर कृपा करो ताकि मेरे भ्रम समाप्त हो जाएं।

‘ करहु क्रिपा भ्रमु चूकई।’

ये भ्रांतियां, ये इल्युजन्स, ये हैल्युसिनेशन जो मैंने खड़े किए हैं, जो मैं अपने ही स्वप्नलोक में जी रहा हूं, इसके बाहर निकालने का उपाय करो प्रभु। मेरे बस के बाहर है। कोई आदमी सो रहा है, सपना देख रहा है, वो बेचारा चाहे भी कि सपने से जाग जाए तो कैसे जागे? डर यह है कि कहीं सपने में ही वह सपना न देखने लगे कि वह उठकर बैठ गया और चाय पी रहा है। पता चला ये भी सपना ही है।

सोया आदमी क्या कर सकता है? तो बाहर से कोई झकझोरे तभी कुछ बात बनेगी। इसलिए अध्यात्म में गुरु–शिष्य संबंध का इतना महत्त्व है। कोई हमें जगाए, चेताए, झकझोरे, कोई हमारे मुंह पर ठंडा पानी डाले, आवाज लगाए तो शायद हम उठकर बैठ जाएं। हम खुद अपने आप से कैसे जानेंगे?

‘ मलिन भई मति माधवा तेरी गति लखी न जाइ।
करहु क्रिपा भ्रमु चूकई मैं सुमति देहु समझाइ।।’

हे प्रभु, मुझे सुमति दो। मेरी बुद्धि की मलिनता को समाप्त करो। और याद रखना सुमति किसे कहते हैं? निर्विचार मन की अवस्था को। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं अमनी दशा, या उन्मनी अवस्था। जब तक विचार हैं तब तक बादल छाए हुए हैं, हम पूरा–पूरा आकाश को न जान पाएंगे। आकाश को जानने का एक ही उपाय है

बादल–रहित दशा उत्पन्न हो जाए। तो हमारे भीतर के बादल, हमारे विचार हैं। अगर भीतर निर्विचार अवस्था बन जाए तो भीतर का वह आकाश, आत्मा की वह विराट चैतन्य ऊर्जा अपनी पूरी गरिमा में प्रगट हो जाए। चाहो तो इसी को सुमति कह लो, चाहो तो 'स्टेट ऑफ नो माइंड' कह लो, प्रज्ञा कह लो, विवेक कह लो। सारे ध्यान–समाधि के उपाय इसी अवस्था को पाने के लिए हैं। कैसे सुमति आ जाए?

' जोगीसर पावहिं नहीं तुअ गुण कथनु अपार।
प्रेम भगति कै कारणै कहु रविदास चमार।।'

कहते हैं कि बड़े–बड़े योगी भी तेरे अनंत रहस्य को न पा सके। तेरे गुण अकथ हैं, अपार हैं, कोई पारावार नहीं उसका। और अवर्णनीय हैं, इसलिए बड़े–बड़े योगी जिन्होंने तुझे जान भी लिया, वे बता न सके। भीतर अपनी चैतन्य ऊर्जा को जानना संभव है, किन्तु उसे बताना, शब्दों में ढालना, दूसरों को समझाना नामुमकिन है। क्योंकि जिन शब्दों में हम बताते हैं वे शब्द साधारण संसार के शब्द हैं, साधारण चीजों को प्रगट करने के लिए बने हैं।

अपनी अंतरात्मा को प्रगट करने के लिए भाषा नहीं बनी। भाषा तो सांसारिक वस्तुओं के वर्णन के लिए है। इसलिए भाषा बाहर दुनिया में काम आती है। भीतर की बात कहें तो किसी काम की नहीं रह जाती। आत्मा के अनुभव की बात तो छोड़ो, हृदय में प्रेम का अनुभव थोड़ा गहरा होता है और बस मुश्किल खड़ी हो जाती है, उसे व्यक्त नहीं किया जा सकता।

कोई पूछता है आप मुझे कितना प्रेम करते हैं? और आपको पता है कि आप लाचार हो गए, प्रश्न का उत्तर ठीक–ठीक दे नहीं सकते, क्या कहेंगे? एक किलो, दो किलो, ढाई किलो कि मीटर में बताएंगे पांच मीटर, दस मीटर प्रेम कि लीटर में, कि पूरा टन भी प्रेम करते हैं, कैसे बताएंगे? बड़ी मुश्किल हो गयी, एक छोटे से सवाल का उत्तर नहीं दे सकते। ये शब्द सार्थक हैं दुनिया की चीजों के बारे में, क्योंकि उनकी मात्रा है, क्वांटिटी है और क्वांटिटी को नापा जा सकता है, किसी न किसी रूप में। उसका वजन होगा, लंबाई होगी, चौड़ाई होगी, उसका कुछ आयतन होगा, उसका कुछ टेंपरेचर होगा। कई प्रकार के नाप है जिनसे चीजों को माप सकते हैं। या कोई आपसे पूछे कि कितना टेंपरेचर है तो आप बता सकते हैं कि कितनी गर्मी है। ठीक इसी प्रकार हम अपने आंतरिक अनुभवों का वर्णन नहीं कर सकते क्योंकि वे मात्रात्मक नहीं हैं, परिमाणात्मक नहीं बल्कि गुणात्मक है। दे आर क्वालिटीज, नॅाट क्वांटिटीज और हम सवाल करते हैं क्वांटिटी वाला। वहां पर वह लागू ही नहीं होता, इसलिए जो भी उत्तर दिया जाएगा वह गलत होगा। प्रश्न ही गलत है तो उत्तर कैसे सही होगा?

तो चलो हृदय का अनुभव तो सभी को होता है इसलिए फिर भी अंदाज लग

जाता है, ठीक–ठीक शब्द में तो व्यक्त नहीं कर पाते किंतु फिर भी दूसरा अनुमान कर सकता है क्योंकि उसको भी कुछ–कुछ अनुभव है। आत्मा का अनुभव, भीतर की चैतन्य ऊर्जा का अनुभव, वह तो बिल्कुल ही अकथनीय है क्योंकि जिनसे हम बात कर रहे हैं उनको जरा भी एहसास नहीं।

' जोगीसर पावहि नहीं तुअ गुण कथनु अपार।
प्रेम भगति कै कारणै कहु रविदास चमार।।'

फिर कोई रविदास से पूछेगा आप क्यों कह रहे हैं जब बड़े–बड़े योगी नहीं कह पाए?

रविदास कह रहे हैं–

'प्रेम भगति कै कारणै।'

मैं बड़े प्रेम में हूं, भक्ति–भाव में हूं, इसलिए कह रहा हूं। जानता हूं कि मैं भी नहीं कह पाऊंगा, बता तो नहीं पाऊंगा असलियत, लेकिन एक असफल प्रयास कर रहा हूं, शायद मेरे प्रयास को देखकर किसी को यह सूझ–बूझ पैदा हो जाए। किसी मेंढक को यह एहसास दिलाने की कोशिश कि वह भी कुएं के बाहर निकल ले। ठीक है कोई कुएं के बाहर से खड़े होकर आवाज लगा रहा है, वह बता तो नहीं पा रहा ठीक–ठीक, लेकिन कम से कम एक अनुमान तो लग ही जाता है कि कुएं के बाहर भी कुछ है।

मैं जो जानता हूं वही जीवन नहीं है इसके अतिरिक्त और भी कुछ है महाजीवन। संतो का प्रेम है, उनकी करुणा है कि वे बोलते हैं। जानते हुए कि अकथनीय बात कर रहे हैं, यह भी पता है कि वे बुरी तरह असफल हो जाएंगे कोई उनकी बात समझ भी नहीं पाएगा, फिर भी उनकी करुणा है, दया है, वे कुछ कहते हैं। ऐसा नहीं है कि उस कहने से लोगों को ज्ञान प्राप्त हो जाता है। परन्तु कुछ लोगों को अनुमान लग जाता है, विरले ही सही हजारों से बात करेंगे तो दो–चार को ही सही, कम से कम एक प्यास तो पैदा हो ही जाएगी कि कुएं के बाहर भी कुछ है। कुएं के बाहर निकला जाए? एक जिज्ञासा तो उत्पन्न हो जाएगी।

यह भी बहुत कठिन बात है, आसान बात नहीं है। कुएं के मेंढक के अहंकार को चोट लगती है। इसलिए उससे कोई बात कहो, वह तुरंत मना कर देता है। हो ही नहीं सकता, हम बुद्धु हैं क्या, हमको पता नहीं? हमारे बाप–दादा इसी कुएं में रहे हैं। उन्होंने नहीं बताया हमें कभी, तुम बड़े होशियार आए, पता नहीं कहां की बातें कर रह हो?

ओशो की कहानी में एक बात आती है कि एक सागर का मेंढक आ गया, गलती से कुएं में गिर पड़ा, कुएं के मेंढकों ने स्वागत किया उसका। कहा कि भई कहां से आते हो? उसने कहा सागर से आता हूं। उन लोगों ने पूछा सागर मतलब क्या? उन्होंने कभी सुना ही नहीं सागर क्या होता है? उसने कहा सागर जो है, बहुत बड़ा होता है।

जैसे यह कुआं है न, यह छोटा–सा है। कुएं के मेंढक वैसे ही गुस्से में आ गए कि कुएं को छोटा बता रहा है। उन्होंने इस कुएं के अलावा और कुछ देखा ही नहीं है, तो उनके लिए तो सबसे बड़ी चीज यही है। तो वहां का जो सबसे विद्वान मेंढक था, पढ़ा–लिखा, पी.एच.डी., उसने कहा हम इंटरव्यू लेते हैं आपका, बताईए सागर कितना बड़ा है? उस पी.एच.डी. मेंढक ने छलांग लगायी, करीब दो फीट दूर उछल कर गया। पूछा कि क्या सागर इतना बड़ा है? उस सागर के मेंढक को हंसी आ गयी। उसकी हंसी सुनकर तो सब आगबबूला हो गए। थे पानी में मगर फिर भी जल गए, ईर्ष्या में जल–भुन गए। उन्होंने कहा कि इतनी बड़ी छलांग लगायी, इसको कह रहा है कि कुछ भी नहीं, सागर तो बहुत बड़ा है। उस मेंढक ने और ताकत लगायी, सांस रोक कर, कुंभक लगाकर चार फीट की छलांग लगाई और पूछा कि तुम्हारा सागर इतना बड़ा है? उस सागर के मेंढक ने कहा कि क्षमा करिए आप नाप ही नहीं पाएंगे। तब कुएं के मेंढक ने आखिरी दम लगाकर, पूरे प्राण दांव पर लगाकर, रहा होगा कोई हठयोगी, कुएं की एक दीवार से दूसरी दीवार तक पहुंच गया। वहां का ओलंपिक खिलाड़ी भी रहा होगा वह, अब इससे बड़ी छलांग तो होती नहीं, एक दीवार से दूसरी दीवार तक पहुंच गया और गुस्से में पूछा उसने कि क्या तुम्हारा सागर इतना बड़ा है? क्योंकि उसको भरोसा नहीं होता था कि ऐसा भी कोई हो सकता है? उस सागर के मेंढक ने कहा कि मैं माफी मांगता हूं लेकिन सागर को आप इस कुएं से नाप ही नहीं सकते। कोई उपाय ही नहीं है, आप कितनी ही बड़ी छलांग लगाओ।

तब तो वे लोग उसके विरोधी हो गए और कहा हम तुमको मारेंगे, पीटेंगे पकड़ कर, झूठ बोलने की भी हद होती है। इससे बड़ा कुछ हो ही कैसे सकता है? हमारे पूर्वजों के शास्त्रों में लिखा है– यह कुआं ही तो सारा संसार है, यही तो सृष्टि है। सारे संतो को ऐसा ही एहसास होता है जैसे उस सागर के मेंढक को हुआ कि अब क्या कहें? और पक्का है कि वे लोग उसे जहर पिलाएंगे या फांसी पर चढ़ा देंगे, कुछ न कुछ करेंगे वे। सूली लगा देंगे कि हद हो गयी इसके झूठ बोलने की। शरम भी नहीं आती कि क्या कह रहे हो? इस कुएं से बड़ा कुछ हो ही नहीं सकता।

बहुत मुश्किल है कुछ कहना, इसलिए रविदास कह रहे हैं कि 'प्रेम भगत के कारणें।' हृदय में मेरे बड़ा प्रेम है, भक्ति भाव है, करुणा भाव है, इसलिए कह रहा हूं। मुझे माफ करना मेरी बात बुरी लगे तो; करुणावश कह रहा हूं, प्रेमवश कह रहा हूं। आओ संत रविदास के इन प्यारे वचनों के संग हम भी अपने ज्ञान के कुएं के बाहर निकलने का प्रयास करें।

आओ, इस प्यारे शबद के साथ हम उत्सव मनाएं। नाचें, ..झूमें, ..गाएं। जय ओशो!

परमात्मा की कीमत कितनी?

हरि आपि अमुलकु है, मुलि न पाइआ जाइ।।
मुलि न पाइआ जाइ किसै विटहु रहे लोक विललाइ।
ऐसा सतिगुरु जे मिलै तिसनो सिरु सउपीऐ विचहु आपु जाइ।।
जिसदा जीउ तिसु मिलि रहै हरि वसै मनि आइ।।
हरि आप अमुलकु है भाग तिना के नानका जिन हरि पले पाइ।।

प्यारे मित्रो, नमस्कार! आज के सत्र में आप सबका स्वागत है। आओ, इस प्यारे शबद के भावार्थ में डुबकी मारें। कहते हैं गुरु नानक देव जी–

'हरि आपि अमुलकु है।'

हरि का कोई मूल्य नहीं। कीमत उन चीजों की होती है जिनका खरीद–फरोक्त हो सके, सामान का मूल्य होता है। जो हम स्वयं ही हैं उसका मूल्य क्या होगा? वह तो अमूल्य ही है। हमारा 'स्वयं का होना', उसे तो हमें कहीं खरीदना नहीं है, न वह कहीं बिकता है। वह तो स्वयं के भीतर ही है। अन्य चीजों का मूल्य होता है क्योंकि वे चीजें हमारे पास नहीं हैं, किसी और के पास हैं। हरि होना हमारा स्वभाव है, किसी से लेना नहीं है, वह अमूल्य है।

'हरि आपि अमुलकु है, मुलि न पाइआ जाइ।।'

इसे किसी भी मूल्य में नहीं पाया जा सकता क्योंकि वह पाया ही हुआ है।

'मुलि न पाइआ जाइ, किसै विटहु रहे लोक विललाइ।'

लोग प्रयास कर–कर के हार गए, उसका मूल्यांकन न कर सके। इसका एक दूसरा अर्थ यह भी है कि जो लोग प्रयास करते हैं प्रभु को पाने का, वे थक जाएंगे, हार जाएंगे, उन्हें नहीं मिलेगा। क्योंकि उन्होंने मान लिया है कि वह मिला हुआ नहीं है, कहीं खो गया है, उसको ढूंढ़ना है, खोजना है, पाना है। और इसलिए फिर भीतर नजर नहीं पड़ेगी, जहां वह मौजूद है।

यह विचित्र बात है कि जो लोग प्रभु को पाने का प्रयास करेंगे, उन्हें प्रभु नहीं मिल सकेगा। क्योंकि प्रयास करने में उन्होंने मान ही लिया कि फिलहाल वह नहीं है। वर्तमान में नहीं है। वो कहीं दूर भविष्य की कामना कर के बैठ गए। कहीं अन्यत्र, और जगह, किसी तीर्थस्थान में, किसी मंदिर में, किसी मस्जिद में, वहां कहीं मिलेगा। हमारी मेहनत करने से मिलेगा, खोजने से मिलेगा, अहंकार भाव आ गया। मैं कुछ करूं – कर्ताभाव, मैं कुछ जानूं – ज्ञाताभाव।

अहंकार के यही दो मुख्य रूप हैं– कर्ताभाव और ज्ञाताभाव। मेरे जानने से, मेरे करने से वह प्राप्त होगा, यह आदमी का अहंकार है। और सब चीजें हम अपने अहंकार से पा सकते हैं, किंतु परमात्मा को नहीं पा सकते क्योंकि वो हम हैं ही। पा उसे सकते हैं जो नहीं मिला है। तो स्टार्टिंग प्वाइंट से ही गलती हो जाती है, भूल–चूक हो जाती है। हम उसे खोजने चले जिसे खोया ही नहीं, तो मिलेगा कैसे?

मैंने सुना है– मुल्ला नसरुद्दीन रात को दो बजे अपने घर के बाहर यहां–वहां टहल रहा था, कभी किसी खिड़की से झांके, कहीं दरवाजे के संद में से भीतर देखे। बाहर जो चौकीदार पहरा दे रहा था, उसने समझा कोई चोर है। रात को कौन खिड़की

में से झांक रहा है? उसने आवाज लगायी। नसरुद्दीन ने उसे इशारे से कहा कि श्श्श्श! चुप! हल्ला नहीं मचाना। वह पास में आया। उसने कहा, चोर, उचक्के! और पास आया। तब नसरुद्दीन ने कहा कि मैं हूं भई, घर का मालिक, कोई चोर नहीं, चुप रहो कोई हल्ला नहीं करना। उसने कहा कर क्या रहे हो? कभी इस खिड़की पर जाते हो, कभी उस खिड़की पर जाते हो, कहीं दरवाजे की संद में से भीतर झांकते हो। उसने कहा लोग कहते हैं, कई लोगों से मैंने सुना है, कि मुझे रात को नींद में चलने की आदत है, मैं रात को नींद में चलता हूं तो मैं आज उठ कर जांच कर रहा हूं कि वास्तव में बात सही है कि नहीं। मैं खिड़कियों में से झांक–झांक कर देख रहा हूं कि मैं वहां चल रहा हूं कि नहीं चल रहा हूं। पहले मैंने भीतर से देखा, सड़कों पर देखा, मैंने दूर–दूर सब जगह नजर फेर कर देखा कि कहीं मैं बाहर तो नहीं घूम रहा हूं। पर फिर बाहर भी नहीं मिला। मैं सोच रहा हूं ऐसा ना हो कि मैं घर के भीतर घूम रहा हूं तो अब बाहर से आकर खिड़की में से देख रहा हूं, टॉर्च जला–जला कर सब कोने में मैंने देख लिया। कहीं मैं नहीं घूम रहा हूं। लोग गलत कहते हैं कि मैं नींद में घूमता–फिरता हूं। मुझे नींद में चलने की आदत है।

नसरुद्दीन पर हम हंसेंगे लेकिन यह फकीर हम पर मजाक कर रहा है, हम सब यही तो कर रहे हैं। कोई आकर मुझसे कहता है कि मैं आत्मा को खोजना चाहता हूं। अब आत्मा का मतलब है सेल्फ, स्वयं का होना, परमात्मा का मतलब है आत्मा का परम रूप, दि प्योरेस्ट सेल्फ; स्वयं के होने की शुद्धतम अवस्था। इसको कहां खोजोगे? और खोजोगे तो फिर नसरुद्दीन जैसी हालत होगी। न बाहर दिखाई पड़ेगा न खिड़की के भीतर से दिखाई पड़ेगा, बड़ी मुसीबत हो जाएगी। फिर अंत में तुम निष्कर्ष निकाल लोगे कि मुल्ला नसरुद्दीन है ही नहीं।

नसरुद्दीन ने वैसे ही किया। अगले दिन उसने अपने मित्रों को बुलाया, मुहल्ला–पड़ोस के लोगों को बुलाया। उसने कहा कि तुम लोग झूठ बोलते हो कि मैं रात को घूमता हूं। मैं रात को घूमता नहीं हूं। और दूसरी और नई बात बात पता चली कि मैं हूं ही नहीं। मैंने खूब ढूंढ़ा, न घर के भीतर था, न घर के बाहर था। इससे सिद्ध होता है कि मैं नहीं हूं।

जो लोग कहते हैं आत्मा नहीं है, परमात्मा नहीं है वे ऐसे ही कह रहे हैं कि मैं नहीं हूं। पर ये कह कौन रहा है? कम से कम कहने वाला तो है ही। पूरी की पूरी आध्यात्मिक खोज, साधना, एक चुटकुला है, बहुत बड़ा चुटकुला। नसरुद्दीन, नसरुद्दीन को ढूंढ़ रहा है। और अंत में उद्‌घोषणा कर देता है कि नसरुद्दीन जैसा कोई है ही नहीं। गलत कहते हैं आप लोग।

'मुलि न पाइआ जाइ, किसै विटहु रहे लोक विललाइ।'

कहते हैं पूरा लोक इसी में भ्रमित हो रहा है।

'रहे लोक विललाइ।
ऐसा सतिगुरु जे मिलै
तिसनो सिरु सउपीऐ विचहु आपु जाइ।।'

कहते हैं, कोई सद्‌गुरु मिल जाए जिसके प्रति समर्पण का भाव उत्पन्न हो जाए, जिसके चरणों में अपना सिर सौंप सकें तब जाकर यह भ्रम नष्ट हो, कि अहं नष्ट हो। यह चौकीदार अगर सद्‌गुरु होता तो दो थप्पड़ लगाता और नसरुद्दीन को होश आ जाता क्योंकि यह ढूंढ़ रहा है, यह भी नींद में ढूंढ़ रहा है। लोग कहते हैं, ठीक ही कहते हैं, नींद में चलता है। यह रात में नींद में चलते हुए खुद ही को ढूंढ़ रहा था। इसको जरूरत किसी साधना की नहीं थी, दो थप्पड़ की थी। नींद खुल जाती।

नानक कहते हैं, ऐसा सद्‌गुरु जिसे मिले, जो जगा दे, जो झकझोर दे, उसी की नींद टूट सकती है। जिस झूठे अहं को हमने स्वयं का होना समझ लिया है वह समर्पण के द्वारा नष्ट हो जाए, फिर जो बचेगा वह आत्मा है, वह परमात्मा है। फिर प्रभु से मिलन हो जाएगा।

'जिसदा जीउ तिसु मिलि रहै हरि वसै मनि आइ।'

जब जीवात्मा अपने मूल तत्व को पहचानती है तब वह जानती है कि प्रभु मेरे मन में ही बसा है। यह मंदिर शब्द बड़ा अच्छा है। दिर यानी द्वार, दरवाजा; मन ही द्वार है, दरवाजा है। यह मन मंदिर है जिसके भीतर चेतन तत्व विराजमान है।

परसों मैं कठुआ नामक एक जगह पर था, एक कॉलेज में प्रवचन दे रहा था। वहां किसी ने पूछा। बहुत सारे प्रश्न थे, उन्होंने एक अंतिम प्रश्न पूछा कि हम पूछते ही क्यों हैं? प्रश्न ही पैदा क्यों होते हैं? मैंने उनको समझाया कि यही मनुष्य की गरिमा है, महिमा है। उसके पास मन है और मन जो है वह संदेह से भरा है, वह जिज्ञासा से भरा है, वह जानना चाहता है, तो प्रश्न पैदा होते हैं। किसी पशु के भीतर प्रश्न पैदा नहीं होते, किसी कीट-पतंग के भीतर, किसी मछली के भीतर, किसी पेड़-पौधे के भीतर प्रश्न पैदा नहीं होते। कुछ जानने की जिज्ञासा नहीं है।

केवल एक इंसान है जिसके भीतर प्रश्न उत्पन्न होते हैं और जो भी उत्तर दिया जाए उसमें से फिर काउंटर क्वेश्चन- प्रति प्रश्न पैदा हो जाते हैं। इसी के कारण मनुष्य का विकास हुआ है। ज्ञान-विज्ञान के भिन्न-भिन्न क्षेत्र विकसित हुए क्योंकि हर चीज में से सवाल पैदा होता है। जब उसका उत्तर मिल जाए तो उस उत्तर में से चार नए सवाल पैदा हो जाते हैं। बात आगे बढ़ती चली जाती है।

तो मैंने उनसे कहा कि सारे विज्ञान की खोज इसी से हुई। जब हम पदार्थ के बारे में पूछते हैं तो भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, मेडिकल साइंस, इंजिनियरिंग, खगोल शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, ये सब उत्पन्न होते हैं। जब मन, मन के ही बारे में सवाल उत्पन्न करता है तो मनोविज्ञान, साइकोलॉजी पैदा होता है। और यह मन जब मन के परे चेतना के बारे में, 'कॉन्शसनेस' के बारे में में जिज्ञासा शुरू करता है तब आत्मज्ञान पैदा होता है। मन के सारे ज्ञानों को हम तीन हिस्से में बांट सकते हैं। एक स्थूल विज्ञान, एक भीतर का आत्मज्ञान और दोनों के बीच में मनोविज्ञान, जो न बहुत स्थूल है न बहुत सूक्ष्म है। यही मन मंदिर बन जाता है अगर जिज्ञासा भीतर की उत्पन्न हो जाए।

तो मैंने कहा बाहर जब हम सवाल पूछते हैं चाहे मनोविज्ञान के, चाहे भौतिक विज्ञान के, उनका कोई अंत नहीं है क्योंकि हर सवाल के उत्तर में से पुनः सवाल पैदा हो जाते हैं। जैसे बीज हम बोते हैं उसमें से वृक्ष निकलता है, वृक्ष में फिर सैकड़ों बीज लग जाते हैं, ठीक ऐसे ही प्रश्न में से उत्तर अंकुरित होता है, उसमें से सैकड़ों प्रश्न निकल आते हैं। इसलिए विज्ञान का कहीं समापन नहीं होता, मनोविज्ञान का कोई 'दि एंड' नहीं हो सकता। रोज नयी-नयी थ्योरियां निकलती चली जाती हैं और निकलती चली जाएंगी।

अमेरिका में जो पेटेंट ऑफिस है, जहां नई-नई खोजों का पेटेंट करवाया जाता था, 19वीं सदी में एक बार ऐसा हुआ कि पेटेंट ऑफिस के सबसे सीनियर अधिकारी ने घोषणा की, सरकार से निवेदन किया कि इसके बाद अब पेटेंट ऑफिस बंद करवा दिया जाए क्योंकि 'द फाइनल डिस्कवरी' हो चुकी। प्रकृति के नियम का अंतिम सत्य खोज लिया गया है। अब इसके आगे कुछ खोजने को बचता ही नहीं है। ऐसा सौ साल में छः बार हुआ। अब हम पीछे लौट कर सुनते हैं, जब पढ़ते हैं यह कहानी तो खूब हंसी आती है कि कैसे मूढ़ रहे होंगे? वे कहते हैं, अब आगे कुछ पेटेंट करने को हो ही नहीं सकता। बिल्कुल अंतिम सत्य खोज लिया गया है। पुराने जमाने में वैज्ञानिकों को ऐसा लगता था। अब ऐसा कहेगा तो हास्यास्पद हो जाएगा। अब तो वैज्ञानिक यही कहता है कि अभी तक के ज्ञात तथ्यों के आधार पर ऐसा सिद्धांत सही लगता है, 'दिस इज़ एप्रॉक्सीमेट्ली ट्रू', लगभग सत्य। पूर्ण सत्य की तो अब कोई बात ही नहीं करता। अधिकतर तो ऐसा होता है कि उस वैज्ञानिक के जीवन काल में ही उसका सिद्धांत गलत साबित हो जाता है और नयी चीजें खोज ली जाती हैं। और पिछले बीस-पच्चीस साल में ऐसा भी हुआ है कि जिस वैज्ञानिक ने एक सिद्धांत स्थापित किया था, उसने ही पांच-दस साल बाद अपने ही सिद्धांत के विपरीत नया सिद्धांत खड़ा कर दिया।

क्या करोगे? नये तथ्य जो उजागर हो गए वे पुराने सिद्धांत में फिट ही नहीं बैठे।

फिर परिर्वतन करना पड़ेगा। पुराने समय में विज्ञान की किताबें, मनोविज्ञान की किताबें निष्कर्ष पर समाप्त होतीं थीं। अंतिम जो चैप्टर था, उपसंहार, उसमें सॉलिड कंक्लुज़न, बिल्कुल ठोस निष्कर्ष हुआ करते थे। और अब आधुनिक विज्ञान की जो किताबें हैं, वे प्रश्नों पर समाप्त होतीं हैं। अभी बहुत कुछ जानने को बाकी है। जो जाना गया उसका वर्णन हो गया लेकिन इससे सारी बातें अभी भी एक्सप्लेन नहीं होतीं। तथ्यों की पूरी–पूरी सही व्याख्या नहीं होती। बहुत उलझने बाकी हैं। कई प्रश्न अभी बाकी हैं।

अभी सबसे अच्छे विज्ञान के लेखक है स्टीफन हॉकिंग। हर किताब का अंत कई सवालों पर होता है। सवाल खतम नहीं होते। तो मैं उन मित्रों से, जिन्होंने कठुआ में पूछा था, मनुष्य के मन में प्रश्न हीं क्यों पैदा होते हैं, वो तो मैंने बता दिया। प्रश्न क्यों पैदा होते हैं, वो तो उनकी प्रवृत्ति है, उसका स्वभाव है, जैसे आग का स्वभाव है गरम होना। पानी का स्वभाव है नीचे की तरफ बहना, सूरज का स्वभाव है रोशनी देना, ऐसे हीं मन का स्वभाव है प्रश्न उत्पन्न करना।

मैंने उनसे कहा कि हां, अगर यह जिज्ञासा भीतर की ओर लग गयी, स्वयं की ओर, तब जाकर प्रश्न समाप्त होते हैं। समाधान हासिल होता है। इसलिए उस अवस्था को समाधि की अवस्था कहते हैं। वहां समाधान होता है। वहां फिर काउंटर क्वेश्चन पैदा नहीं होते। स्वयं को जानकर 'ऐब्सॉल्यूट ट्रूथ' का ज्ञान होता है। उस निष्प्रश्न अवस्था में स्वयं को जाना जाता है।

जब उपनिषद् का ऋषि कहता है 'अहं ब्रह्मास्मि' तो यह किन्हीं तर्कों का निष्कर्ष नहीं है। वे कोई कारण नहीं बता रहे कि यह कारण है, यह कारण है, यह कारण है, इसलिए सिद्ध होता है कि मैं ब्रह्म हूं। ऋषि ऐसा नहीं कहता। सीधे ही कहता है कि मैं परमात्मा हूं। कोई कारण–वारण का सवाल नहीं है कि मैं हूं। बस इसके लिए कोई तर्क प्रस्तुत नहीं किए जा सकते और ना हीं इसमें कोई शायद जोड़ता है कि शायद परमात्मा हूं। ऐसा भी नहीं कहता कि अभी तक तो सिद्धांत ऐसा है, देखो आगे क्या चलता है? बाहर हम कभी भी किसी चीज के बारे में पक्का नहीं कह सकते। अब बाहर के बारे में जो भी आदमी कुछ भी पक्का–पक्का कहेगा, तो इससे सिद्ध हो जाएगा कि इसकी बुद्धि कम है। अब कोई वैज्ञानिक दावा नहीं करता। उसके दावा करने से हीं पता चल जाएगा कि इसका अनसाइंटिफिक माइंड है, इसका चित्त अवैज्ञानिक है, इसकी समझ ठीक–ठीक विकसित नहीं हुई। दावेदार अपनी मूढ़ता को ही सिद्ध करेगा। केवल अंतस ज्ञान ही निरपेक्ष ज्ञान है– ऐब्सॉल्यूट। बाहर तो सब कुछ रिलेटिव है, सापेक्ष है।

नानक कह रहे हैं–

'हरि वसै मनि आइ।'

वह परम तत्व मन के भीतर बसा हुआ है, मन के उस पार। इस पार संसार है, उस पार परमात्मा है।

'हरि आप अमुलकु है
भाग तिना के नानका
जिन हरि पले पाइ।।'

कहते हैं सौभाग्यशाली हैं वे जो उस अमूल्य तत्व को, अपने भीतर के चेतन तत्व को जान लेते हैं। आपका विशेष ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा कि वह चेतन तत्व ऊर्जामय है, जीवन ऊर्जा उसका लक्षण है, लाइफ एनर्जी, वाइटल फोर्स, प्राण शक्ति, जो भी आप नाम देना चाहें, यह उसका गुण है। वैज्ञानिक जिन ऊजाओं और शक्तियों की बात करते हैं वे बाहर की चीजें हैं। वे मृत शक्तियां हैं, चाहे वह विद्युत हो, चाहे ऊष्मा हो, चाहे चुम्बकीय शक्ति हो कि कुछ भी हो, वे मुर्दा चीजें हैं। भीतर हम जिस शक्ति को, ऊर्जा को जानते हैं, वह जीवंत है, यह फर्क हो गया। वह लिविंग फोर्स है।

आओ, इस प्यारे शबद के साथ हम उत्सवमग्न हो जाएं। झूमें, नाचें, गाएं। जय ओशो!
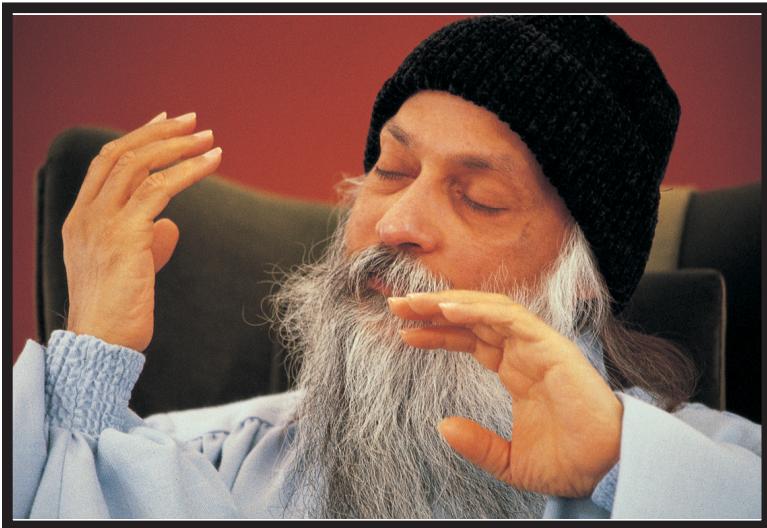
हृदय में बसे गुरु-चरण

भूले मारगु जिनहि बताइआ।
ऐसा गुरु वडभागी पाइआ।। 1।।
सिमरि मना राम नामु चितारे।
बसि रहे हिरदै गुरचरन पिआरे।। 1।। रहाउ।।
कामि क्रोधि लोभि मोहि मनु लीना।
बंधन काटि मुकति गुरि कीना।। 2।।
दुख सुख करत जनमि फुनि मूआ।
चरन कमल गुरि आस्रय दीआ।। 3।।
अगनि सागर बूडत संसारा।
नानक बाह पकरि सतिगुरि निसतारा।। 4।।

प्यारे मित्रो, नमस्कार! आज के सत्र में आप सबका स्वागत है। आओ, इस प्यारे शबद के भावार्थ में डुबकी मारें। कहते हैं गुरु अर्जुन देव जी–

'सिमरि मना राम नामु चितारे।
बसि रहे हिरदै गुरचरन पिआरे।।'

कहते हैं, बस राम नाम में चित्त डूबा रहे, इसका सिमरन होता रहे और हृदय में गुरु के चरण प्रतिष्ठित रहें अर्थात् गुरु की और हरि की सदा याद बनी रहे।

हृदय चरण, हृदय में कहा है गुरु चरण को इस बात को भी याद रखना। बहुत लोग हैं जो समझते हैं कि गुरु शिष्य संबंध में जी रहे हैं, हम शिष्य हो गए हैं किंतु अधिकतम का संबंध बौद्धिक होता है, हृदय में नहीं होता। किसी की बात अच्छी लगी, उनके तर्क अच्छे लगे, बहुत ज्ञानी, विद्वान महसूस हो रहे हैं तो प्रभावित हो गए, उनके शिष्य हो गए। लेकिन यह गुरु चरण हृदय बसना नहीं हुआ। इस अंतर को थोड़ा बारीकी से समझना। किसी की बात इंटेलेक्चुअली अच्छी लगी कि वह ज्यादा तर्क प्रधान है, वाद–विवाद में जीत जाता है। पुराने जमाने में यही होता था। विद्वान लोग जगह–जगह घूमते फिरते थे, विवाद करते फिरते थे, फिर जो जीत गया वह गुरु बन जाएगा, जो हार गया वह उसका शिष्य हो जाएगा।

शंकराचार्य के बारे में पढ़ा होगा। कहां दक्षिण भारत से लेकर पूरे उत्तर तक, पश्चिम और पूरब चारों दिशाओं में वे छोटी सी उमर में, 33 साल में तो वे मर ही गए, उन्होंने कितनी यात्राएं कीं। सारे विद्वानों को विवाद कर–कर के परास्त कर दिया, वे लोग उनके शिष्य बन गए। जो दो दिन पहले उनको दुश्मन की तरह ले रहे थे, लड़ने को तैयार थे, अब जब वे हार गए तो कहने को हो गए उनके चेले लेकिन तुम सोच सकते हो क्या कि उनके हृदय में गुरु बसे हैं? यह हो नहीं सकता। उनको पता है, ठीक है ये तर्क में जीत गए, हमसे ज्यादा तार्किक हैं लेकिन थोड़ी और मेहनत हम भी करें तो इनके तर्कों को भी काटा जा सकता है। ऐसा कोई तर्क नहीं जिसका कोई विपरीत न हो सके।

जैसे सम्राट तलवारें लिए फिरते थे, सेनाएं लिए फिरते थे, आक्रमण कर दिया; जो राजा हार गया वह सरेंडर कर देगा। ठीक है अब वह अपना राज्य अर्पित कर देगा कि यह भी आपका हो गया, हम भी आपके राज्य में शामिल हो गए। करीब–करीब वैसे ही इन विद्वानों की कहानी है। कुछ फर्क नहीं है सिकंदर और शंकराचार्य की टेंडेंसी में और इसलिए जो शिष्य कहला रहे हैं वे भी कोई वास्तव में शिष्य नहीं हैं। एक की तलवार जीत रही थी, एक का तर्क जीता। लेकिन बात हार जीत की ही है।

राजा, महाराजाओं की लड़ाई शारीरिक तल पर थी, तलवारों से किसी की

गर्दन काट सकते थे। और इन विद्वानों की लड़ाई तर्कों की है। ये किसी की बुद्धि या किसी के सिद्धांत काट सकते हैं। टेंडेंसी वही है और इसलिए वह वास्तव में गुरु शिष्य संबंध नहीं है, केवल ऊपर–ऊपर से ही वैसा लग रहा है, यह बौद्धिक तल पर सीमित है।

‘ बसि रहे हिरदै गुरचरन पिआरे।’

‘प्यारे’ प्यारे गुरु चरण। जो हमें हरा देता है वह हमें प्यारा नहीं लगता। याद रखना, जिससे हम हार जाते हैं हम उससे प्रतिशोध लेने की भावना से भरे रहते हैं। कभी मौका मिलेगा तो देखेंगे, बदला लेंगे। वह व्यक्ति हमें प्रिय नहीं लगता, हम डर भले सकते हैं उससे। उसके पास ज्यादा शक्ति है, हम भयभीत हैं, नहीं उत्तर दे सकते अभी। हम डर जाएंगे लेकिन प्रेम में नहीं पड़ेंगे। ऊपर–ऊपर से दिखावटी प्रेम होगा।

समझो किसी राजा ने दूसरे राज्य पर आक्रमण किया और वहां के राजा को हरा दिया, उसकी सेना को परास्त कर दिया। क्या आप सोचते हैं कि उस राज्य के लोगों में, राजा में, सेना में, यह जो आक्रमणकर्ता है, जो जीत गया, इसके प्रति प्रेम होगा? हो सकता है क्या कभी? असंभव! इससे डर गए हैं, इसके पास ज्यादा बलशाली सेनाएं हैं। इसने कब्जा जमा लिया। इससे प्रेम नहीं हो सकता। हमेशा इंतजार रहेगा, कभी मौका मिलेगा तो बदला लेना है।

ठीक ऐसे ही तर्क में जो हार गए, बुद्धि से परास्त हो गए, वे कभी भी प्रेम में नहीं पड़ेंगे। ऊपर से दिखावटी, चमचागिरी करेंगे, भीतर–भीतर उनका क्रोध रहेगा। क्योंकि जब वे हारे तो उनका अपमान हुआ है। वे अपने अपमान का बदला लेकर रहेंगे। इसलिए इस बात को खूब अच्छे से समझ लीजिएगा।

‘ बसि रहे हिरदै गुरचरन पिआरे।’

यह बड़ा प्यार का संबंध है, जहां कोई हार जीत का सवाल नहीं है, प्यार का सवाल है। प्रेम और भय एक दूसरे के विपरीत हैं। हम जिससे भयभीत हैं हम उसे कभी प्रेम नहीं कर सकते। सामान्यतः लोग सोचते हैं प्रेम और घृणा एक दूसरे के विपरीत हैं। शब्दकोष में ऐसा ही लिखा है। लेकिन जो शब्दकोश में लिखा है, जीवन की कोश में अलग लिखा है। घृणा और प्रेम एक दूसरे के विपरीत नहीं हैं क्योंकि वे समानांतर, संग साथ चल सकते हैं। विपरीत होते तो एक साथ कैसे चल सकते थे? जैसे प्रकाश और अंधकार विपरीत हैं तो एक साथ नहीं हो सकते, कोई एक होगा। प्रेम और घृणा तो बराबर संग साथ चल रहे हैं।

दुनिया के अधिकतम पति–पत्नी एक दूसरे से नफरत भी करते हैं और काफी मोहब्बत भी करते हैं। बिल्कुल संग साथ चल रहा है। सुबह झगड़ा हुआ शाम तक फिर

बड़ी मीठी–मीठी बातें होने लगेंगी। फिर कल जहर उगलेंगे, फिर अमृत बरस जाएगा। बाप–बेटे के बीच में प्रेम, घृणा दोनों इकट्ठे चल रहे हैं, उसी से प्रेम भी है उसी से घृणा भी है। जान देने को भी तैयार है पिताजी की खातिर, और कई बार मन में ख्याल आता है कि इनकी जान ही ले लें। दोनों चीजें चल रही हैं, प्रेम और घृणा। तो इसमें तो कोई आपस में विरोध नहीं है। अगर विरोध होता तो एक साथ कैसे होतीं? भाई–भाई के बीच में, सास–बहु के बीच में ऐसा नहीं है कि घृणा नहीं है, घृणा भी है और प्रेम भी है। दोनों चीजें हैं इसलिए इनमें एक्जिस्टेंशियल ऑपोजीशन नहीं है। ये एक साथ हो सकते हैं, अक्सर एक साथ होते हैं, दोनों इकट्ठे।

तो प्रेम का असली विरोधी कौन है? प्रेम का असली विरोधी तत्व है भय। जहां भय है वहां प्रेम नहीं है। जहां प्रेम है वहां भय नहीं है। सच पूछो तो प्रेम का मतलब ही है किसी व्यक्ति की मौजूदगी में हम रिलैक्स हो सकते हैं, हम निर्भय हो सकते हैं। हम जैसे हैं वैसे ही हो सकते हैं। हमें कुछ दिखाना नहीं है। जहां हम भयभीत हैं, वहां काफी दिखावटी आचरण करना होगा। नकली व्यवहार करना होगा। एटिकेट्स और मैनर का पालन करना होगा। सब ऊपरी–ऊपरी है नाटक, हम रिलैक्स नहीं हो सकते। जिससे हम भयभीत हैं उससे हम भयग्रस्त होंगे। हमेशा एक टेंशन रहेगा और ऐसे व्यक्ति के साथ हम ज्यादा समय बिताना भी नहीं चाहेंगे। अधिकांश साधु महात्माओं के पास जाओ दर्शन करो, पांव छुओ, आशीर्वाद लो, चलते बनो। ज्यादा देर वहां टिके तो बहुत मुसीबत खड़ी हो जाएगी। वहां कोई टिकना नहीं चाहता। थोड़ी देर हम उस व्यक्ति के संग हो सकते हैं जिससे हमें भय लग रहा है, ज्यादा देर नहीं हो सकते।

तो प्रेम का अर्थ है जिसके संग हम होना चाहते हैं, हम रिलैक्स रहते हैं, वही सच्चा प्रेम है। जहां हम जैसे हैं वैसे ही हो सकते हैं, हमें कुछ लुकाना–छुपाना नहीं है, कुछ झूठा प्रगट नहीं करना है। हम अपने स्वभाव में हो सकते हैं, दूसरा अपने स्वभाव में हो सकता है और दोनों में मैचिंग है। इसको कहेंगे प्रेम। इसलिए प्रेम, घृणा संग साथ होते हैं उनका कोई विरोध नहीं है। प्रेम, भय एक साथ नहीं हो सकते। इनमें है वास्तविक विरोध।

' बसि रहे हिरदै गुरचरन पिआरे।
कामि क्रोधि लोभि मोहि मनु लीना।'

कहते हैं, मेरा मन तो लीन था इन षट् रिपुओं में।

'बंधन काटि मुकति गुरि कीना।'

गुरु ने मुझे मुक्ति दिलायी इन बंधनों को काट कर, तब मैं रिलैक्स हुआ, शिथिल हुआ, शांत हुआ।

‘ दुख सुख करत जनमि फुनि मूआ।
चरन कमल गुरि आस्रय दीआ।।’

कहते हैं मैं तो सुख–दुख के आकर्षण से बारम्बार आवागमन के फेरे में पड़ा था। सद्‌गुरु की कृपा से मुझे ठीक–ठीक आश्रय मिला, जगह मिली उसके चरण कमलों में और मैं सुख–दुख से मुक्त हुआ। हम जिसे आनंद कहते हैं वह सुख–दुख से भिन्न एक तीसरी अवस्था है। दुख में एक्साइटमेंट होता है, सुख में भी एक्साइटमेंट होता है। और जहां एक्साइटमेंट है, वहां अशांति है। उस चीज को हम ज्यादा देर बर्दाश्त नहीं कर सकते। दुख को भी हम ज्यादा देर टॉलरेट नहीं कर सकते, सुख को भी ज्यादा देर टॉलरेट नहीं कर सकते। वह भी थोड़ी देर के लिए होता है तो अच्छा है।

कई लोग कहते हैं सुख क्षणभंगुर क्यों होता है? अरे पागल अगर वह लंबा टिक जाए तो प्राण ले लेगा। यह तो अच्छा है कि क्षणभंगुर है। उतनी उत्तेजना की अवस्था में हम ज्यादा देर नहीं रह सकते। वह कोई रिलैक्स स्टेट नहीं है। पगलाए हुए हैं, दुख में भी पगला जाते हैं, सुख में भी पगला जाते हैं। वह कोई स्वस्थ अवस्था नहीं है, शांत अवस्था नहीं है। तो आनंद इन दोनों से परे है। यह सुख–दुख का आकर्षण ही हमें इस जन्म में खींच–खींच लाता है बारम्बार, क्योंकि यह देह धारण पर ही संभव है।

हम आकर्षित होते हैं सुख से किंतु उसकी छाया की भांति दुख भी आता है। बाजार में जो स्कीम चलती है न, एक के साथ एक फ्री। हम एक ही चीज खरीदने गए थे लेकिन दूसरी मुफ्त में है, पैकेज डील है, उसके साथ ही साथ मिलेगी। तो हम सुख प्राप्त करने की कोशिश करते हैं इसलिए हम जन्म लेते हैं, जिंदगी भर वही कोशिश करते हैं। किंतु ‘पैकेज डील’ है, सुख के साथ दुख आएगा। जैसे पानी में एक लहर ऊपर उठी, हवा का एक झोंका आया, धक्के से पानी ऊपर उठा, अब ठीक उतना ही नीचे जाएगी। अगर एक फुट ऊपर उठी थी लहर तो एक फुट का अब गड्ढा बनेगा इसके तुरंत बाद; बिल्कुल परफेक्ट बैलेंस, जरा सा भी डिफरेंस नहीं हो सकता। जिन लोगों ने फिजिक्स पढ़ा होगा, उनको पता होगा कि तरंगे कैसे चलती हैं? वेव्स, बेस लाईन के जितने ऊपर होती हैं, ठीक उतने ही नीच होती हैं।

तो सुख–दुख तरंग की भांति हैं, ..‘अप्स ऐण्ड डाउन्स’। तो हम आकर्षित तो हुए थे सुख से लेकिन उसके पीछे–पीछे दुख सुनिश्चित रूप से आएगा। तो यह जिंदगी हमें शिक्षा देने के लिए है। अगर गौर से देखो, निरीक्षण करो, तो पाओगे कि ये दोनों चीजें आपस में संयुक्त हैं। ऐसा नहीं हो सकता कि लहर ऊपर उठे और फिर नीचे न गिरे। जहां पहाड़ है उसके ठीक बगल में खाई होगी। जब पहाड़ पर से खड़े होकर देखोगे तो नीचे जो दिखेगा वही तो खाई है। तो दोनों चीजें एक साथ बनती हैं। एक

फ्लैट जमीन हो बिल्कुल, सपाट मैदान और मैं आप से कहूं कि एक छोटी सी पहाड़ी यहां बना दीजिए तो आप क्या करेंगे? मिट्टी खोदकर फावड़े से एक ढेर लगाएंगे। आप कहेंगे देखिए छोटी सी पहाड़ी बना दी हमने। नहीं! आप ने दो चीजें बना दीं, एक पहाड़ी और एक खाई। जहां से मिट्टी खोदी वहां खाई हो गयी। क्या अकेली पहाड़ी बना सकते हैं? यह संभव ही नहीं है।

तो सुख–दुख इसी प्रकार के हैं और हमारी जिंदगी इसीलिए है कि हम गौर से इस बात का निरीक्षण कर लें ताकि इसके आकर्षण से भी छुटकारा हो जाए। तो गुरु ने जो मुक्त कराया उसका उपाय क्या है?

‘ दुख सुख करत जनमि फुनि मूआ।
चरन कमल गुरि आस्रय दीआ।
बंधन काटि मुकति गुरि कीना।।’

कैसे मुक्त किया? इस बात पर सजग करा के कि ध्यान ला कर के देखो गौर से– जहां–जहां सुख चाहा और जितना सुख चाहा ठीक उतना ही बराबरी का दुख भी पीछे–पीछे आया। आप चाहते हो अगर भविष्य में दुख ना मिले तो कृपया सुख की आकांक्षा छोड़ दो। फिर तुम दुख से मुक्त हो जाओगे। सुनने में बड़ा अटपटा लगता है इसलिए सात अरब लोग दुनिया में इस बात को पकड़ नहीं पाते।

जितनी सुख की आकांक्षा होगी, उतना ही ज्यादा दुख मिलेगा। तुम जितना ऊंचा पहाड़ बनाने की कोशिश कर लोगे उतनी बड़ी खाई खुद जाएगी। अगर शांति चाहिए तो यह पहाड़ बनाने की कोशिश बंद कर दो। अपने अनुभव का निररक्षण करो कि क्या ऐसा बारम्बार नहीं हुआ? बारम्बार, बारम्बार, बारम्बार, ..जितना सुख चाहा था उतना ही दुख मिला।

अभी मैं महाराष्ट्र में था, एक सज्जन अपना वैवाहिक दुख सुना रहे थे। मुझे लगा कि किसी भी भांति अपनी पत्नी से राजी नहीं हैं ये, मुद्दे अलग–अलग हैं, कि यह गिना रहा है, वह गिना रहा है। उनकी पत्नी से पूछा तो वह कुछ और बता रही हैं– यह कारण, वह कारण। मुझे लग रहा है कि कारण कुछ और है। ये लोग जो चीजें बता रहे हैं कि जिन बातों पर झगड़ा होता है, वास्तव में कुछ और बातें हैं। यह मुख्य मुद्दा नहीं लग रहा है।

फिर एक दिन मॉर्निंग वॉक में उनकी पत्नी नहीं थी, अकेले पतिदेव थे, उससे पूछा तुम सही–सही बताओ तुम्हें अपनी पत्नी अच्छी क्यों नहीं लगती? उन्होंने कहा वो सांवले रंग की है। मैं थोड़ा चौंका! उसकी पत्नी तो सांवले रंग की नहीं थी। मैंने उसको कहा कि तुम उसको सांवली कहते हो? बोले हां, वो मुझे पहले ही दिन से कभी अच्छी

लगी नहीं। ऐक्चुअली मुझे कभी नहीं जंची वो। लेकिन मैंने कहा तुम सांवली क्यों कह रहे हो? वे कहने लगे आपके हिसाब से होगी गोरी। लेकिन मेरी आकांक्षा बहुत गोरी से शादी करने की थी।

वे सिंधी समाज के हैं। सिंधी में एक खास स्टैण्डर्ड है गोरापन। बहुत ही हाई क्वालिटी गोरा। तो मैंने कहा ठीक है, मैं तो मध्य प्रदेश का रहने वाला हूं। वहां के हिसाब से तुम्हारी पत्नी बहुत गोरी है। वे कहने लगे, आपके हिसाब से होगी लेकिन मेरे मन में जो धारणा थी, जितनी गोरी होनी चाहिए थी, उतनी गोरी वह नहीं है। अब धारणा तो तुम्हारी कुछ भी हो सकती है!

सुख की जितनी बड़ी आकांक्षा होगी, उतना ही बड़ा दुख मिल जाएगा। ऐसा नहीं सोचना कि उतनी गोरी पत्नी मिल जाती तो ये सज्जन सुखी हो पाते। उतनी गोरी पत्नी जब आती तो वह भी बहुत अहंकारी होती। उसका उज्जवल अहंकार भी होता। एकदम चमकीला, नुकीला अहंकार, उसको ये सज्जन पसंद न आते। वह हमेशा चिढ़ी–चिढ़ी रहती कि इतने सांवले पतिदेव से शादी हो गयी। ये अपने से भी ज्यादा गोरी पत्नी चाह रहे थे। मान लो मिल जाती तो एक बात तो पक्की है कि उसे ये सज्जन सांवले लगते। बात तो कभी बनती नहीं। डिसएप्पॉइंटमेंट रहता ही रहता।

इस चीज को खूब अच्छे से समझना। किसी एक मुद्दे पर नहीं, जिंदगी के भिन्न–भिन्न पहलुओं पर इसको लागू कर के देखना। और आप पाएंगे कि जहां–जहां हम सुख की कामना करते हैं वहीं–वहीं दुख का गड्ढा खोद लेते हैं। ऐसा नहीं समझ लेना कि हम होशियारी कर लेंगे, और सिर्फ पहाड़ बनाएंगे। ऐसी होशियारी नहीं हो सकती। यह होशियारी तो सात अरब आदमी कर ही रहे हैं और आज तक किसी को सफलता नहीं मिली। सफलता उसी को मिली जिसने देख लिया कि यह बात मूर्खतापूर्ण है, पूरी बात ही मूर्खतापूर्ण है। बिना गड्ढा खोदे पहाड़ बन ही नहीं सकता और गड्ढा तुम ही खोदते हो और फिर तुम रोते हो कि क्या हुआ? हम तो पहाड़ बना रहे थे?

यह है मुक्ति का उपाय।

‘ बंधन काटि मुकति गुरि कीना।
अगनि सागर बूड़त संसारा।
नानक बाह पकरि सतिगुरि निसतारा।।’

कहते हैं इस अग्निरूपी संसार में सब लोग डूब रहे थे, सद्‌गुरु ने बांह पकड़कर बाहर निकाला।

अक्सर संसार के बारे में जो वचन आते हैं संतो की वाणी में उनको निंदात्मक या

आलोचनात्मक मत लेना। वे वस्तुतः जो वास्तविक संसार है उसकी चर्चा नहीं कर रहे हैं। लेकिन हमारा जो मनोकल्पित संसार है उसकी बात कर रहे हैं। जब कह रहे हैं 'अगनि, सागर बूड़त संसारा' ये संसार अग्नि के सागर जैसा है, आग का सागर।

गालिब ने कहा है न, एक आग का दरिया है और डूब के जाना है। यह है अग्नि सागर। इसका मतलब ये वृक्ष और पहाड़ और नदियां, और लोग, और पशु-पंछी, ..ये नहीं। इसको खूब अच्छे से ख्याल रखना। यह संसार हमारे मन के काल्पनिक कामनाओं का संसार है, उसकी बात कर रहे हैं। वह है अग्नि सागर। यह बाहर का संसार तो परमात्मा का साकार रूप है इसकी बात नहीं कर रहे हैं। यह तो प्रगट ब्रह्म है, जिसे हम संसार कह रहे हैं। यह प्रगट ब्रह्म है, यह हमें नहीं जला रहा। हम जिस चीज में जल रहे हैं- वह है हमारी ही कामना, क्रोध इत्यादि की अग्नियां।

ईर्ष्या को जलन कहते हैं न! जलाने वाली। हम अपनी ही मानसिक अग्नियों में जल रहे हैं, सेल्फ क्रिएटेड। क्रोध को कौन पैदा करता है? निश्चित ही हम ही पैदा करते हैं। ईर्ष्या कौन पैदा करता है? हो सकता है आप जिसके प्रति ईर्ष्या से भरे हों उस बेचारे को पता ही न हो। वह रिंन का विज्ञापन था न- उसकी साड़ी मेरी साड़ी से सफेद कैसे? उस बेचारी को पता ही नहीं, वह सड़क से निकली, उसको क्या पता कि कोई जल-भुनकर राख हो गयी, उसकी साड़ी लाल हो गयी उसको पता ही न हो।

क्रोध में तो फिर भी तुम दूसरों पर आरोप थोप दोगे कि इस आदमी ने ऐसे अपमानजनक शब्द कह दिए, इसलिए मुझे गुस्सा आ गया। लेकिन ईर्ष्या के बारे में क्या कहोगे? कामवासना के बारे में क्या कहोगे? सामने वाले को हो सकता है कि पता भी न हो। वह आपको जानता ही न हो, उसने आपको देखा ही न हो। फिर आप कैसे कह सकते हैं कि उसकी वजह से वासना उत्पन्न हुई, कि उसकी वजह से ईर्ष्या पैदा हो गई? उसका तो कोई रोल ही नहीं है।

क्रोध में तो हम बड़ी आसानी से दूसरों पर आरोप थोप देते हैं कि सारा दोष उसी का है। उसने अगर ऐसा-ऐसा न कहा होता तो मैं तो एकदम शांत आदमी हूं, मैं तो कभी क्रोधित होता ही नहीं, आप तो जानते ही हैं। मगर उस दुष्ट आदमी ने ऐसा-ऐसा कर दिया तो क्या करूं? अब दुनिया को सुधारने के लिए थोड़ा तो करना पड़ता है। उसमें भी मैं जस्टीफाइ करूंगा कि मैंने जो किया वह गलत नहीं है अगर नहीं गुस्सा करूंगा तो दुनिया बिगड़ जाएगी। तो बड़े कल्याण भाव से ही मैं गाली-गलौज करता हूं, और मार-पीट करता हूं, केस मुकदमे तक भी चला जाता हूं, क्या करूं, अन्याय हो रहा है तो लड़ना तो पड़ेगा। खूब जस्टीफाइ कर के कि हूं तो मैं बिल्कुल शांत आदमी, किंतु दुनिया के सुधार के लिए।

किसने हमको ठेका दिया है दुनिया सुधारने का? और आज तक दुनिया कभी सुधरी क्या? बड़े–बड़े सुधारक आए और सिधार भी गए दुनिया से और दुनिया जैसी चल रही थी वैसी ही चल रही है। क्रोध में फिर भी हम दूसरों के ऊपर दोषारोपण कर सकते हैं, एक चांस है। लेकिन चलो अन्य चीजें, काम, लोभ, मोह, ईर्ष्या, अहंकार इसमें दूसरे का क्या कंट्रीब्यूशन है? उसको कुछ पता ही नहीं है, जो कुछ हो रहा है आपके भीतर हो रहा है, आपकी वजह से ही हो रहा है।

इस तथ्य को खूब अच्छे से समझ लो, क्रोध भी ऐसा ही है। कोई कुंआ कहे कि मैं तो बिल्कुल सूखा कुंआ हूं, मुझमें पानी है ही नहीं। लेकिन जब ये लोग रस्सी बाल्टी लेकर आ जाते हैं न तो इनकी वजह से पानी निकल आता है। ऐसे तो मुझमें पानी है ही नहीं। हम उसकी बात से राजी न होंगे। क्योंकि अगर पानी है ही नहीं तो रस्सी, बाल्टी कैसे पानी निकाल पाएंगे? पानी होगा तभी रस्सी, बाल्टी पानी निकाल सकते हैं। हां जब तक रस्सी, बाल्टी नहीं थे तब तक हमें पता नहीं चल रहा था कि पानी है। जब निकाला गया तब पता चला।

किसी व्यक्ति ने आकर कुछ अवज्ञा कर दी, अपमानजनक शब्द कह दिए तो हम नाराज हो गए। ये नाराजगी का पानी कुएं के भीतर मौजूद नहीं था तो इसका अपमानजनक शब्दों की बाल्टी कुछ नहीं कर सकती थी। अगर कुंआ सूखा था तो सूखा ही रहता। आप बाल्टी को कितना भी जोर से हिलाते–डुलाते रहें, रस्सी लटकाते रहें, कुछ होने वाला नहीं। इसलिए क्रोध के बारे में भी याद रखना वह वासना और ईर्ष्या जैसा ही है। दूसरे से कोई संबंध नहीं है।

पानी हमारे भीतर है इसलिए निकलता है, अगर नहीं होता तो नहीं निकलता। जैसे लोग आप के संपर्क में आते हैं वैसे ही महावीर के संपर्क में भी आए थे। बुद्ध के संपर्क में भी आए थे, ईसा मसीह के संपर्क में भी आए थे। किन्तु उनके भीतर से तो क्रोध नहीं निकला और जितनी बड़ी रस्सी, बाल्टी उन लोगों ने डाली थी उतनी बड़ी आपके भीतर तो डाली भी नहीं गई होगी, उतनी गहराई तक। बेचारे को सूली पर चढ़ा दिया, कीलें ठोक कर लटका दिया। एक लाख आदमियों की भीड़ गालियां दे रही, पत्थर फेंक रही, ऐसा तो आपके रिश्तेदारों ने अभी तक नहीं किया!

जब तक हम इस तथ्य के प्रति जागरूक नहीं होंगे कि ये षट्रिपुएं और भांति–भांति के दुख किस प्रकार से आए? कहां से आए? किस कारण से आए? ... तब तक हम इनका निवारण नहीं कर पाएंगे। अगर हम मानते रहे कि ये दूसरों की वजह से आ रहे हैं, हम दूसरों को सुधारने में लग जाएंगे। काश हमें दिख जाता कि मेरे भीतर ही है कारण! तब हम उसका निवारण कर पाते! अगर डायग्नोसिस ठीक नहीं है

तो ट्रीटमेंट कैसे ठीक होगा? किसी को है मलेरिया की बीमारी है और टी.बी. का इलाज कर रहे हैं तो बेचारा मर जाएगा। इससे तो अच्छा था कि कोई इलाज ही नहीं करते। कम से कम मलेरिया से मरता।

डॉक्टर नसरुद्दीन के पास एक आदमी आया और उसने कहा कि मैं बहुत घबराया हुआ हूं, मैंने लोगों से सुना है डॉक्टरों के बारे में कि आजकल डॉक्टर बिल्कुल लापरवाह हो गए हैं। इलाज करते हैं टी.बी. का, और आदमी मर जाता है कैंसर से। किसी को कैंसर का इलाज दे रहे थे, पता चला उसे कैंसर था ही नहीं। किसी का अपेंडिक्स निकाल दिया तो पता चला कि उसकी किडनी खराब थी। कहीं आप भी तो ऐसा नहीं करेंगे। नसरुद्दीन ने कहा कि बिल्कुल निश्चिंत रहो मेरा आज तक का रिकार्ड है कि मैंने जिस बिमारी का इलाज किया है, लोग उसी बिमारी से मरे हैं! अगर मैंने टाइफाईड का इलाज किया है तो मरीज टाइफाईड से ही मरा है। अगर डायग्नोसिस गलत होगा तो सारा ट्रींटमेंट गलत हो जाएगा। और ये सात अरब दुखियारे लोगों की डायग्नोसिस में भूल कहां है?

पहली बात, उनको यह समझ में नहीं आ रहा कि ये काम, क्रोध, लोभ, मोह इन सब का कारण स्वयं के भीतर है, दूसरे से इनका कोई लेना-देना ही नहीं है। और दूसरी बात, दुख का गड्ढा खोदने से ही सुख का पहाड़ निर्मित होता है। यह संयुक्त बातें हैं, इसमें से एक को नहीं बचा सकते हम और एक को हटा भी नहीं सकते। रहेंगे तो दोनों रहेंगे या फिर सपाट मैदान होगा। उस सपाट मैदान को ही हम शांति और आनंद कहते हैं। और चुनाव हमारा है। इसमें दूसरा कुछ कर नहीं सकता।

आओ, हमलोग इस शबद के साथ गाते हुए उत्सव मनाते हैं। जय ओशो!
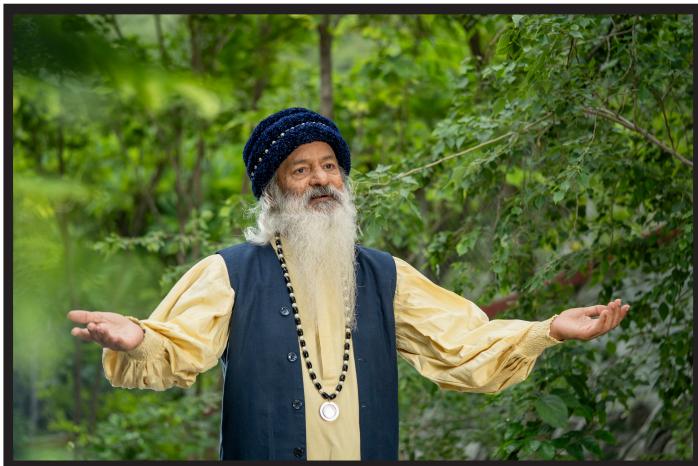
आस्तिक कौन, नास्तिक कौन?

काहे रे मन चितवहि उदमु जा आहरि हरि जीउ परिआ।
सैल पत्थर महि जंत उपाए ता का रिजकु आगै करि धरिआ।। 1।।
मेर माधउ जी संत संगति मिले सि तरिआ।
गुरपरसादि परमपदु पाइआ सूके कासट हरिआ।। 1। रहाउ।।
जननि पिता लोक सुत बनिता कोइ न किस की धरिआ।
सिरि सिरि रिजकु संबाहे ठाकुरु काहे मन भउ करिआ।। 2।।
ऊडै ऊडि आवै सै कोसा तिसु पाछै बचरे छरिआ।
उन कवनु खलावै कवनु चुगावै मन महि सिमरनु करिआ।। 3।।
सभ निधान दस असट सिधान ठाकुर कर तल धरिआ।
जन नानक बलि बलि सद बलि जाईऐ तेरा अंतु न पारावरिआ।। 4।।

सभी मित्रों को नमस्कार! आज सुनते हैं गुरु अर्जुनदेव जी के अनमोल वचन–

' काहे रे मन चितवहि उदमु जा आहरि हरि जीउ परिआ।'

हे मन, तू संसार में आजीविका कमाने के लिए, रोजी–रोटी की भाग–दौड़ में इतना परेशान क्यों है? प्रभु ने स्वयं ही सारे प्रबंध कर रखे हैं।

' सैल पत्थर महि जंत उपाए'

दूर पर्वतों पर, पहाड़ों पर भी जीव–जंतु पैदा होते हैं। उनके पास भी उनका भोजन पहुंच जाता है।

' ता का रिजकु आगै करि धरिआ।। 1।।
मेर माधउ जी संत संगति मिले सि तरिआ।
गुरपरसादि परमपदु पाइआ सूके कासट हरिआ।।'

कहते हैं, उस प्रभु की कृपा से साधु संगत मिलती है। और साधु संगत की कृपा से भवसागर पार हो जाता है, परम पद प्राप्त होता है। सूखे काष्ठ भी, सूखी लकड़ियां भी फिर से हरे–भरे वृक्ष बन जाती हैं। ठीक ऐसे ही काव्यात्मक प्रतिमा की बात पुराने ग्रंथ में आती है, जैसे रामायण में अहिल्या पत्थर हो गयी थी और राम का स्पर्श पाकर फिर से जीवंत हो उठी। इसको कविता का प्रतीक समझना, पत्थर का मतलब है पाषाण हृदय हो गयी थी, भीतर से सब हरियाली सूख गयी थी, प्रेम भाव नष्ट हो गया था। फिर जीवंत हो उठी, फिर भाव भीतर उत्पन्न हो गए।

' सूके कासट हरिआ।
जननि पिता लोक सुत बनिता कोइ न किस की धरिआ।
सिरि सिरि रिजकु संबाहे ठाकुरु काहे मन भउ करिआ।।'

कहते हैं, हे मन तू क्यों भय करता है? परमात्मा स्वयं ही सब कुछ संभालने वाला है। और हम सोचते हैं कि संसार में माता–पिता, भाई–बहन, पति–पत्नी, बच्चे, मित्र .. .ये काम आएंगे, तो यह हमारा धोखा है। वास्तव में अंततः कोई भी काम नहीं आ सकता। अंततः जो अपने भीतर दिव्य गुणों में डूबा है, परमात्मा में लीन हुआ है, केवल वही एक चीज काम आएगी, ध्यान काम आएगा, समाधि काम आएगी। बाकी सब जिंदगी में साथी हैं, मृत्यु की बेला में कोई साथी नहीं हो सकता। इसमें किसी का दोष भी नहीं है, ऐसा ही नियम है, ऐसा ही हो सकता है।

' ऊडे ऊडि आवै सै कोसा तिसु पाछै बचरे छरिआ।'

देखते हो, माइग्रेटिंग बर्ड्स को! हजारों किलोमीटर दूर उड़ कर आ जाते हैं। जहां से आए थे, अंडे वहां दे दिए। उनकी अनुपस्थिति में अंडों में से बच्चे निकलेंगे। कोई माता–पिता नहीं है उनके लिए, भोजन का इंतजाम करने वाला कोई नहीं है, कोई

सिखाने वाला, कोई समझाने वाला नहीं है। फिर कौन उनकी केयर ले रहा है? वे कैसे बच पाएंगे? प्रभु ने अलग–अलग प्राणियों के लिए भांति–भांति के इंतजाम किए हैं, उनके लिए ऐसा ही इंतजाम है। वे अपने आप ही सीख जाएंगे। अपने आप ही उनको भोजन भी मिल जाएगा।

उन्होंने अच्छे उदाहरण दिए कि दूर पर्वतों पर, पत्थर पर जन्मने वाले कीड़े–मकोड़ों को भी भोजन मिल जाता है। बर्फीले प्रदेशों में रहने वाले, माइनस टेंपरेचर पर रहने वाले जो प्राणी हैं, उनको भी वहां भोजन मिल जाता है। समुद्र में पांच किलोमीटर नीचे रहने वाले प्राणियों के भी भोजन का इंतजाम है। मनुष्यमात्र ऐसा है जो चिंताग्रस्त है, परेशान है।

गुरु अर्जुनदेव जी कह रहे हैं, रिलैक्स हो जाओ, सब इंतजाम मौजूद है। जब माइग्रेटिंग बर्ड्स के बच्चों तक का इंतजाम है जिनके माता–पिता छः महीने बाद लौटेंगे और इस बीच बच्चों को खुद ही अपना इंतजाम करना है तो तुम्हें इतना परेशान होने की क्या जरूरत है!

' उन कवनु खलावै कवनु चुगावै '

कौन उनको खिलाएगा? कौन उनको चुगाएगा?

' मन महि सिमरनु करिआ। '

अतः ये चिंताएं छोड़ो! यह सब तो हो ही रहा है, किसी न किसी भांति हो ही जाता है। अपने भीतर प्रभु का सुमिरन करो, असली बात यही है।

' सभ निधान दस असट सिधान ठाकुर कर तल धरिआ।
जन नानक बलि बलि सद बलि जाईऐ तेर अंतु न पारावरिआ।। '

कहते हैं कि नौ निधियां, अठारह सिद्धियां, यह सब उसी प्रभु की कृपा से प्राप्त होती हैं। नानक कहते हैं कि बारम्बार, सहस्त्रों बार हम उस पर बलिहारी जाएं, उसके प्रसाद का कोई पारावार नहीं है, कोई अंत नहीं है। भांति–भांति से उसकी कृपा बरस रही है। दो प्रकार के दृष्टि वाले लोग हैं। एक वे हैं जो शिकायत से भरे होते हैं, उनकी दृष्टि उन चीजों पर अटकी होती है जिनका अभाव है, जिनकी कमी है, जो–जो अभी प्राप्त नहीं है। जब उस पर नजर होती है तो स्वभावतः शिकायत ही शिकायत पैदा होगी, क्रोध पैदा होगा, क्षोभ उत्पन्न होगा, लोभ उत्पन्न होगा, ईर्ष्या पैदा होगी। जो नहीं मिला है, उस पर नजर है तो दुख पैदा होगा।

दूसरे प्रकार के लोग हैं जिनको हम कहें पॉजीटिव दृष्टिकोण वाले। उनकी नजर उन चीजों पर है जो–जो प्राप्त हो रहा है। उनका जीवन धन्यवाद भाव से भरेगा, प्रेम भाव से भरेगा। उन्हें लगेगा कि प्रभु की कृपा ही कृपा बरस रही है। उसकी कृपा का पारावार नहीं।

ये दो प्रकार के लोग दुनिया में सदा से रहे हैं, आज भी हैं, आगे भी रहेंगे। हमारी मौज है, हम कौन सी जीवन शैली अपनाते हैं? और दोनों के पास पर्याप्त प्रमाण और सबूत मिल जाएंगे अपनी–अपनी बात को पुष्ट करने के लिए। दोनों सिद्ध कर सकते हैं कि हम जो कह रहे हैं वही ठीक है। इसलिए तर्क–वितर्क में नहीं जाना, दोनों के पास बहुत तर्क हैं। नानक से पूछोगे तो वे पच्चीस चीजें गिना देंगे कि देखो कैसे प्रभु सब इंतजाम कर रहा है? उसकी कृपा अपरम्पार है। और किसी शिकायत से भरे व्यक्ति से पूछो तो वह भी पच्चीस बातें बता देगा कि कोई कृपा नहीं है, मैं परेशान हूं, परमात्मा कोई दुष्ट है, शैतान है, सता रहा है। और वह पच्चीसों प्रमाण से सिद्ध कर देगा अपनी बात को।

सवाल यह नहीं है कि किसके तर्क कैसे हैं? सवाल यह है कि इनके परिणाम क्या हैं? वह आदमी जिसकी दृष्टि अभाव पर है, कमी पर नजर है उसके जीवन में परिणाम क्या आता है? परिणाम यह है कि वह सदा आंसू बहा रहा है, चिंताग्रस्त है, परेशान है, दुखी है, गुस्से में है, हमेशा नाराज है। किसी के प्रति उसका प्रेम भाव नहीं है। पूरे अस्तित्व के प्रति ही गुस्से में है। और नानक के जीवन को अगर देखेंगे हम, तो पाएंगे कि अपने दो मित्र बाला और मर्दाना के संग गीत गा रहे हैं। उनके दोस्त मृदंग बजा रहे हैं, मस्ती में झूम रहे हैं। नानकदेव जी ने पूरा विश्व भ्रमण कर लिया... नाचते, गाते, झूमते। अद्‌भुत व्यक्ति रहे होंगे! कौन इनके जैसे मस्ती में जिया होगा?

उस जमाने में जब कोई नक्शा नहीं था, कुछ पता नहीं था कि जा कहां रहे हैं? कौन सा रास्ता किधर जाता है? सड़क भी नहीं थी, जहां जा रहे, वहां की भाषा भी नहीं आती थी, नानक कहां–कहां घूम आए? सोवियत रूस घूम आए, चीन घूम आए, तिब्बत घूम आए, पूरा हिंदुस्तान घूम लिया, नेपाल घूम आए, यूरोप के देशों में चले गए, अरब देशों में चले गए। जहां–जहां जमीन जुड़ी थी, जहां–जहां जा सकते थे पैदल, चले गए। बड़े मजेदार आदमी रहे होंगे। जीवन को कितना पॉजीटिव दृष्टि से देखने वाले। न वहां की भाषा आती है, न वहां कुछ कम्यूनिकेशन हो पाएगा, न उनकी बात कोई समझेगा, न वे वहां के लोगों की बात समझेंगे। अंजान, अपरिचित जगह, यह भी नहीं पता कि बीच में कितना बड़ा रेगिस्तान पड़ेगा? कि कितना बड़ा जंगल पड़ेगा? कुछ भी नहीं पता, अब इनका जीवन, देखते हैं, कितने भरोसे से भरा हुआ है। कह रहे हैं प्रभु के प्रसाद का कोई पारावार नहीं। ऐसा भरोसा और श्रद्धा हो तभी तो कोई जिंदगी का इतना मजा ले पाएगा। कोई सुरक्षा का इंतजाम नहीं है, जहां जा रहे हैं वहां के लोग कैसा व्यवहार करेंगे, कुछ भी पता नहीं है। खाना–पीना भी मिलेगा कि नहीं मिलेगा कुछ पक्का नहीं है, लेकिन उनको पक्का भरोसा है। उनहें पता है कि जब माइग्रेटिंग बर्ड्स के बच्चों को खाना मिल जाता है तो हमें क्यों नहीं मिलेगा? जब उन पहाड़ों पर, जहां

बर्फ जमी हुई है, वहां पैदा हुए कीट–पतंगो को भोजन मिल जाता है तो हमें भी मिल ही जाएगा।

ऐसी श्रद्धा, पूरे अस्तित्व के प्रति गहन प्रेम का भाव, भरोसा, कि जो हो रहा है सुन्दर हो रहा है, अच्छा हो रहा है। इस भरोसे के साथ परिणाम देखें। मैं तर्क में नहीं जाऊंगा, क्योंकि वह दुखी आदमी भी बहुत तार्किक है, वह भी सिद्ध कर देगा कि उसका दुखी होना बिल्कुल ठीक है। और नानक से पूछोगे तो वे भी अपने आनंद को सिद्ध कर देंगे कि आनंदित होना ही ठीक है? किन्तु हमारे सामने सवाल यह है कि हमें क्या होना है? दुखी होना है कि आनंदित होना है। अपना–अपना चुनाव है। पर मूल बिंदु क्या है? मूल बिंदु है– हमारी नजर किस चीज पर है? हमें जो मिल रहा है उस पर है कि जिसका अभाव है उस पर है। इस मूल को पकड़िएगा, बहुत महत्त्वपूर्ण बात है।

ओशो ने आस्तिक और नास्तिक की परिभाषा इसी प्वाइंट पर की है। अस्ति का मतलब संस्कृत में होता है– 'जो है' और आस्तिक का मतलब हुआ जिसकी नजर उस पर है, जो है, जो मौजूद है, जो मिल रहा है, जो मिला है। और नास्ति का मतलब होता है– 'जो नहीं है', दैट व्हिच डज नॉट एक्जिस्ट, ...खालीपन, रिक्तता, कमी, अभाव। और नास्तिक यानी जो उन चीजों पर अपनी नजर गड़ाए हुए है, जो नहीं हैं, जिन–जिन चीजों को वह सोचता है कि उसके जीवन में होनी ही चाहिए थीं।

गुरुनानक की तरह के ही एक अद्भुत सूफी फकीर हुए बायजीद, अक्सर यात्रा में ही रहते थे। उनकी आदत थी रोज सुबह उठकर दोपहर को, शाम को आकाश की तरफ हाथ उठाकर धन्यवाद देते कि हे प्रभु तेरी अद्भुत कृपा है जो–जो हमें चाहिए वह सब मिल जाता है, बिना मांगे। बायजीद ने कभी कुछ मांगा नहीं, वे कहते थे कि मांगने की जरूरत ही नहीं पड़ती। सब कुछ मिल रहा है। बिना मांगे ही मिल रहा है। हम किस मुंह से मागेंगे? शरम आती है मांगने में। दरअसल हमें जो मिल रहा है वही इतना ज्यादा है कि हमें और मांगने में भी शरम आती है। जो मिला है उसका ठीक से पूरा उपभोग भी नहीं कर पाते हैं हम। हमारा उतना सामर्थ्य नहीं है, समझ नहीं है, फिर भी वह दिए ही चला जा रहा है।

एक बार ऐसा हुआ जिस गांव से वे गुजरते थे उस इलाके में दो–तीन गांव ऐसे पड़े कि तीन दिन तक उन्हें भोजन ही नहीं दिया। वे लोग सूफी थे, उनके शिष्य कट्टरपंथी मुसलमानों के गांव से गुजरे, उन्हें गांव के बाहर खदेड़ दिया। पानी तक न पूछा, खाने का तो सवाल ही नहीं। और बायजीद ने अपनी प्रार्थना रोज की तरह ही की। आखिर तीसरा दिन जब आया, भूखे–प्यासे शिष्यों ने कहा, हद हो गयी! अब भी वही प्रार्थना, अब बर्दाश्त के बाहर है। आप अभी भी कहे जा रहे हैं कि हे प्रभु, तेरी कृपा अपरम्पार है, जो हमें चाहिए, तू वही दे देता है, तू भी गजब है, कैसे पता चल जाता है

कि क्या चाहिए? वहीं दे देता है। शिष्य बहुत नाराज हुए और कहा कि अब नहीं चलेगी यह प्रार्थना, तीन दिन से खाना नहीं मिला। कहीं सोने तक को जगह नहीं मिली, उबड़–खाबड़ जमीन पर कहीं भी सो रहे हैं कंकड़–पत्थरों में, कोई घर में प्रवेश देने को राजी नहीं। अपमान कर के लोग घरों से भगा दे रहे हैं। जहां जाते हैं वहीं पर अपमानजनक शब्द सुनने को मिलते हैं। अब आपकी यह प्रार्थना ठीक नहीं। बायजीद ने कहा, क्यों ठीक नहीं है? प्रभु जानता है कि हमारी जरूरत क्या है? यह बेइज्जती हमारी जरूरत होगी, उसको पता है।

उसको लगा होगा कि कहीं बायजीद अहंकार से न भर जाए, हर जगह सम्मान ही सम्मान। तो अपमान मेरी जरूरत होगी इसलिए अपमान मिल रहा है। परमात्मा अद्‍भुत है। मुझे भी लग रहा है कि कुछ दिनों से कुछ ज्यादा ही सम्मान मिल रहा था, मुझे डर था कि कहीं मैं घमण्ड में न आ जाउं। अच्छा हुआ ये तीन दिन से जहां गए वहीं गालियां पड़ीं। परमात्मा की अद्‍भुत कृपा है, वह इतना ख्याल रखता है हमारी जरूरतों का। हमारी यही जरूरत थी कि इस समय हम अपमानित हों।

बायजीद के इस प्रेमभाव को, श्रद्धाभाव को कभी नष्ट नहीं किया जा सकता। और जो दुखियारे लोग हैं, जो हमेशा शिकायत करते रहते हैं, उनको खुश करने की कितनी भी कोशिश कर लो उन्हें खुश नहीं किया जा सकता। वे अच्छी से अच्छी चीजों में से भी दुखी होने जैसी चीज निकाल ही लेते हैं।

नसरुद्दीन थे महादुखियारे। कुछ वर्षों पहाड़ी इलाके में रहे थे। वहां उनके कुछ सेब के बगीचे थे और जैसा कि किसानों की आदत होती है हमेशा रोना–रोना, कभी कहते हैं पानी ज्यादा गिर गया और फल सड़ गए, कभी रोते हैं कि सूखा पड़ गया, सब सूख गया है, कभी कहते कि कीड़े–मकोड़े लग गए थे, इसलिए खराब हो गई फसल। कभी फसल तो ठीक आयी मगर कीमत कम हो गयी क्योंकि सभी की फसल अच्छी आयी। तो कभी कहते है कि खरीदार कम हैं और फसल ज्यादा है। ये किसान हमेशा रोना रोते हैं कि ये हो गया, वो हो गया। एक बार ऐसा हुआ कि बहुत सेब फले, कीड़े–मकोड़े भी नहीं लगे, न तेज धूप थी, न तेज पानी गिरा, सब जैसा होना चाहिए था वैसा ही हुआ। कुछ एक्सपोर्ट का बिजनेस शुरू कर दिया था किसी ने, तो खूब अच्छे मंहगे दामों में सेब बिक रहे थे। और नसरुद्दीन सदाबहार अपना मुंह लटकाए हुए, उदास, दुखी, गुस्से में, चिड़चिड़ाहट में, हो गए बर्बाद, लुट गए। उसके एक पड़ोसी ने कहा कि नसरुद्दीन इस साल तो कम से कम तुम खुश हो जाओ। न कीड़े–मकोड़े लगे, न ज्यादा वर्षा हुई, न कम वर्षा हुई, कीमत भी अच्छी मिल रही है, फल सड़े–गले भी नहीं।

नसरुद्दीन ने कहा इसी बात का तो रोना है। अरे फल सड़–गल जाते थे तो

जानवरों को खिलाने के काम आते थे। इस साल अच्छे खासे फल जानवरों को खिलाने पड़ रहे हैं। मंहगा होने की वजह से और दुख हो रहा है। पहले मान लो पांच रुपए किलो थे तो मन में था कि चलो जानवरों को पांच रुपए के, सड़े–गले खिला रहे थे। इस बार पच्चीस–तीस रुपए किलो के फल जानवरों को खिलाने पड़ रहे हैं। हम तो लुट गए, बर्बाद हो गए।

इस आदमी को कभी भी खुश नहीं कर पाएंगे, हो ही नहीं सकता। इसने कसम खा ली है कि यह कभी खुश नहीं होगा। नसरुद्दीन की बीवी तो और पहुंची हुई थी। ठंड आने के पहले उसने नसरुद्दीन के लिए स्वेटर बनाना शुरू किया था, एक लाल रंग का और एक हरे रंग का। और जब ठंड शुरू हुई और नसरुद्दीन का जन्मदिन आया तो उसने गिफ्ट किया और कहा कि ये लो दो–दो नये स्वेटर इस साल की ठंड के लिए। नसरुद्दीन बहुत प्रसन्न हुआ। अगले दिन जब सुबह वह अपने काम पर जा रहा था तो उसने सोचा कि नए वाले स्वेटर में से एक पहन लूं, उसने लाल वाली पहन ली। जैसे ही वह घर से बाहर निकल रहा था, पत्नी ने देखा और छाती पीट–पीटकर रोने लगी। उसने कहा तुम्हें तो मेरी कोई चीज पसंद ही नहीं आती, वो हरी वाली तो अच्छी नहीं लगी न। दरअसल तुम्हें मैं ही नहीं पसंद आती। अब नसरुद्दीन क्या करे? एक के ऊपर एक पहन ले तब भी झंझट होगी। जिसे ऊपर पहनेगा वह कहेगी कि अच्छा! ये वाली दिखा रहे हो तुम, दूसरे को भीतर छिपा लिया।

जो दुखी है उसका आप कुछ नहीं कर सकते। वह कुछ न कुछ रास्ता निकाल लेगा अपने रोने–धोने का। एक बार नसरुद्दीन की लॉटरी फंसी। उसने सोचा कि अब तो पत्नी को खुश कर दूं। हमेशा शिकायत करती है कि गरीबी में फंस गयी हूं, मां–बाप ने ठीक लड़का नहीं देखा, कैसे–कैसे रिश्ते आए थे, फलाने से शादी कर देते। वह आए दिन नसरुद्दीन को सुनाती थी कि मेरे पीछे कैसे–कैसे लड़के दीवाने थे? लेकिन मेरी किस्मत ही फूटी थी कि दीन–दरिद्र के घर आ गयी। जब नसरुद्दीन की लॉटरी फंसी तो सोचा कि आज तो कम से कम पत्नी खुश हो जाएगी। वह सूटकेस में पांच लाख रुपए लेकर चला आ रहा है, ऑफिस से घर भी जल्दी आ गया। दोपहर का समय था। उसने सोचा कि पत्नी को जाकर अभी बताता हूं खुशखबरी। पत्नी अपनी सहेलियों के संग बैठी थी, मोहल्ले की चार–छः औरतें बैठी थीं। सभी बैठकर अपने–अपने पतियों की निंदा का रसपान कर रही थीं, सभी दुखियारी अपना सुख–दुख बांट रही थीं कि किसका पति कितना बेकार है? नसरुद्दीन उछलता हुआ आया कि लॉटरी फंसी है खुश हो जाओ, ये लो पांच लाख रुपए। नसरुद्दीन की पत्नी की आंखें चढ़ गयीं। उसने कहा कि अरे फिजूलखर्च, पहले यह तो बता कि लॉटरी के टिकट खरीदने के लिए तेरे पास एक रुपया आया कहां से? क्योंकि पूरी तनख्वाह तो

मैं रख लेती हूं। इसका मतलब है तू अलग से कुछ बचाता है। एक रुपया कहां से आया, पहले उसका हिसाब दे।

इस औरत को कोई खुश कर सकता है क्या? पांच लाख तो बाद में देखेंगे, जो मिला है उस पर तो नजर ही नहीं है। एक रुपया उसने चोरी छुपे खर्च किया। उसने कहा जब एक मामले में तुम झूठ बोलते हो, छुपाते हो तो अन्य मामलों में तुम्हारा क्या भरोसा? मुझे तो पहले से ही तुम पर कोई भरोसा नहीं था। तुम आदमी ही भरोसेमंद नहीं हो। अब नसरुद्दीन ने सोचा ही नहीं था कि पांच लाख लेकर जाएंगे तो यह सब होगा!

सब के पास अपने-अपने तर्क हैं। पर देखना कि इस प्रकार की मानसिकता का परिणाम क्या आता है? हमें चुनना होगा, हमें ऐसा होना है क्या? तो इसके भी तर्क हैं, खूब अच्छे तर्क हैं, एकदम जस्टीफाइड लगता है। और तुम्हें गुरुनानक देव जैसा होना है, कि बायजीद जैसा होना है, जीवन को उत्सव बनाना है, ओशो जैसा होना है? उनके अपने तर्क हैं। असली बात यह है कि हम कौन सी जीवन शैली अख्तियार करना चाहते हैं? कौन सा लाइफ पैटर्न? क्या हम प्रेमपूर्वक जीना चाहते हैं? तो कृपया उन चीजों पर ध्यान दें जो हो रहे हैं। और आप पाएंगे, उसकी कृपा की कोई सीमा नहीं है। नानक ठीक कहते हैं।

‘ जन नानक बलि बलि सद बलि जाईऐ
तेर अंतु न पारावरिआ।।’

कोई पारावार नहीं है। इतना अद्भुत सब हो रहा है। बायजीद के जीवन के एक और प्रसंग मैं आप से कहूं, फिर हम इस शबद के संग उत्सव मनाएंगे। बायजीद अपनी यात्रा पर थे। कहीं जंगली रास्ते से गुजरते थे और पैर में कोई कांटा गड़ गया, खून बहने लगा। उनकी आदत थी कि जब भी कोई घटना घटे, सबसे पहले अल्लाह को धन्यवाद, शुक्रिया। उन्होंने पहले तो हाथ ऊपर उठाकर कहा या अल्लाह, परवरदिगार तेरा लाख-लाख शुक्रिया! फिर कांटा निकाला और पट्टी वगैरह बांधी। शिष्यों ने कहा कि अब हमें समझ में नहीं आया कि इसमें परवरदिगार को लाख-लाख शुक्रिया करने की क्या जरूरत थी? नानक होते तो कहते ‘जन नानक बलि बलि सद बलि जाईए’। इसमें बलिहारी जाने की कौन सी बात थी?

बायजीद ने कहा कि तुम्हें पता नहीं है प्रभु-कृपा का। मैंने कर्म तो ऐसे किए हैं कि मुझे सूली लगनी चाहिए लेकिन सिर्फ एक छोटा सा कांटा चुभाकर प्रभु ने बात समाप्त कर दी; छोटे से छोटा जो दंड हो सकता था। अन्याय तो वह नहीं कर सकता, न्याय तो करना होगा। लेकिन जज के हाथ में तो होता है, फैसला करते समय चाहे तो दण्ड

छोटा कर दे, चाहे तो दण्ड कठोर कर दे। बायजीद ने कहा कि मेरे कर्म ऐसे हैं कि लगनी तो मुझे सूली चाहिए थी पर एक छोटा सा कांटा चुभाया, बस। प्रभु की कृपा तुम देखो! अद्‌भुत कृपा उसने की है।

जो व्यक्ति प्रेमभाव में जी रहा है, कृपाभाव में जी रहा है वह तो एक–एक श्वास के लिए धन्यवाद देगा कि फिर एक सांस और आयी। हमने ऐसा कौन सा कर्म किया है कि हम हकदार हैं, हमारा जीवन एक क्षण और चले। है कोई ऐसा कर्म हमारा? एक सेकेंड और हमारा हृदय धड़के, हमारी एक सांस और चले, क्या हमारा कोई अधिकार बनता है? हमारा कोई हक है कि हम कह सकते हैं कि आज सुबह उठें, कि हमारा तो हक बनता था कि एक दिन और जिंदा रहें?

हर श्वास प्रभु की कृपा से ही आ रही है। हर घूंट पानी हम उसकी कृपा से पी रहे हैं। जो कुछ हो रहा है सब कुछ उसकी कृपा है। हमारा क्या हक है? कुछ भी तो नहीं। ऐसा हमने क्या किया जिसके बलबूते हम कह सकें कि हमारा अधिकार है, एक सेकेंड और जिंदा रहना चाहिए हमको। जो हो रहा है उसकी कृपा से, जो हुआ उसकी कृपा से हुआ और जहां–जहां कुछ निगेटिव जीवन में नजर आया है, ख्याल रखना, होना तो बहुत ज्यादा निगेटिव था, पर बहुत कम होकर रह गया। तुम गौर करना, हमेशा इस नजरिए से देखना, तुम हमेशा पाओगे कि यही बात सच है। होना तो बहुत ज्यादा निगेटिव संभव था, पर इतना कम हो कर रह गया। बायजीद की बात याद रखना, लगनी तो सूली थी, एक छोटा सा कांटा चुभ कर रह गया। और तुम पाओगे कि हमलोग भी बायजीद की तरह और नानक की तरह आनंदमग्न हो सकते हैं। सिर्फ अपना दृष्टिकोण, अपने नजरिए को बदलने की बात है। यही जिंदगी है, यही घटनाएं हैं, यही लोग हैं, सब कुछ ऐसे ही होता होगा उनकी जिंदगी में भी।

ऐसा नहीं सोचना कि आपकी पत्नी आपसे नाराज है। गुरुनानक की पत्नी भी उनसे नाराज थीं, वो मायके में ही रहीं। आप नहीं सोचना कि आपको संतान सुख नहीं मिल रहा है। बच्चे नाराज हैं, गुरुनानक देव जी के बच्चे भी नाराज ही थे, उनके पिताजी भी नाराज ही थे। अब जिन्होंने नाराज रहने की ठानी तो ठानी, क्या कर सकते हो? वे कसम खाकर बैठे हैं कि हम तो नाराज रहेंगे। अब नानक जैसा बेटा पाकर भी अगर बाप नाराज रहता है तो अब क्या करोगे?

सेब की इतनी अच्छी फसल आयी थी मगर फिर भी वे आंसू बहा रहे हैं, अब क्या कर सकते हो? बुद्ध के बाप भी नाराज थे, क्या कर सकते हो? अब और क्या चाहते हो? बुद्ध जैसा बेटा मिला, सारी दुनिया में लोग प्रसन्न हुए, हजारों साल तक, आज तक प्रसन्न हो रहे हैं। परन्तु बाप बहुत नाराज थे कि हमारी कुल प्रतिष्ठा दांव पर लगा

दी। राजा का बेटा होकर भीख मांगता फिरता है। नाक कटवा दी हमारी। हमारी परम्परा में किसी ने भीख नहीं मांगी। कुछ पूर्वजों का ख्याल रखते, नालायक! यह क्या सूझी–कटोरा लिए घूम रहे हो, दर–दर लोग भगा रहे हैं कि आगे बढ़ो। आखिर तुम्हें जरूरत क्या है भीख मांगने की?

बाप कैसे समझे? इनका भीख मांगना भी एक उपाय है, जब कोई भीख देता है तो आशीष वचन में उसको कुछ उपदेश के वचन कह देते हैं। वह व्यक्ति लेने को तैयार रहता है, उस समय उसका हृदय खुला रहता है। वह प्रेमभाव से कुछ भोजन दे रहा है और तभी वे एक दो वचन बोल देंगे जो उसकी जिंदगी में उद्धार का कार्य कर देंगे। बुद्ध कहते हैं कि किसी को सिर्फ दो ही दो तो फिर वह लेना बंद कर देता है। वह भी कुछ दे, बराबरी के तल पर हो तो अच्छा रहता है। इसलिए भीख मांगना ठीक है, वह भी कुछ दे रहा है तो हमने भी उसको कुछ दिया। तो वह ग्रहण करेगा, स्वीकार करेगा।

सिर्फ किसी को उपदेश ही उपदेश दो तो उसके अहंकार को चोट लगती है कि हम भी तो उसे कुछ देने का मौका दें। अब बुद्ध के बाप को कौन समझाए यह बात कि बुद्ध का भीख मांगना भी एक 'डिवाइस' है, अपनी करुणा बांटने का। वे दूसरों को नीचा नहीं दिखा रहे। उसे भी खूब ऊंचे स्तर पर रखा है कि देखो हम तुम्हारे घर आएं हैं, हम भी तुमसे कुछ मांग रहे हैं। उसके प्रति सम्मान का भाव जगे, उसे ऐसा न लगे कि हम सिर्फ लेने वाले ही हैं उनसे। और पता नहीं कि वह हमारे पास आएगा कि नहीं, तो हम ही उसके घर चलते हैं। ये उनकी करुणा है, उनकी दया है।

तो प्यारे मित्रों, प्रेम समाधि में इस बात को खूब अच्छे से हृदयंगम करना कि हमारा दृष्टिकोण कैसा है? हमें अपने चश्मे के मुताबिक ही नजर आता है, हरा चश्मा पहन लो तो सब हरा ही दिखने लगेगा, नीला पहन लो तो सब नीला ही दिखने लगेगा। सवाल यह है कि इसका परिणाम क्या होगा? नानक वाला चश्मा पहनेंगे तो हमारा परिणाम भी वही होगा, हम भी नानक जैसे आनंदमग्न होकर मस्ती भरी जिंदगी जिएंगे। जैसी जिंदगी हम जीते थे निगेटिव चश्मा पहनकर, वह तो जी ही चुके, घृणा से भरी, क्रोध से भरी, दुख से भरी। अब चलो, एक नया नजरिया अपनाएं।

आओ, प्रभु कृपा का आनंद मनाएं। अहोभाव से भर जाएं। जय ओशो!

हरि गुणगान करो मन मेरे
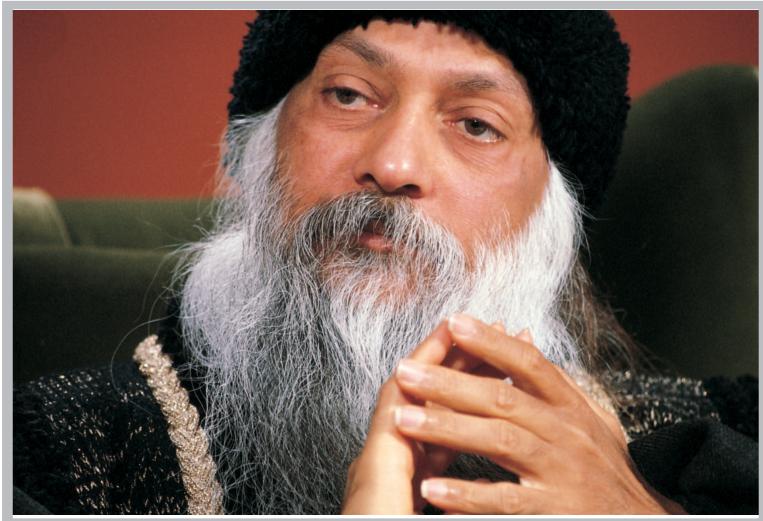
रसना राम को जसु गाउ।
आन सुआद बिसारि सगले भलो राम सुआउ।। 1।। रहाउ।।
चरन कमल बसाइ हिरदै एक सिउ लिव लाउ।
साध संगति होहि निरमलु बहुड़ि जोनि न आउ।। 1।।
जीउ प्राण अधारु तेरा तू निथावे थाउ।
सासि सासि समालि हरि हरि नानक सद बलि जाउ।। 2।।

प्यारे मित्रो, नमस्कार! आज के सत्र में आप सबका स्वागत है। आओ, इस प्यारे शबद के संग प्रभु का गुणगान करें–

'रसना राम को जस गाओ।'

कहते हैं– हे जिह्वा, प्रभु की चर्चा करो।

अगर लोगों की बातचीत सुनो और अगर उनकी बातचीत के केंद्रबिन्दु को संक्षेप में कहना हो तो वह है 'अहं' चर्चा, मैं कितना महान् हूं, कितना श्रेष्ठ हूं। वे ऐसा सीधे–सीधे नहीं कहते, भांति–भांति से प्रमाणित करना पड़ता है उन्हें कि मेरी महानता को समझो। कभी–कभी इसकी खातिर दूसरों को नीचा भी दिखाना पड़ता है। उनकी निंदा, आलोचना करनी पड़ती है ताकि साफ हो जाए कि दूसरों की तुलना में मैं कितना महान हूं। सारी चर्चा मुख्यतः अहं–चर्चा ही है।

संत कहते हैं– ब्रह्म चर्चा करो। यह अस्तित्व कितना विराट है, इसमें कहां हमारा अहंकार? हम हैं कौन? हमारी औकात ही क्या है? आश्चर्य! इस पूरे ब्रह्माण्ड की यह अद्भुत लीला हमें छोटी लगती है और अपना अहंकार हमें ज्यादा महान और बड़ा दिखाई देता है। और दिन–रात हम उसी के गुणगान में लगे रहते हैं। और अगर कोई सहमत न हो तो उससे दुश्मनी हो जाती है। दोस्ती का मतलब है, पारस्परिक अहंकार की पुष्टि। एक दूसरे के अहंकार को पुष्ट कर रहे तो दोस्त। और दुश्मन मतलब अब किसी ने अहंकार पुष्ट करना बंद कर दिया। अब हम नहीं मानते कि तुम महान हो। बस, दुश्मनी शुरू।

तो दोस्ती भी अहंकार से जन्मी और दुश्मनी भी अहंकार से जन्मी। दोनों का आधार एक ही है, बुनियाद एक ही है, जिस पर संबंधों का भवन खड़ा हुआ। हमारे तथाकथित प्रेम और क्रोध के संबंध, दोनों का आधार वही अहंकार है। किसी ने तारीफ कर दी, प्रशंसा में शेर कह दिए, बस खुश हो गए, प्रेम हो गया। यही सज्जन किसी दिन कोई अपमानजनक शब्द कहेंगे, आलोचना करेंगे तो बस सब खत्म। सारा प्रेम खत्म। शब्दों पर टिका हुआ था संबंध और शब्द हैं क्या? हवा में उठी तरंग हैं। अस्तित्वगत मतलब तो बस इतना ही है, बाकी अर्थ तो हमारे दिए हुए हैं। तो उन तरंगों को हमने क्या नाम दिया? उसी में हम खुश हो जा रहे हैं तो प्रेम हो जा रहा है, उसी में हम नाराज हो जा रहे हैं तो घृणा हो जा रही है।

अगर हम अपने पूरे जीवन के सार को देखें, चाहे हमारे कर्म हों, चाहे हमारे विचार हों, चाहे हमारी वाणी हो, हमारी सारी भावनाएं जिस बिंदु के आस–पास, इर्द–गिर्द घूम रही हैं, वह है हमारा 'अहं' भाव, 'मैं' भाव। हम उन लोगों के बीच में उठना–बैठना पसंद करेंगे जो इसमें समर्थन देते हैं। हम उन लोगों से बचना चाहेंगे जो हमारे अहंकार को

सहारा नहीं देते बल्कि सहारा छीनने की कोशिश करते हैं। हम उनसे दूर ही रहना चाहेंगे।

यह जो अहंकार की प्रतिमा हमने खड़ी की है, इसमें बहुत लोगों का सपोर्ट है। जैसे कोई मूर्ति गिरने वाली हो, और चारों तरफ से डंडों का सहारा देकर उसको टेक लगा दी गई हो, ऐसी ही हमारी अहंकार की मूर्ति भी है। अब कुछ दुष्ट लोग आ जाते हैं, वे इसे सहारा देने के बजाए पुराना सहारा भी छीनने लगते हैं, तब हम नाराज हो जाते हैं कि अब गए। अब यह मूर्ति ही लुढ़क जाएगी। इस दुष्ट आदमी से दूर रहो। हम उन लोगों को खोज रहे हैं जो एक–दो डंडे और लगा दें इसके सपोर्ट में। थोड़ा और ऊंचा उठा दें इसको। सावधान! इस बात को गौर से देखना।

मेरे एक मित्र थे, उनका नाम था प्रमोद कुमार। जब देखो तब अपनी प्रशंसा में लगे रहते थे। हमने कहा कि ऐसा करो ज्यादा विस्तार से बताने की जरूरत नहीं है, समय खराब है। संक्षिप्त में ही बता दो कि आज भी मैं महान ही हूं तो बात खत्म हो गयी। हमने कह दिया प्रमोद कुमार की जगह तुम्हारा नाम प्रमोद महान रख देते हैं। नाम में ही क्लियर हो गया, सिकंदर महान हुए, अकबर महान हुए, अशोक महान हुए, अलेक्जेंडर दि ग्रेट ऐसे ही 'प्रमोद दि ग्रेट'। यह बात उनको जंची कि ठीक है। जब नाम में ही हो गया तो अलग से गुणगान करने की जरूरत नहीं है।

हम लोग मान ही रहे हैं कि आप हैं महान। आपने जो कुछ किया वह महान ही रहा होगा। ये सीधे सरल आदमी हैं, साफ–साफ कह देते हैं। अन्य लोग प्रकारांतर से, परोक्ष रूप से यही सिद्ध करना चाहते हैं। साफ कहने की हिम्मत नहीं पड़ती कि मैं महान हूं। लोग एकदम से आपत्ति उठा देंगे कि क्या कह रहे हो? कहां सिकंदर महान, कहां अकबर महान और कहां तुम? तो एकदम से कोई मानेगा नहीं, इसलिए 'इनडायरेक्ट वे' में बताना पड़ता है कि भई समझो। तब 'इनडायरेक्ट वे' में हम कहेंगे कि मेरा भारत महान। अब हम तो भारतीय हैं ही, और जब पूरा देश ही महान है तो स्वभावतः हम भी महान। इसलिए हम कहते हैं– मेरी संस्कृति महान, मेरा धर्म महान, मेरा गुरु महान, मेरा शास्त्र, मेरी फिलॉसफी, मेरा सिद्धांत महान। और दूसरों की निंदा, आलोचना कर के उनको तुच्छ साबित करते रहेंगे। हम सीधा नहीं कह रहे हैं कि मैं हूं महान। हम 'मेरा' का विस्तार कर उन लोगों के साथ चर्चा कर रहे हैं जिनके साथ एसोसिएशन भी है 'मेरा'।

जैसे ट्रक में लिखा रहता है 'मेरा भारत महान'। अब पूरे हिंदुस्तान में ट्रक घूमता रहे, 'नो ऑब्जेक्शन'। बस इसको चीन या पाकिस्तान न भेज देना, आग लगा देंगे वे। वहां दूसरे ट्रक घूम रहे हैं। जब हम सब एक ही अहंकार से जुड़े हुए हैं तो कोई

ऑब्जेक्शन नहीं करता है, सपोर्टिव हो जाता है। आपके मन में कभी प्रश्न चिन्ह उत्पन्न हुआ 'मेरा भारत महान' देखकर? दीवारों पर जगह–जगह लिखा हुआ है 'गर्व करो कि हम हिंदू हैं'। मुसलमानों को शक पैदा होता है कि क्या पागल हो गए हैं लोग? काफिर और गर्व। अरे पापियों नर्क में जाओगे। लेकिन किसी हिंदू को सवाल पैदा नहीं होता, उसको लगता है ठीक। वास्तव में मैं भी यही कहना चाह रहा था कि मुझे गर्व है हिंदू होने पर, अच्छा हुआ दीवार पर लिखा ही हुआ है। कोई उसको मिटाएगा नहीं, कुछ और लिखा होता तो हम उस पर चूना पोत देते।

ये सब हमारी तरकीबें हैं– अपने अहंकार को पुष्ट करने की, साबित करने की। सीधा हम नहीं कह रहे हैं कि मैं हूं महान। पर इन सारी चीजों से अंततः यही सिद्ध होता है कि मैं हूं महान। अगर मैं भारत में पैदा न होकर चीन में पैदा हुआ होता तो फिर चीन महान हो जाता। अगर मैं हिंदू न होकर के ईसाई होता तो फिर ईसाई धर्म महान हो जाता। अगर मैं नास्तिक हूं तो नास्तिकता महान हो जाएगी। वास्तव में सब कुछ मुझ पर टिका हुआ है। मैं जिस खेमे में चला जाउं उसकी इज्जत बढ़ जाती है। मेरे होने से ही संसार की शोभा है।

नसरुद्दीन से किसी ने पूछा कि आप तो मुसलमान हैं और कुरानशरीफ में लिखा है कि कयामत होगी। आप मानते हैं कि नहीं? नसरुद्दीन ने कहा अरे! 200 प्रतिशत मुसलमान हूं मैं। उसमें लिखा है एक बार कयामत होगी मैं मानता हूं दो बार होगी। सुनने वाला थोड़ा चौंका, उसने कहा कि दो बार कैसे होगी? कयामत का मतलब है कि सब कुछ नष्ट हो गया। जब कुछ बचे ही नहीं तो दोबारा कयामत कैसे होगी? नसरुद्दीन ने कहा समझने की कोशिश करो भई। एक कयामत तो वह होगी जिसमें सब कुछ नष्ट हो जाएगा, सब ब्लैक होल में समा जाएगा। लेकिन वह तो बहुत बाद में होगा। उसके पहले एक और कयामत होने वाली है क्योंकि मेरी उमर है करीब 65 साल। दस, पंद्रह साल मैं और जिंदा रहूंगा। और जिस दिन मैं मरूंगा उस दिन दुनिया को पता चलेगी मेरी कीमत। हम कैसे संभाले हुए हैं और चला रहे हैं, यह हम ही जानते हैं। तो यह कयामत दूसरी कयामत से भी ज्यादा खतरनाक होगी। उस दूसरी वाली कयामत में तो तुम खत्म ही हो जाओगे, कष्ट कौन भोगेगा? जब मैं नहीं रहूंगा, फिर देखना दुनिया कैसी मुसीबत में फंसती है? एक समस्या का समाधान न सूझेगा। वो तो हम हैं कि किसी प्रकार चला रहे हैं। असली कयामत, बड़ी कयामत तो ये वाली होगी। मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ेगा।

नसरुद्दीन ईमानदार है उसने कह दिया, जानते तो हम भी हैं कि हम ही चला रहे हैं मगर हम कहते नहीं हैं क्योंकि दूसरे लोग मानेंगे नहीं। एक मानसिक बीमारी होती है–

मेगालोमेनिया। आपने शायद सुना हो। मैंने अपनी जिंदगी में पांच–सात ऐसे मरीज देखे हैं। अभी कल ही एक ई–मेल आया था तो उससे मुझे याद आ गयी फिर से मेगालोमेनिया की। इन मरीजों को लगता है कि वे पूरे अंतरिक्ष को ही संभाले हुए हैं। चांद–सूरज को घुमा रहे हैं, मौसम का परिर्वतन करते हैं वे, कहीं युद्ध करवा देते हैं, कहीं युद्ध रुकवा देते हैं। जैसा चाहे वैसा मौसम बुलवा लेते हैं, हटवा देते हैं, उन्हीं के हाथ में सब कुछ होता है।

एक सज्जन थे जिनको रात को इस चिन्ता के मारे नींद नहीं आती थी कि अगर रात को सो गए और फिर वे ग्रह–नक्षत्र आपस में टकरा जाएं तो उनको कौन मैनेज करेगा? तो रात भर जग कर सब को संभाले रहते थे कि सभी ग्रह–नक्षत्र अपने–अपने चक्र में घूमें, रास्ता न भटक जाए कोई ग्रह। मेगालोमेनिया के मरीज तो बेचारे स्पष्टवादी हैं, साफ–साफ कह देते हैं।

बाकी थोड़ा बहुत मेगालोमेनिया के मरीज हम सभी हैं मगर हम कहते नहीं हैं क्योंकि पता है दूसरे लोग हंसेंगे। या हम इतने बड़े पैमाने पर नहीं लेते, हम छोटे–मोटे रूप में लेते हैं कि भई परिवार को तो मैं ही चला रहा हूं। ठीक है संसार की बात न करो। समाज में तो महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा ही रहा हूं। देश का मैं एक ईमानदार नागरिक हूं। उसमें तो मेरा योगदान है ही।

संयुक्त परिवारों में बहुत ही विचित्र दृश्य रहता है। जो मुखिया हैं वे 80–85 साल के हो गए हैं, अब वे समझ रहे हैं कि पूरे संयुक्त परिवार को संभाले हुए हैं। और बाकी सब लोग इंतजार ही कर रहे हैं कि बुढ़उ कब खिसके कि हम लोग चैन से रहें! मगर कहे कौन? औपचारिकतावश कह नहीं पाते। इसी का बड़ा रूप आप नेताओं को समझ लीजिए। वे समझ रहे हैं कि देश चला रहे हैं, वास्तव में उन्हीं की वजह से देश ठीक से चल नहीं पा रहा है। जब इंदिरा गांधी जिंदा थीं तब कांग्रेसी यह नारा लगाते थे कि 'इंदिरा इज इंडिया'. अब कहां गयी वो इंदिरा? इंडिया तो अभी भी है। लेकिन चमचे लोगों को मजा आएगा कहने में 'इंदिरा इज इंडिया', इंदिरा को भी सुनने में मजा आएगा।

सभी मेगालोमेनियाक अपने–अपने पर्सनल वहम में जी रहे हैं। और हमारी सारी चर्चा का केंद्रबिन्दु यह अहंकार ही होता है। और हर चर्चा संक्षेप में अहं चर्चा है। और संतजन कहते हैं 'रसना राम को जस गाओ।' करना ही है तो ब्रह्म चर्चा करो, उस विराट को स्मरण करो।

'आन सुआद बिसारि सगले
भलो राम सुआउ।।'

और सब शब्दों को, स्वादों को भुलाकर उस हरि नाम का, उस ओंकार का स्वाद

लो।

‘ चरन कमल बसाइ हिरदै एक सिउ लिव लाउ।’

कहते हैं, अपने हृदय में प्रभु को विराजमान करो। उस आसन को खाली करो। वह खाली होगा तभी प्रभु विराजमान होंगे। और उस एक से प्रेम लगाओ, एक से लिव लगाओ। अभी हमारा प्रेम बहुतों से लगा है। हम यह भी चाहते हैं, वह भी चाहते हैं, ऐसा हो जाए, वैसा हो जाए, इतना धन मिल जाए, इतना पद मिल जाए, इतना मकान हो जाए, यह व्यक्ति मिल जाए, वह व्यक्ति मिल जाए। बहुत सारी चीजें हैं, हमारा लगाव बंटा हुआ है।

कल ही मैं एक बहुत सुन्दर कहानी पढ़ रहा था। एक झेन फकीर के पास किसी साधक ने आकर पूछा कि सत्य को पाने का मार्ग क्या है? और वह आसानी से मिलता क्यों नहीं? मैं भिन्न–भिन्न गुरुओं के पास गया हूं, सब अलग–अलग मार्ग बताते हैं, मैं कन्फ्यूज्ड हो गया हूं कि किस मार्ग पर चलूं? झेन गुरु ने कहा कि अरे! तुम्हारे दाहिने हाथ की उंगली में तो बहुत सुन्दर अंगूठी है। उसने कहा कि हां यह मेरे पिताजी ने मुझे दी थी। मृत्यु के क्षण में उन्होंने मुझे इसे दिया था, इसलिए मुझे इस अंगूठी से बहुत ही लगाव है, भावनात्मक लगाव है। गुरु ने कहा जरा मुझे दिखाना। उसने उंगली में से निकाल कर अंगूठी दे दी। जिस जगह वे खड़े थे वहां गेहूं का खेत था।

सद्‌गुरु ने वह अंगूठी देखी और जोर से फेंक दी गेहूं के खेत में। वह जो साधक आया था, उसने कहा कि ये क्या कर रहे हैं आप? अब इसको ढूंढ़ना कितना मुश्किल होगा? यह बड़ी बहुमूल्य अंगूठी है मेरे लिए, मैंने आपको बताया भी है। और वह भागा अंगूठी की खोज में यद्यपि बहुत कठिन था गेहूं के खेत में खोजना। लेकिन थोड़ी देर में वह अंगूठी खोज ही लाया। उसने फिर गुरु से कहा कि यह आपने क्या किया? मैं क्या सवाल पूछने आया था और आपने क्या किया? गुरु ने कहा मैं तुम्हें यही बताना चाहता हूं जिस चीज से तुम्हारा प्रेम है, लगाव है, जो तुम्हारी नजरों में बहुमूल्य है, उसे तुम बिना गुरु से रास्ता पूछे ही खोज लेते हो।

बाकी सब चर्चा करने की चीजें हैं। सत्य की खोज कैसे करें? कौन सा मार्ग सच्चा मार्ग है? और कंफ्यूज्ड हो रहे हैं कि फलाने ने ऐसा कहा, ढेकाने ने ऐसा कहा, उस किताब में ऐसा लिखा है। अगर तुम्हें सच्चा लगाव होता तो जैसे तुमने अंगूठी को बिना किसी गुरु की मदद लिए, बिना किसी शास्त्र को पढ़े ही खोज लिया, वैसे ही सत्य को भी खोज लिया होता।

परमात्मा की लोग चर्चा भर करते हैं लेकिन जिनको खोजना होता है वे खोज ही लेते हैं। ‘एक से लिव लगाओ’, उस एक से प्रेम लगाओ। हमारा प्रेम बहुतों में बंटा हुआ है तो कहीं भी वह ‘इंटेंस’ नहीं हो पाता, जैसे सूरज की किरणें बिखरी हुई हैं तो अग्नि

पैदा नहीं होती। लेकिन एक लेंस से अगर कंसेंट्रेट कर दो, फोकस कर दो तो आग पैदा हो जाती है। ठीक ऐसे ही हमारे भीतर जो लगाव की क्षमता है वह केवल परमात्मा के प्रति लगे तभी जाकर बात बनती है।

' साध संगति होहि निरमलु बहुड़ि जोनि न आउ।।'

साधु संगत में उठो–बैठो, ब्रह्म चर्चा में डूबो ताकि फिर–फिर आवागमन न हो।

' जीउ प्राण अधारु तेरा तू निथावे थाउ।'

कहते हैं– हे प्रभु, तुम ही सभी जीवात्माओं के प्राणों के आधार हो, तुम ही निरीह के नाथ हो। अन्यथा हम सब अनाथ हैं।

' सासि सासि समालि हरि हरि नानक सद बलि जाउ।।'

वे कहते हैं बस अब प्रति श्वास में यह स्मरण कैसे सधा रहे? कैसे सांस–सांस में प्रभु पर कुर्बान जाउं? सारी साधना यही है बस। तो समझ लेना परमात्मा की प्रतियोगिता किससे है? 'अहं' और 'ब्रह्म' के बीच में। कि कौन सिंहासन पर विराजमान होगा? एक ही हो सकता है। और जब तक हमने अहं को वहां विराजमान किया है, वही हमारे सुमिरन का केंद्र है, उसी की रक्षा में हम लगे हुए हैं, परमात्मा को विराजमान नहीं कर सकते।

इसकी व्यर्थता को देखो। मेरे कहने से नहीं मान लेना, तुम स्वयं निरीक्षण करो। यह जो कवायद हम कर रहे हैं जिंदगी भर से, इसमें कोई सार्थकता है? एक दिन हम समाप्त हो जाएंगे, मिट्टी, मिट्टी में मिल जाएगी। कुछ अर्थ रह जाएगा हमारे अहंकार की घोषणा का? कि हम कितने प्रतिष्ठित थे? कितने नाम वाले थे? कि बदनाम थे, कि अच्छे थे, कि बुरे थे। न हम रहेंगे, न वे लोग रहेंगे जो हमें जानते हैं।

इतिहास की किताबों में अगर नाम छूट गया तो बच्चे सिर्फ गालियां देते हैं। इतिहास के किसी भी विद्यार्थी से पूछ लो, जब उसे याद करना पड़ता है कि अकबर महान का शासन किस सन् से किस सन् तक चला था? और बाबर का जन्म कब हुआ था? वे सिर्फ गालियां देते हैं कि सारे मर गए, इतिहास में नाम छोड़ गए, अब रटो इनको। सारे बच्चे गालियां देते हैं। तो खबरदार, इतिहास में नाम छोड़कर नहीं जाना। बहुत गालियां पड़ेंगी। तुम जानते नहीं कौन–कौन कब तक गालियां देता रहेगा? चुपचाप दुनिया से खिसक जाना, किसी को पता न चले। कम से कम वर्तमान में जिन रिश्तेदारों ने गालियां दीं, वे बाद में तो न दें।

जरा इस अहंकार की व्यर्थता के प्रति सजग हो जाओ, तब अचानक पाओगे कि सिंहासन खाली हुआ। और जब वह खाली हो जाता है तब हम पाते हैं कि उस शून्य में पूर्ण का अवतरण होता है। फिर उसका सुमिरन, फिर जिह्वा उसी की चर्चा करती है।

आओ, अब हम इस प्यारे शबद के साथ आनंद मनाएं। जय ओशो!

नाम-रतन निरमोलक

ऐसा नामु रतनु निरमोलकु पुंनि पदारथु पाइआ।
अनिक जतन करि हिरदै राखिआ रतनु न छपै छपाइआ।। 1।।
हरि गुन कहते कहनु न जाई।
जैसे गूंगे की मिठि आई।। 1।। रहाउ।।
रसना रमत सुनत सुखु स्रवना चित चेते सुखु होई।
कहु भीखन दुइ नैन संतोखे जह देखां तह सोई।। 2।।

प्यारे मित्रो, नमस्कार! आज के सत्र में आप सबका स्वागत है। आओ, इस प्यारे शबद के भावार्थ का रसपान करें। कहते हैं संत भीखन–

'ऐसा नामु रतनु निरमोलकु पुंनि पदारथु पाइआ।
अनिक जतन करि हिरदै राखिआ रतनु न छपै छपाइआ।।'

कैसे गोविन्द की संपदा मिल गयी– ओंकार नाम रूपी। बड़े पुण्यों से, बड़े सौभाग्य से। अब उसे हृदय में छुपाकर रखता हूं किंतु वह छुपता नहीं। वह छुपाए नहीं छुपता।

'रतनु न छपै छपाइआ
हरि गुन कहते कहनु न जाई।
जैसे गूंगे की मिठि आई।।'

और उसका गुणगान करता हूं तो पाता हूं, मैं कह नहीं पा रहा हूं उसको– वह अनिर्वचनीय, अकथनीय है। जैसे कोई गूंगा मिठाई खाए और फिर वह वर्णन करने की कोशिश करे। बड़ी मुश्किल हो जाएगी, गूंगा बोल नहीं सकता। हाथ से कुछ इशारा करेगा, चेहरे से कोई भाव–भंगिमा बनाएगा लेकिन सामने वाला क्या समझेगा? बहुत मुश्किल है। मिठाई का वर्णन वह कैसे करे, गूंगा है? अपनी तरफ से तो वह कोशिश कर रहा है लेकिन फिर भी कोई संवाद नहीं हो पाएगा। दूसरे व्यक्ति तक ये सूचनाएं पहुंचेंगी नहीं कि वह क्या कह रहा है?

संत भीखन कह रहे हैं कि यही स्थिति मेरी है। मैंने जो अपने भीतर जाना, जिसको जानकर मेरा जीवन धन्य–धन्य हो गया, मैं चाहता हूं कि वह सब को मिल जाए क्योंकि वह संपदा सब के भीतर है। लेकिन मैं बड़ी मुसीबत में हूं, मैं इशारे करता हूं, बताता हूं लेकिन लोग कुछ का कुछ समझ लेते हैं। मिसअंडरस्टैंडिंग हो जाती है। संवाद नहीं हो पाता है, विवाद खड़े हो जाते हैं।

समझो संत भीखन ने स्वयं के भीतर परमात्मा को जाना। अब वे किसी मंदिर जाते व्यक्ति से कह रहे हैं, भाई मंदिर मत जाओ, परमात्मा वहां नहीं मिलेगा। वह तो झगड़ा करने को तैयार हो जाएगा कि तुम अधार्मिक हो, नास्तिक हो? तुमको समाज से बाहर निकाल देंगे। तुम ईश्वर को नहीं मानते। वे कितना ही कहें कि मैं यह नहीं कह रहा हूं, लेकिन तुम जहां खोजने जा रहे हो वहां पर परमात्मा नहीं है।

व्यर्थ ही तीर्थयात्रा में समय बर्बाद कर रहे हो, कि मंदिरों में सिर पटक रहे हो। लेकिन वह आदमी इसी पर झगड़ा खड़ा करने लगेगा, विवाद खड़ा हो जाएगा। और भीड़ उन्हीं की है, संत भीखन अकेले पड़ जाएंगे। लोग कहेंगे इनका दिमाग खराब हो गया है। कहते हैं परमात्मा भीतर है। अगर होता तो हमें मिल ही नहीं गया होता पहले?

और हमारे पूर्वज क्या पागल थे? उन्होंने मंदिर बनवाए, चर्च बनवाए, करोड़ों–करोड़ों लोग कुम्भ के मेले में जा रहे हैं, इनका दिमाग खराब है क्या?

डेमोक्रेसी का जमाना है, बहुमत जो करे सो सही। संत भीखन अकेले बैठे हैं अपने घर में। नहीं जा रहे कुम्भ के मेले में। ये कह रहे हैं कि कुम्भ के मेले में परमात्मा नहीं होगा, गंगा स्नान करने से नहीं मिलेगा, मैंने अपने भीतर ही स्नान कर लिया है। लोग कहेंगे रहने दो तुम्हारी बातें। 'पुंनि पदारथु पाइआ' कह रहे हैं। इनको पुण्य से पदार्थ मिल गया। लोग कहेंगे बड़ा अहंकारी आदमी है, देखा गंगा स्नान तक करने नहीं गया। कबीर को लोगों ने क्या कहा होगा जब उन्होंने अपने अंतिम समय में 'मगहर जाकर प्राण तजे' जहां कहावत है कि वहां आकर मरे तो अगले जन्म में गधा बनोगे, सुनिश्चित रूप से। सारे लोग काशी मरने आते थे, कई बार तो मरने के बाद लाए जाते थे, दुनिया का सबसे बड़ा मरघट है, काशी में।

मैं एक बार गया था और दृश्य को देखकर हैरान हो गया। थ्री–व्हीलर रिक्शा में लाशें आ रही हैं, तीन–तीन, चार–चार लाशें एक के ऊपर एक क्योंकि इतनी लाशें रोज आ रही हैं वहां पर, इतने रिक्शे कहां से लाओगे? खड़ा करने की जगह नहीं है। एक–एक रिक्शे में तीन–चार लाशें पड़ी हैं। जहां पर लाशें जलाई जा रही हैं, वहां 'क्यू' लगी है। और जलाने वालों को इतनी फुर्सत ही नहीं है कि ठीक से जलने भी दें, उन्होंने फटाक से रखा अग्नि में, आधा एक मिनट ज्यादा से ज्यादा, थोड़ा टोस्टेड हुआ और उठा कर उन्होंने लाश फेंकी गंगा में। अब दूसरा नंबर। उनका तो व्यवसाय है। जितने ज्यादा को जला लेंगे उतनी ही उनकी इनकम होगी। मिनट में जरा सा गर्म किया, फेंका और वहां चील और गिद्ध और मछलियां सब तैयार हैं झपट्टा मारने को। उनका भोजन आ रहा है, सिंका हुआ। ऐसे तो उनको कभी मिलता नहीं है टोस्टेड इंसान!

तो कबीर साहब जिंदगी भर काशी में रहे और अंत में चले गए मगहर। उन्होंने कहा कि अगर काशी में मरने से स्वर्ग मिलता है तो स्वर्ग मुझे नहीं चाहिए। काशी में तो कुत्ते भी मरते हैं, गधे भी मरते हैं, घोड़े भी मरते हैं। जिस नदी में तुम कह रहे हो स्नान करने से स्वर्ग मिलता है उसमें तो मगरमच्छ भी रहते हैं। तो उनको तो पक्का ही मिलेगा। तुमने तो एक–दो मिनट के लिए डुबकी लगाई और भाग खड़े हुए। वह बेचारा तो पैदा ही वहां हुआ, पूरा जन्म नहाता ही रहा। जन्म से लेकर मृत्यु तक गंगा स्नान करता रहा। तो कबीर ने कहा कि फिर स्वर्ग में तो मगरमच्छ और मेंढक और मछलियां बहुत होंगे। ऐसे स्वर्ग में मुझे नहीं जाना।

लोग कितने नाराज हुए होंगे उनके व्यंग्य को सुनकर, उनके कटाक्ष सुनकर कि

हजारों सालों की हमारी धारणा पर यह प्रहार कर रहा है। और यह है कौन? एक साधारण सा जुलाहा और इसका आत्मविश्वास तो देखो! मगहर जा रहा है मरने के लिए। यह कह रहा है कि मैं अपनी योग्यता से स्वर्ग जाऊंगा तभी मुझे स्वर्ग जाना है, अन्यथा नहीं जाना। मुझे गधा बनना भी मंजूर है।

कबीर साहब क्या कहना चाह रहे हैं? साधारण सी बात कहना चाह रहे हैं कि भई गंगा स्नान करने से स्वर्ग और मोक्ष नहीं मिलता और काशी में मरने से भी मोक्ष नहीं मिलता। बंधन तुम्हारे भीतर हैं– अहंकार के, क्रोध के, कामनाओं के, गंगा बेचारी क्या करेगी? और काशी क्या कर लेगा? ये तो तुम्हारी आंतरिक घटनाएं हैं। भीतर से तुम मुक्त होओ तो मोक्ष मिलेगा। तो बिल्कुल सही बात कह रहे हैं। लेकिन वे पाएंगे कि बस दीवारों से ही बातें कर रहे हैं, कोई समझने वाला नहीं है। और तो और उन्हीं के शिष्य नहीं समझे। उनके मरते ही झगड़ा खड़ा हो गया कि इनको दफनाएं कि जलाएं।

जो आदमी जिंदगी भर कहता रहा हिंदू, मुसलमान इत्यादि बेकार की बातें हैं, ना मैं हिंदू हूं, ना मैं मुसलमान हूं, उन्हीं के शिष्य तुरंत तलवार लेकर लड़ने को तैयार हो गए। आधे कह रहे हैं हम जलाएंगे, आधे कह रहे हैं हम दफनाएंगे। कबीर साहब की आत्मा खूब हंस रही होगी कि वाह! खूब अच्छी शिक्षा दी तुमने और इन्होंने खूब अच्छे से शिक्षा ग्रहण की। देख लो फल। हो सकता है अब कबीर साहब ने कसम खा ली हो कि अब कभी शिक्षा न देंगे। ये उनके शिष्य हैं, संतों को कैसा लगता होगा?

कहावत है कि दीवारों के भी कान होते हैं, पहले मुझे भरोसा नहीं आता था लेकिन अब मुझे लगता है ठीक ही है। क्योंकि यह तो पक्का है कि आदमियों के कान नहीं हैं, वे सुनते ही नहीं। शायद दीवारों के हों।

‘ हरि गुन कहते कहनु न जाई। जैसे गूंगे की मिठि आई।।’

भीखन कह रहे हैं कि कोशिश तो मैं अपनी तरफ से पूरी कर रहा हूं लेकिन कुछ बात बनी नहीं, यह भी मुझे पता है। और मेरी मजबूरी है, मैं इतना आनन्दित हूं, इतना प्रसन्न हूं कि मैं उसको जग जाहिर करना चाहता हूं। सब को बताना चाहता हूं कि जो मुझे मिला है वह तुम्हें भी मिल सकता है, तुम नाहक ही दुखी हो, चिंता में जी रहे हो। तुम्हारे भीतर ही वह खजाना है। और तुम भिखमंगे बने घूम रहे हो। हो तुम सम्राट लकिन भूल गए हो।

कभी सड़क पर बैठे किसी भिखारी से कहना कि अरे सम्राट हो, तुम यहां क्या कर रहे हो? वह अपना कटोरा फेंक कर सिर पर मारेगा कि एक तो हम दीन–दरिद्र हैं और ऊपर से तुम व्यंग्य और कटाक्ष कर रहे हो, हमारा मजाक उड़ा रहे हो। ऐसे ही लोग नाराज होते हैं जब उनसे कहो कि तुम्हारे भीतर ब्रह्म मौजूद है। उनको तो पता है

हम शैतान हैं, भली–भांति मालूम है, पक्का पता है। उनसे पूछ लो, उनके बेटे से पूछ लो, वह भी राजी हो जाएगा। उसकी बीवी से पूछ लो, वह भी सहमत होगी कि बिल्कुल ठीक।

कहती जरूर है पति परमेश्वर, भीतर वह जानती है कि पति शैतान। दुनिया का सबसे वाहियात इंसान अगर है तो वह यही है। इसको कैसे भगवान माने? वह आदमी खुद भी नहीं मानता है, इसलिए वह नाराज हो जाता है जब संत भीखन कहते हैं कि मैं ब्रह्म हूं। वह कैसे मानेगा? वह तो अपने भीतर से हिसाब लगाएगा न कि मैं कैसा हूं? तो दूसरा भी ऐसा ही होगा।

एक चोर की दृष्टि में सब चोर ही नजर आते हैं। झूठ बोलने वाला सब को झुठल्ला समझता है, तो हमारा अनुमान है कि ये भी हमारे जैसा है। अगर मैं झुठल्ला हूं तो मेरे लिए सारी दुनिया झूठ बोलने वाली है। अगर एक आदमी बेईमान है, चोर है, उसकी दृष्टि में सभी लोग बेईमान और चोर हैं।

संत भीखन जब कहेंगे, 'मैं ब्रह्म हूं' तो सारे लोग नाराज हो जाएंगे, क्यों? क्योंकि उनको तो पता है कि वे कौन हैं? और कहेंगे यह आदमी तो गलत बोल रहा है। अगर संत भीखन कहें कि मैं चोर हूं, कोई नाराज नहीं होगा। लोग कहेंगे हमको तो पहले से ही पता था कि तुम आदमी ठीक–ठाक नहीं हो।

कबीर साहब अपने आप को बार–बार दिवाना कहते हैं। इसलिए यह सुनकर लोग खुश हो जाएंगे। जब वे कहेंगे 'कहै कबीर दिवाना', लोग कहेंगे अब ठीक बात बोले। हम पहले से ही जानते थे कि ये पागल हैं। न ये मस्जिद जाते, न ये मंदिर जाते, हैं तो पागल। देखो अब खुद ही कह रहे हैं 'कहै कबीर दिवाना'। अब बिल्कुल ठीक।

संतों की बात समझना करीब–करीब असंभव है, बहुत मिसअंडरस्टैंडिंग हो जाएगी। उल्टा ही समझ जाएंगे। ओशो स्वयं अपने आप के लिए भगवान कहलवा रहे थे ताकि सब को स्मरण आ जाए कि सब के भीतर भगवान है। उनके लिए यह कोई अकेले की बात नहीं थी। एक सार्वभौमिक सत्य की घोषणा कर रहे थे कि मैंने अपने भीतर के भगवान को जान लिया, तुम भी जान लो। 'अहम् ब्रह्मास्मि' और 'तत्वमसि', दोनों बातें इकट्ठी हैं। तू भी वही है, लेकिन लोग क्या से क्या अर्थ निकालते हैं? दुश्मन हो जाएंगे।

ईसा मसीह जब कह रहे हैं कि वह पिता है, मैं उसका पुत्र हूं, तो कह रहे थे सभी उसके पुत्र हैं, सब उसकी संतान हैं, इसके अलावा और कुछ हो ही नहीं सकता। अर्थात् हम उसी के एक्स्टेंशन, उसी के फैलाव हैं। लोग नाराज हो गए कि अपने आप को विशेष बता रहा है, बड़ा अहंकारी है, मारो इसको, सूली पर चढ़ा दो। क्या समझता है अपने आप को? वे कह रहे थे कि सभी ईश्वर के संतानें हैं। लेकिन लोगों को तो खुद के

बारे में पता है। वे तो मान ही नहीं सकते कि वे ईश्वर हैं। उनको लगता है कि अपने बारे में बता रहा है। झूठा कहीं का। हो ही नहीं सकता। हम तो शैतान के अवतार हैं, हमको तो स्पष्ट पता है अपने बारे में। तो उनका अनुमान ईसा मसीह के बारे में भी ऐसा ही होगा कि यह भी वही है। धोखेबाज आदमी।

वे बड़ी करुणा से कह रहे थे कि तुम उस परम तत्व को जान लो, परमात्मा पितास्वरूप है। उपमा से कह रहे थे पिता–पुत्र की। क्योंकि पुराने यहूदी मानते थे कि परमात्मा कभी क्षमा नहीं करेगा। पुराने धर्मग्रंथ में ईश्वर का वचन लिखा है कि 'आई एम नॉट योर अंकल' मैं तुम्हारा चाचा नहीं लगता। अगर जरा सी भी भूल की तो बहुत दण्ड दूंगा। अनंत काल तक नर्क में यातना भुगतनी पड़ेगी। दस आज्ञाएं हैं यहूदी ग्रंथ में, अगर दस में से एक का उल्लंघन कर दिया तो बस अनंत काल तक नर्क में सताऊंगा। कहता है कि मैं तुम्हारा चाचा नहीं लगता। सावधान! मैं बहुत क्रूर और भयंकर हूं। भगवान बहुत डराता है।

उस परिवेश में जहां इस प्रकार के लोगों ने बचपन से धर्मग्रंथ पढ़े हों, वहां जब जीसस ने कहा कि परमात्मा पितास्वरूप है तो लोग स्वभावतः भड़क उठेंगे कि तुम धर्मग्रंथ के खिलाफ हो। इसका मतलब है कि तुम यहूदी ग्रंथ को नहीं मानते। और तुम कह रहे हो परमात्मा क्षमा कर देगा प्रायश्चित कर लो, अपनी भूल स्वीकार कर लो, बात खतम हो गयी। ऐसा कैसे होगा? ग्रंथ में लिखा है कि एक छोटी सी भूल होने पर भी अनंत काल तक दण्ड मिलेगा। क्षमा का तो सवाल ही नहीं है। परमात्मा तुम्हारा चाचा लगता है क्या? जीसस कह रहे हैं वह तो हमारा पिता है, उसका हृदय बहुत बड़ा है। हमारी छोटी–मोटी भूल कोई मायने नहीं रखती। बच्चे से भूल हो जाती है तो पिता क्या करेगा? ठीक है समझा–बुझाकर गले लगा लेगा कि बेटा आगे से गलती मत करना, बात खतम। जब बेटे ने खुद ही स्वीकार कर लिया कि पिताजी, मुझसे एक बड़ी गलती हो गयी तो अब पिता के लिए कुछ कहने को भी नहीं बचा। वह तो सीधा उठाकर गले से लगा लेगा कि तुमने अच्छा किया स्वीकार लिया, खुद ही तुम समझ गए, अब क्या कहना? बात खतम।

पूरी भीड़ नाराज हो गई कि यह आदमी तो अधार्मिक है। यह तो शास्त्र को नहीं मानता है, यह तो पुराने पैगम्बरों की नहीं मानता है। जान से मारो इसको। जीसस तो बड़ी करुणावश कह रहे थे कि निर्भार हो जाओ। तुमने जो गलतियां कर दी हैं, जो पापों का भार लिए तुम घूम रहे हो, व्यर्थ में अपराध बोध से भरे हो, इसकी कोई जरूरत नहीं है। हल्के–फुल्के हो जाओ, सहज जीवन जीओ। हो गयी गलती, क्षमा मांग लो बात खतम हो गयी। वे तो चाह रहे थे कि लोग प्रसन्नतापूर्वक जिएं, पापी बनकर न जिएं।

लोगों ने उनकी हत्या कर दी।

भीखन ठीक ही कहते हैं कि जैसे गूंगा मिठाई के बारे में कुछ बताए और कोई कुछ भी न समझे, तो चलो गूंगे के बारे में तो इतना स्पष्ट रहेगा कि हम नहीं समझे। लेकिन संतों के बारे में हम ऐसा नहीं कहते कि हम नहीं समझे क्योंकि इसमें तो हम नासमझ सिद्ध हो जाएंगे। हम कहते हैं कि हम समझ गए। यद्यपि हमने जो समझा वह गलत समझा। लेकिन हम हैं तो समझदार, हम यह तो स्वीकार ही नहीं कर सकते कि हम नहीं समझे।

गूंगे की बात तो चलो हम मान लेंगे कि बात समझ में नहीं आ रही, पता नहीं क्या कहना चाह रहा है? कम से कम हम इग्नोर कर देंगे। नो अंडरस्टैंडिंग इज बेटर दैन मिसअंडरस्टैंडिंग। संतों की बातों को हम यह नहीं कहेंगे कि हम नहीं समझे। हम कहेंगे, हम सब समझ गए, तुम गलत बोल रहे हो, झूठ बोल रहे हो, ऐसा हो ही नहीं सकता। तुम धर्म विरोधी हो, नास्तिक हो। तुम रूढ़ी और परम्परा को नहीं मानते। अपने आप को पता नहीं क्या समझते हो? हम समझ गए। बड़ी नासमझी पैदा हो जाएगी।

'रसना रमत सुनत सुखु स्रवना चित चेते सुखु होई।'

कहते हैं अब तुम्हारी तुम जानो, मेरी तो जिह्वा उसी के रस का गुणगान करती है और बड़ा सुख पाती है। और मेरे कान तो अब उसी के 'ओंकार' नाद को सुनते हैं और महासुख पाते हैं।

' कहु भीखन दुइ नैन संतोखे जह देखां तह सोई।।'

और मेरी आंखों को अब संतोष और तृप्ति मिल गयी। अब तो प्रेमपूर्ण हृदय से मैं जहां भी देखता हूं उसे ही देखता हूं। उसके अतिरिक्त कोई है नहीं, जब से मैंने अपने भीतर जाना, 'स्व' में, तब से सर्व में भी वही नजर आता है। तो मेरे जीवन में तो महासंतोष आ गया, महासुख हो गया, मैं तो तृप्त हो गया, लेकिन जब बताने की कोशिश करता हूं तो बात कुछ बनती नहीं। बिगड़-बिगड़ जाती है, फिर-फिर कहने की कोशिश करता हूं कि शायद कोई सहानुभूतिपूर्वक सुन ले, समझ ले मेरा इशारा। वह भी अपने भीतर के उस खजाने को पा ले, वह भी महातृप्ति को उपलब्ध हो जाए।

इसी आशा में संत करुणावश बोले चले जाते हैं। शायद कोई तो समझ ले! आओ, इस प्यारे शबद के संग हम उत्सव मनाएं और संत भीखन की बात को हृदयंगम करें। जय ओशो!
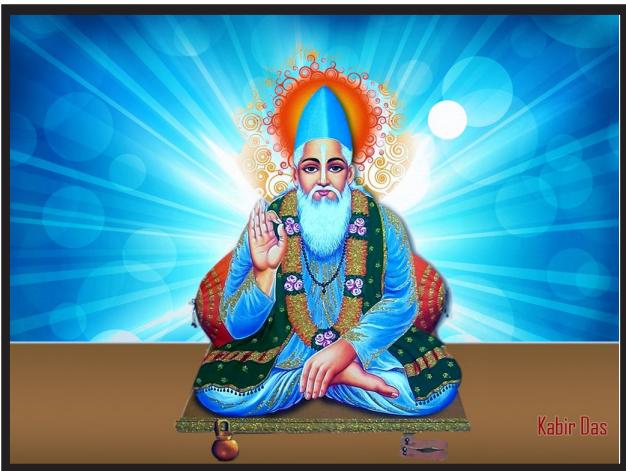
साम्राज्य सुख से भी ज्यादा!

अगनि न दहै पवनु नही मगनै तसकरु नेरि न आवै।
राम नाम धनु करि संचउनी सो धनु कतही न जावै।। 1।।
हमरा धनु माधव गोबिंदु धरणीधर इहै सार धनु कहीऐ।
जो सुखु प्रभ गोबिंदु की सेवा सो सुखु राजि न लहीऐ।। 1।। रहाउ।।
इसु धन कारणि सिव सनकादिक खोजत भए उदासी।
मनि मुकंदु जिहबा नाराइनु परै न जम की फासी।। 2।।
निज धनु गिआनु भगति गुरि दीनी तासु सुमति मनु लागा।
जलत अंभ थंभि मनु धावत भरम बंधन भउ भागा।। 3।।
कहै कबीरु मदन के माते हिरदै देखु बीचारी।
तुम घरि लाख कोटि अस्व हसती हम घरि एकु मुरारी।। 4।।

सभी मित्रों को नमस्कार। स्वागत है आज के इस सत्र में, संत कबीर के सत्संग में।

कबीर साहब की मुलाकात किसी राजा से हुई और उन्हें संबोधित करते हुए उन्होंने ये वचन कहे हैं। वे कहते हैं कि हे राजन! आपको इस राज–पाट में भी जो सुख नहीं मिलता वह हमें अपने भीतर ओंकार नाम में डुबकी लगाने से मिलता है। राज–पाट चलाने में सिर दर्द भले ही हो, सुख तो किसी को नहीं मिल सकता। आनंद तो बस एक ही है– अपनी चेतना में डूबना। कहते हैं–

'अगनि न दहै पवनु नहीं मगनै तसकरु नेरि न आवै।'

कहते हैं, हे राजन माना कि आपने भी काफी धन–दौलत इकट्ठा किया है और हमने भी, किंतु हमारी दौलत हमारे भीतर है... हमारे चैतन्य की दौलत। हमने ध्यान कमाया है, आपने धन कमाया है और दोनों में फर्क समझ लेना। हमारा जो धन है उसे अग्नि जला नहीं सकती, हवा उसे उड़ा नहीं सकती। और ना ही कोई चोर–तस्कर, डाकू–डकैत उसके निकट आ सकता है। इसे कोई छीन नहीं सकता। और आप ने जो धन एकत्रित किया है उसकी चोरी हो सकती है, वह नष्ट हो सकता है, अग्नि उसे जला सकती है, आंधी–तूफान आपके महल को गिरा सकते हैं। हमारा धन हमारे भीतर है जो कभी नष्ट नहीं होगा।

' राम नाम धनु करि संचउनी। सो धनु कतहीं न जावै।।'

हमने राम नाम के धन का संचय किया है। ये धन कहीं नहीं जाने वाला क्योंकि यह हमारा स्वयं का ही होना है। कोई हमें हमसे नहीं छीन सकता। हां हमारी चीजें छीन सकता है लेकिन हम तो रह ही जाएंगे पीछे। तो जिसने अपने चैतन्य को जाना उस चैतन्य में गूंजते ओंकार नाम में डुबकी लगायी, जो उस धन में मगन हो गया, उसका आनंद सदा–सदा रहेगा और बाहर जिसने संचय किया है वह तो सदा ही चिंतातुर रहेगा, भयग्रस्त रहेगा। क्योंकि उसने दूसरों से छीनकर इकट्ठा किया है, स्वभावतः अब दूसरों की नजर उसपर लगी होगी छीनने के लिए।

बाहर के जगत में हम कुछ भी लेकर नहीं आते... खाली हाथ आते हैं, खाली हाथ जाते हैं। हमारे पास जो कुछ भी है वह दूसरों से प्राप्त है। हमारा तो उसमें कुछ भी नहीं। और जब जाएंगे तो फिर सब यहीं छूट जाएगा। दूसरों को मिल जाएगा। वो तो छीना–झपटी से प्राप्त हुआ है और छीन–झपट लिया जाएगा। उसको कोई बचा नहीं सकता। उसको कमाने में चिंता, बचाने की चिंता, भय सदा लगा रहता है। आनंद भला कहां से प्राप्त होगा? ये तो चिंता और भय का मूल है। शांति और आनंद तो उसे ही मिल सकता है जिसने ऐसा धन पा लिया जिसे कोई छीन न सके। यहां तक की मृत्यु भी न छीन सके।

कहते हैं–

‘ हमरा धनु माधव गोबिंदु धरणीधर इहै सार धनु कहीऐ।’

कहते हैं हमारा धन तो बस परमात्मा ही है और यही सार धन है। सब धनों का सार। ‘जो सुख प्रभु गोविन्द की सेवा सो सुख राज न लहिए।’ और ऐसा सुख राज–पाट में भी नहीं मिलता। राज–पाट करने वालों से पूछो उनको सिवाय मुसीबतों के और कुछ भी नहीं मिलता। सुख की तो बात बहुत दूर है, दुख ही दुख मिलता है। आश्चर्य है फिर भी नहीं चेतते। सुख अपने भीतर डूबने में है।

‘ इसु धन कारणि सिव सनकादिक खोजत भए उदासी।’

कहते हैं इसी परम धन की खोज में बहुत लोग संन्यस्त हुए, संसार से विरक्त हो गए, वैरागी हो गए। क्योंकि उन्हें एक चीज समझ में आ गयी कि हम जिस चीज से राग लगाए बैठे हैं वो हमारी नहीं है और हमारी नहीं हो सकती। तो स्वभावतः जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि फिर वास्तव में हमारा क्या है? फिर उसी को खोजा जाए। और तब व्यक्ति ध्यान की तरफ मुड़ता है, अंतर्मुखी होता है। तो कबीर साहब उस तरफ इशारा कर रहे हैं। उस सम्राट को कहते हैं–

‘ मनि मुकंदु जिहबा नाराइनु परै न जम की फासी।’

और परमात्मा भीतर विराजमान है, जिसने ऐसा जान लिया, फिर यम की फांसी भी उसके गले में नहीं लग सकती। फिर मृत्यु के फंदे से वो मुक्त हो गया। क्योंकि भीतर जो ओंकार की धुन गूंज़ रही है, आत्मा में, उसे मृत्यु भी नष्ट नहीं कर सकती। वह हमारी अविनाशी आत्मा है। शरीर मर जाएगा लेकिन वह चैतन्य नष्ट नहीं होगा।

‘ निज धनु गिआनु भगति गुरि दीनी तासु सुमति मनु लागा।’

कहते हैं कबीर साहब कि आत्मज्ञान का धन मुझे मिल गया और गुरु की कृपा से भक्ति–भाव हृदय में उदय हो गया। इसलिए सुमति में, सद्बुद्धि में मेरा चित्त लग गया। पहले मैं भी कुमति में, दुर्बुद्धि में फंसा था। संसार की चीजें मुझे आकर्षित करती थीं। गुरु कृपा से भीतर भक्ति–भाव उत्पन्न हुआ, ज्ञान जन्मा और विवेकपूर्वक देखने से स्पष्ट नजर आ गया कि क्या मेरा है? क्या मेरा नहीं है? और जैसे ही यह बात समझ में आयी, जो मेरा नहीं है उसपर पकड़ छूट गयी और जो मेरा है उसे पकड़ना ही क्या! वह तो मैं स्वयं ही हूं। वो तो है ही, यही सुमति है, सद्बुद्धि है। और दुर्बुद्धि क्या है? दुर्बुद्धि मतलब असंभव काम करने की कोशिश जो हो ही नहीं सकता।

हम संसार में चीजों को अपना बनाने की, व्यक्तियों, वस्तुओं को अपना बनाने की कोशिश कर रहे हैं... यह कार्य कभी हो ही नहीं सकता। आज तक कोई न कर सका। बड़े–बड़े सिकंदर और हिटलर दुनिया में आए और खाक में मिल गए। कोई यहां

से धूल का एक कण भी नहीं ले जा सकता, मणि–माणिक तो छोड़ो। धूल का एक कण भी नहीं ले जा सकता।

तो कबीर साहब उस सम्राट से कह रहे हैं कि अंतर धन ही वास्तविक धन है, सार धन है और उसी को खोजना सुमति है। जो व्यक्ति ऐसा कर रहा है वही प्रज्ञावान, विवेकपूर्ण कहा जा सकता है। अन्य लोगों को हम बुद्धिमान नहीं कह सकते। वे अपना समय, अपनी शक्ति, अपना जीवन, अपनी ऊर्जा ऐसी चीजों को पाने में गंवा रहे हैं जो कभी मिल ही नहीं सकतीं, इंपॉसिबल। कोई सूरज को पश्चिम से उगाने की कोशिश करता रहे, पूरी जिंदगी लगा रहे इसमें तब क्या कहेंगे हम? हम कहेंगे आदमी पागल है, ये कभी हो ही नहीं सकता। ये क्यों अपना समय व्यर्थ गंवा रहा है?

उसका पागलपन हमें नजर आ जाएगा लेकिन कबीर साहब जिस पागलपन की बात कर रहे हैं ऐसे पागल चारों तरफ हमारे मौजूद हैं और इसलिए इनका पागलपन हमें नजर नहीं आता। सब तरफ वही–वही पागल। पागल खाने में रहने वाले व्यक्ति को पता नहीं चलता कि अन्य लोग पागल हैं, ये सभी एक जैसे हैं।

हम भी एक बहुत बड़े पागलखाने में रह रहे हैं जिसे मनुष्यता कहा जाता है। सात अरब पागलों की भीड़, हमसे और बढ़–चढ़ के, हमसे अग्रणी पागल मौजूद हैं। इसलिए हमें समझ में नहीं आता कि हमारे भीतर गलती कहां है? भूल–चूक क्या हो रही है? क्योंकि तुलना नहीं हो पाती। और कबीर जैसे तो यदा–कदा लोग होते हैं सैकड़ों सालों में। कभी–कभार कोई स्वस्थ व्यक्ति होगा तो उससे हम कैसे तुलना कर पाएंगे? उल्टा हमें वो पागल लगेगा।

कबीर साहब बार–बार खुद के लिए मजाक में कहते हैं न, 'कहै कबीर दीवाना'। मीराबाई कहती हैं 'मीरा भई दीवानी'। क्या करें? इन पागलों की भीड़ में वही स्वस्थ हैं, लेकिन लोग व्यंग्य कर रहे हैं, इनको पागल समझते हैं। सोचो मीरा को कौन बुद्धिमान कहेगा? राज–पाट छोड़कर भक्ति–भाव में डूबी, गली–गली घूम रहीं हैं, एक शहर से दूसरे शहर ...कहां राजमहल में रहने वाली महारानी थीं! इनको क्या सूझी यहां–वहां भटक रही हैं? लोग कहेंगे यह पागल है। वस्तुतः सारी दुनिया पागल है मीरा ही बुद्धिमान हैं, कबीर ही बुद्धिमान हैं। इन्होंने असली धन पाया। ऐसा धन जो सदा–सदा इनके संग रहेगा।

'जलत अंभ थंभि मनु धावत भरम बंधन भउ भागा।'

आगे कहते हैं कबीर साहब उस राजा से कि हे राजन, मेरा यहां–वहां भागने वाला जो मन था, मन धावत, वह ठहर गया, स्थिर हो गया। 'भ्रम बंधन भव भागा।' मेरे भ्रम, बंधन और भय, ये भाग खड़े हुए। भ्रम यानी माया और भय। क्यों संसार में सदा भय रहते हैं? क्योंकि हम उन चीजों को पकड़ने की कोशिश कर रहे हैं जो हमारी मुट्ठी में

कभी हो ही नहीं सकतीं। प्रेम, पद, यश, प्रतिष्ठा, ज्ञान, धन, वैभाव, वस्तु, व्यक्ति... न जाने हम क्या-क्या पकड़ने की कोशिश कर रहे हैं? और हमें भली-भांति पता है कि हमारी मुट्ठी से चीजें खिसकती जा रही हैं। कुछ पकड़ में आ नहीं रहा।

कितनी ही कोशिश कर लें कुछ पकड़ में नहीं आने वाला। एक दिन हमारी मुट्ठी खुली रह जाएगी और इस दुनिया से चले जाएंगे। इसलिए भय सदा ही लगा हुआ है पीछे, निरंतर चिंता फिक्र कि जो मैं कर रहा हूं वो हो पाएगा कि नहीं। कहीं न कहीं हमको पता है कि वो नहीं हो पा रहा। इसलिए चिंता लगी ही रहती है। और भय लगा ही रहता है कि जो मैंने पाया है वो कहीं छूट न जाए। जिस आदमी ने नाम कमा लिया है, यश, प्रतिष्ठा पा ली है उसकी हालत देखो। उसको सदा ही डर लगा है कि कहीं बदनामी न हो जाए, अपयश न हो जाए।

लोगों का क्या भरोसा? आज फूल-माला पहना रहे हैं, कल ये जूतों की माला पहना देते हैं। आज इस पार्टी को जिताया कल दूसरी पार्टी को जिता देंगे। इनका कोई भरोसा नहीं। आज जो मंत्रियों के पद पर बैठे हैं कल वो जेल में पहुंच जाते हैं। कुछ भरोसा नहीं, किसी चीज का भरोसा नहीं। जीवन का ही भरोसा नहीं। आज हम जीवित हैं, अगले क्षण होंगे कि नहीं होंगे कोई गारंटी नहीं। किसी चीज का भरोसा नहीं। इसलिए भय और चिंता सदा लगे ही रहेंगे संसार में। जिसने अपने भीतर अविनाशी चैतन्य को जाना, उसने गूंजते राम नाम में डुबकी लगाई। केवल वही मुक्त हो सकता है भय चिंता से।

‘ कहै कबीरु मदन के माते हिरदै देखु बीचारी। ’

कहते हैं कबीर साहब कि हे मदन के माते राजन, कामवासना में मगन रहने वाले, अपने हृदय में जरा विचार के तो देखो तुम क्या कर रहे हो?

‘ तुम घरि लाख कोटि अस्व हसती हम घरि एकु मुरारी।। ’

कहते हैं हे राजन, तुम्हारे घर में तो लाखों घोड़े, हाथी, हीरे-जवाहरात हैं, ‘हम घर एक मुरारी।’ हमारे घर तो बस एक ही संपत्ति है। उसका नाम परमात्मा है, उसका नाम ओंकार है। असली धन हमने पा लिया। और इसको पाना भी पाना नहीं कहा जा सकता। बस इतना ही कह सकते हैं कि हमारे भीतर पहले से ही मौजूद था, हमने जान लिया। पाना कहना तो ठीक नहीं। पहले मालूम नहीं था, भूल गए थे; बस अब याद आ गयी। इसलिए तो यह नाम ‘सुरति’... सुरति यानी स्मृति, याद आना। विस्मरण हो गया था कुछ, अब स्मरण आ गया, सुमिरन सध गया। अपने भीतर ही जो मौजूद था उसका एहसास हो गया। जन्मों-जन्मों से भूले बैठे थे।

सुरति का अर्थ है अपने भीतर की स्मृति आ गयी।

आओ इस प्यारे शबद के साथ उत्सव मनाते हैं। जय ओशो!

क्या सत्य, क्या स्वप्न?
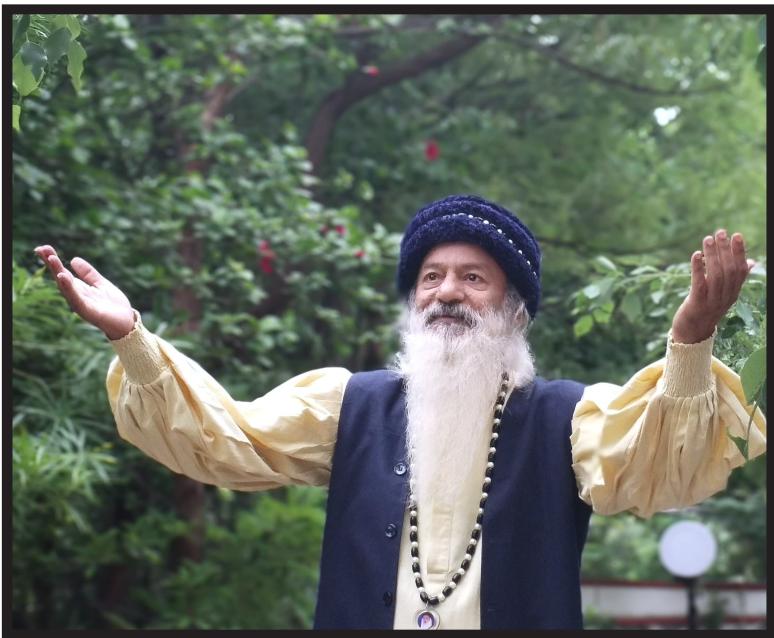
आवहु मिलहु सहेलीहो सचड़ा नामु लएहां।
रोवह बिरहा तनका आपणा साहिबु सम्हालेहां।। 1।।
साहिबु सम्हालिह पंथु निहालिह असा भि ओथै जाणा।
जिस का कीआ तिन ही लीआ होआ तिसै का भाणा।। 2।।
जो तिनि करि पाइआ सु आगे आइआ असी कि हुकमु करेहा।
आवहु मिलहु सहेलीहो सचड़ा नामु लएहा।। 3।।

आज के इस सत्र में सभी मित्रों का स्वागत है। नमस्कार! किसी की मृत्यु हो गयी और शोक सभा में गुरु नानकदेव जी पहुंचे हैं और वहां पर उन्होंने ये वचन कहे–

‘आवहु मिलहु सहेलीहो सचड़ा नामु लएहां।’

कहते हैं, हे सखियों आओ हम मिल बैठकर सत्य नाम प्रभु का स्मरण करें। विशेषकर किसी की मृत्यु के अवसर पर सभी लोगों के भीतर क्षणिक ही सही, वैराग्य भाव उत्पन्न होता है। जीवन की क्षणभंगुरता देखकर याद आता है कि हम भी यहां टिकने वाले नहीं। और यह उपयुक्त समय है सद्गुरु के वचन ग्रहण करने का। नानक ने ठीक अवसर का उपयोग किया। कहा कि आओ हम सब मिलकर सत्य की तलाश में लगें। निश्चित ही यह शरीर तो नहीं रहेगा, हमारा भी नहीं रहेगा, किसी का भी नहीं रहेगा। यह तो स्वप्नवत है। फिर सच क्या है?

भारत के ऋषियों की सत्य और स्वप्न की परिभाषा बड़ी अद्भुत है, स्वप्न अर्थात् जो पहले नहीं था, बाद में फिर नहीं हो जाएगा, केवल बीच में प्रतीत होता है कि है। पहले भी नहीं, बाद में भी नहीं– वह स्वप्न। और सत्य– आदि सच, जुगादि सच, जो पूर्व में भी सच था, अभी सच है और बाद में भी सच रहेगा। जुग–जुग तक सच रहेगा; उसे कहते हैं सत्य।

तो जहां–जहां क्षणभंगुरता का एहसास सघन होता है, विशेषकर मृत्यु के अवसर पर, जब हमारा कोई प्रियजन चल बसा तब उचित समय है, हमारा मन तैयार है। उसे लगने लगा कि वास्तव में सपने जैसा है सब, बस एक कहानी है, जरा देर में खत्म हो जाती है। फिर सच क्या है जो सदा–सदा होगा?

‘ रोवह बिरहा तनका आपणा साहिबु सम्हालेहां।।’

नानक कह रहे हैं व्यर्थ आंसू न बहाओ, यहां तो जिसे आना है उसे जाना ही है। अगर रोना ही है, दुखी ही होना है तो स्मरण करो कि हम प्रभु से टूट गए हैं, वास्तव में उसके विरह में हम दुखी हैं। सच पूछो तो हमारे सारे दुखों का सार सूत्र यही है कि हमारी जड़ें विस्मृत हो गयी हैं। हम अपने मूल को भूल गए और उनमें उलझ गए जो पत्तों के समान हैं, अभी आए अभी गए।

हम क्षणभंगुर फूलों में उलझ गए और शाश्वत जड़ को भूल गए। सारे दुखों का एक ही कारण है किंतु हम न जाने किन–किन प्रकार की चीजों को कारण समझते हैं दुख का? दुख का सिर्फ एक ही कारण है, वह है अपने मूल का विस्मरण, चैतन्य का विस्मरण और इसलिए आनंद का भी कुल एक ही कारण है। वह है पुनः आत्मरमण, पुनः ब्रह्मरमण, फिर से अपनी जड़ों में पहुंच जाना।

'रोवह बिर हा तनका आपणा साहिबु सम्हालेहां।।'

जो साहिब सब को संभाल रहा है, जिन जड़ों ने इस पूरे वृक्ष को, सारे फूल पत्तों को संभाला हुआ है, उसकी याद करो। उसको भूल जाना ही एकमात्र दुख है, वही दुख का कारण है।

' साहिबु सम्हालिह पंथु निहालिह असा भि ओथै जाणा।'

वह साहिब ही सब कुछ संभालने वाला है और याद रखो हमें भी अंततः इस लोक को छोड़कर जाना है 'असा भी ओथै जाणा।' हमें भी वहां जाना है। ऐसा नहीं सोचना कि कोई बेचारा मर गया। लोग अर्थी कंधे पर रख कर ऐसे ले जाते हैं जैसे कि हमारी ड्यूटी है ही कि दूसरों को मरघट तक पहुंचाएं। मरते हमेशा दूसरे हैं। हमारा तो काम यही है कि श्मशान घाट ले जाएं, क्रियाकर्म कराएं। हम तो हमेशा घर वापस लौट आते हैं। इस भ्रम में नहीं रहना, जो व्यक्ति अभी मर गया, कुछ क्षण पहले वह भी यही सोचता था कि जैसे सदा–सदा यहीं टिकना है। लोग इस प्रकार की योजनाएं बना रहे हैं, इतनी लंबी योजनाएं कि जैसे हमेशा ही उनको यहां रहना है। याद करो नानक भी कह रहे हैं–

' असा भि ओथै जाणा।'

हमें भी यहां से जाना है, जिसको यह याद आ गई कि हमें जाना हैं, अचानक उसका नजरिया, उसका दृष्टिकोण परिवर्तित हो जाता है। इस संसार की जिन क्षुद्र चीजों के लिए वह व्यथित होता था, परेशान होता था, अचानक उन चीजों का कोई महत्त्व ही नहीं रह जाता। कुछ फर्क ही नहीं पड़ता।

मैंने सुना है एक सूफी फकीर पर बादशाह बहुत नाराज था और उसने उसको आजीवन कारावास की सजा दे दी। लेकिन जेल से खबर आयी कि वह फकीर तो वहां भी मस्त है, गीत गुनगुनाता है, नाचता है। दरवेश था। वहां पर उसका दरवेश नृत्य चल रहा था, जेल के अंदर भी। उसकी मस्ती में भी कोई फर्क नहीं पड़ा और उससे कहते हैं कि तुम्हें कुछ होश है कि नहीं! आजीवन कारावास है, तुम्हारी मृत्यु यहीं होगी, कभी बाहर नहीं निकलोगे। तो फकीर कहता है कि क्या फर्क पड़ता है? चार दिन की जिंदगी है, दो दिन तो बीत ही चुके, और दो दिन की बात है। ठीक, यहां भी ठीक है, कोई फर्क नहीं पड़ता।

तो सम्राट को जब यह खबर आयी, तो सम्राट ने खबर भेजी कि जाकर उस बेवकूफ से कहो कि दो दिन की नहीं, उम्र भर की कैद है। उस फकीर को जब यह कहा गया तो उसने कहा कि जाकर राजा से कहना कि उम्र है कितनी? हमारी उम्र है क्या? और भरोसा कहां? एक दिन का भी तो भरोसा नहीं। जिसको भी यह ख्याल आ गया

'असा भी ओथै जाणा', अचानक वह व्यक्ति वह नहीं रह जाता जो वह पहले था। एक दूसरा ही व्यक्ति पैदा हो जाता है।

पुराने जमाने में संन्यास दीक्षा देने का जो रिवाज था कि उस व्यक्ति को मरघट ले जाते थे, वहां चिता तैयार करते थे, उसको लेटाते थे फिर बाद में उसको उतार कर उसका सिर मुंडन कर के, कफन के रंग के वस्त्र पहना कर और नया नाम देकर वापस लाते थे कि अब पुराना व्यक्ति मर गया। समझो तुम्हारा नया नाम, नया जन्म हुआ और ये कपड़े तुम्हें याद दिलाते रहेंगे कि तुम कफन ही ओढ़े चल रहे हो। कोई फर्क नहीं पड़ता किस रंग के कपड़े पहने हैं? सब कफन ही है।

जिसे मृत्यु का स्मरण रहने लगा, वह संन्यासी हो जाता है। और जब तक मृत्यु स्मरण में नहीं आयी है तब तक वह गृहस्थ ही है। चाहे वह ऊपर से लाल रंग के वस्त्र पहन ले, कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर उसके मन में मृत्यु का ख्याल नहीं बना रहता तो वह गृहस्थ ही है। गृहस्थ मतलब जो घर को पकड़े हुए है। संन्यस्त मतलब जिससे सब छूट गया। और मृत्यु का ख्याल आते ही सब छूट जाता है। छूट जाने का मतलब, पता चल गया कि छूटा ही हुआ है, न कुछ पकड़ में है और न हो सकता है। सब छूटा ही हुआ है। हम भ्रांति में ही जी रहे हैं कि हम कुछ पकड़े हुए हैं।

' असा भि ओथै जाणा।'

यह छोटा सा वचन गृहस्थ को संन्यस्त बना देता है। नानक कहते हैं–

'जिस का कीआ तिन ही लीआ होआ तिसै का भाणा।।'

यहां किसी का कोई वश नहीं चलता। देखते हो यह व्यक्ति समाप्त हो गया। ऐसे ही हमें भी एक दिन चले जाना है। कोई वश नहीं चलता। बिना पूछे हम जगत में अचानक आ गए थे, बिना हमारी मर्जी के। और अचानक किसी क्षण बिना मर्जी के जाना होता है। 'जिसका किया तिन ही लिया।' जिसने दी थी यह अमूल्य भेंट, उसने वापिस ले ली, बात खतम हो गयी।

एक दूसरे सूफी फकीर की अद्‌भुत कहानी है कि उसके दो जुड़वां बेटे थे, कोई बारह–तेरह साल की उम्र थी उनकी। एक दिन अचानक किसी दुर्घटना में उन दोनों की मृत्यु हो गयी। वह फकीर उस समय भीख मांगने गांव गया हुआ था। जब लौट कर आया तो उसकी पत्नी द्वार पर मिली और उसने कहा कि इसके पहले कि तुम घर के भीतर आओ मैं एक सवाल पूछना चाहती हूं। अगर हमको कोई अपनी चीज अमानत दे जाए और कहे कि मैं बाद में आऊंगा फिर मुझे वापस कर दीजिएगा। और कोई बड़ी कीमती चीज दी थी उसने हमको रखने के लिए। समझो बारह–तेरह साल बाद वह व्यक्ति वापस लौटे, तो क्या हम उसको उसकी चीज वापस कर देंगे कि नहीं करेंगे?

उस फकीर ने कहा कि तुम मुझे भली–भांति जानती हो, मैं भी तुम्हें भली–भांति जानता हूं, हम किसी की चीज क्यों रखेंगे? बल्कि हम तो धन्यवाद ही देंगे कि अच्छा किया तुम आ गए, अपना सामान ले जाओ। जब तक हमारे पास था तो हमारी जिम्मेवारी बनती थी कि हम संभालें। तुम्हारी अमानत, तुम वापस ले जाओ। हम भारमुक्त हुए, हम खुश ही होंगे। फकीर की पत्नी ने कहा, फिर आओ भीतर। चादर ढकी हुई थी उन दोनों बच्चों की लाशों पर। उसने वह चादर हटाई और कहा कि यह रही अमानत!

हमें आज से बारह–तेरह साल पहले मिली थी, उपहार हमें मिला था। जिसने दिया था उसने वापस ले लिया। उस फकीर की आंखों में छलक आए आंसू अचानक रुक गए। उसने अपनी पत्नी के चरण–स्पर्श किए और कहा कि तूने आज मुझे खूब जगाया। इतनी ध्यान साधना कर के मैं न जागा था, आज तूने जगा दिया। बड़े–बड़े गुरुओं से मैंने शिक्षा ली थी लेकिन भीतर कहीं मूर्च्छा बनी हुई थी, आज उस मूर्च्छा का आखिरी हिस्सा भी टूट गया, अच्छा ही हुआ।

' जिस का कीआ तिन ही लीआ होआ तिसै का भाणा।।'
'जो तिनि करि पाइआ सु आगे आइआ असी कि हुकमु करेहा।'

और कहते हैं जिंदगी भर हमने जो किया है, सोचा है, भाव बनाएं हैं, कर्म किए हैं, मृत्यु के समय और मृत्यु के पश्चात् वही सब कुछ हमारे सम्मुख प्रगट हो जाता है। जिंदगी भर जो हम करते रहे वही अंत में बीजरूप में, संक्षेप में, सारसूत्र में, हमारे सामने आ जाता है। जिंदगी में जो फैला हुआ था, 70–80 साल में, उसमें जो–जो मुख्य बातें थीं, उसका निष्कर्ष अंतिम क्षणों में प्रगट हो जाएगा।

एक बार ओशो से किसी ने पूछा कि हम लोग साधना कर रहे हैं, ध्यान कर रहे हैं, कभी–कभी गहरी झलक मिल जाती है, कभी–कभी बिल्कुल भी नहीं मिलती। कभी अच्छा सुमिरन चलता है, कभी बिल्कुल भूल जाते हैं, मृत्यु के समय क्या होगा? जो लोग इस जन्म में बुद्धत्व को प्राप्त नहीं हो पाएंगे, उनका क्या होगा? जो साधनारत रहे, लगनपूर्वक कोशिश करते रहे लेकिन सफलता हासिल नहीं हुई। ओशो ने कहा तुम चिंता न करो। जो लगनपूर्वक मेहनत कर रहा है, मृत्यु के क्षण में वह मुक्त हो जाएगा क्योंकि उसकी वह लगन, उसका वह कर्म, उसकी भावना, उसके वे विचार, उसका वह संकल्प अंतिम क्षण में अपने क्लाईमेक्स पर पहुंच जाएगा। ठीक है जीवन में अन्य व्यस्तताएं थीं, जिम्मेवारियां थीं, बहुत कुछ काम थे, भटकाने वाली बहुत–सी बातें थीं। मृत्यु के समय में तो सब चीजों से छुटकारा हो गया। अपना शरीर ही छूटने लगा। उस समय जो तुम्हारा गहन संकल्प था, गहन भाव था प्रगाढ़ रूप से, वही सामने आ जाता

है, बस। ठीक है जिंदगी में क्रोध था, मोह था, कहीं ईर्ष्या थी, मरते समय सब अर्थहीन हो गया। तुम्हारा जो प्रगाढ़ भाव था वह प्रगट हो जाएगा।

जो धन का लोभी व्यक्ति है, मरते समय वह धन की आकांक्षा लिए-लिए मरेगा। वह उसके जीवन का सार निचोड़ है। जो लोभी है उसका लोभ संघनित हो जाएगा, इंटेन्स हो जाएगा। कोई व्यक्ति कामुकता में जी रहा था, उसकी कामुकता अंतिम क्षणों में अपने शिखर पर पहुंच जाएगी। उसी को लिए वह विदा होगा। उसका अगला जन्म भी फिर वहीं से शुरू होगा जहां उसने यह जन्म छोड़ा था। नानक कहते हैं-

'जो तिनि करि पाइआ सु आगे आइआ'

वहीं आगे आएगा जो पीछे हमने किया है। जो हमारी मुख्य भावदशा रही, वही प्रगट हो जाएगी।

'असी कि हुकमु करेहा।'

ऐसा ही हुकुम है, यही जीवन का नियम है।

'आवहु मिलहु सहेलीहो सचड़ा नामु लएहां।'

इसलिए हे सखियों, आओ हम उस सत्य नाम की खोज करें, उसमें डूबें, उसे पाएं, उसको जिएं ताकि अंत में दूसरे न कहें कि 'राम नाम सत्य है'। हम स्वयं ही जानें कि वास्तव में यह सतनाम ही सत्य है, बस। बाकी सब झूठ था। वह सब खेल था, लीला थी, असली पूंजी हम जान कर जाएं। दूसरों के कहने से क्या होगा? जिस आदमी के लिए जिंदगी भर धन सत्य रहा, कि काम सत्य रहा, कि लोभ सत्य रहा, कि क्रोध सत्य रहा, अब दूसरे लोग मरघट ले जाते समय अर्थी को कह रहे हैं 'राम नाम सत्य है'। और उनको तो सुनाई भी नहीं पड़ रहा, वे सज्जन तो कब के जा चुके।

यह रिचुअल बन गया, एक रूढ़ी बन गयी लेकिन सार्थक थी। काश! वह व्यक्ति ऐसा जानता हुआ विदा होता। तब असली बात थी। और ये लोग जो कह रहे हैं, ये भी अपने लिए नहीं कह रहे हैं। इनको भी जल्दी पड़ी है कि कब चिता खतम हो और भागें? दुकान बंद पड़ी है, ग्राहक न लौट जाएं। इनके लिए भी राम नाम सत्य नहीं है, कुछ और सत्य है। एक औपचारिकता हो गयी है लेकिन बात बड़ी गहरी है।

नानक कह रहे हैं कि आओ मिल कर बैठते हैं। और क्यों सखियों-सहेलियों के रूप में संबोधन करते हैं, इस बात को भी समझना। बहुत सी संतो की वाणी में बार-बार आएगा, स्वयं के लिए, अन्य साधकों के लिए स्त्री रूप में संबोधन। क्योंकि सत्य की खोज आक्रामक ढंग से नहीं की जा सकती, पुरुषों की भांति। उसके लिए हमें ग्रहणशील और रिसेप्टिव बनना होगा। स्त्रियों की भांति।

दुनिया में योगी हुए हैं, संकल्पवान लोग हुए हैं, ज्ञानी हुए हैं, हठी लोग हुए हैं, वे

पुरुष चित्त वाले लोग हैं और जैसे परमात्मा पर भी आक्रमण करने चले; जीत लेंगे और विजय का पताका फहरा देंगे... कुछ ऐसी उनकी भावना रहती है। ऐसा तो कभी न हो सकेगा। परमात्मा के लिए तो हम ग्राहक हो जाएं, रिसेप्टिव हो जाएं। और रिसेप्टिविटी कैसे होगी? एकदम सरल सी बात है, हम भीतर शून्य हो जाएं, खाली हो जाएं।

जब हम किसी चीज को पात्र कहते हैं, तो पात्र का क्या मतलब होता है? कटोरी है, कि घड़ा है, कि बाल्टी है। हम क्यों कहते हैं कि ये पात्र हैं? क्योंकि इनमें कुछ समा सकता है। ये अपने आप में खाली हैं, इनमें कुछ नहीं है। इनमें खाली जगह है इसलिए ये पात्र हैं। पहाड़ों पर पानी गिरता है मगर वहां टिक नहीं पाता क्योंकि पहाड़ अपने आप से ही ठसा–ठस भरे हुए हैं। और झील गड्ढा है इसलिए उसमें पानी भर जाता है। सागर दुनिया का सबसे बड़ा गड्ढा है। कोई पांच मील गहरा है प्रशांत महासागर, इसलिए सारा पानी अंततः वहीं पहुंच जाता है।

तो रिसेप्टिविटी का मतलब शून्य होना, खाली होना, रिक्त होना है। तब हम आमंत्रण बन जाते हैं। याद रखना पुरुष करता है आक्रमण और स्त्री देती है आमंत्रण, दोनों में बड़ा भेद है। इसलिए संतों ने हमेशा परमात्मा को पुरुष रूप में कहा और स्वयं को स्त्री रूप में कहा। आज तक जिसने भी प्रभु को पाया, इसी ढंग से पाया है। तो चलो सहेलियों, हम भी खाली हो जाएं और पात्र बन जाएं।

आओ, इस प्यारे शबद के साथ हम उत्सवमग्न हो जाएं। नाचें, झूमें, गाएं। मस्ती में डूबकर पात्र बन जाएं। जय ओशो!
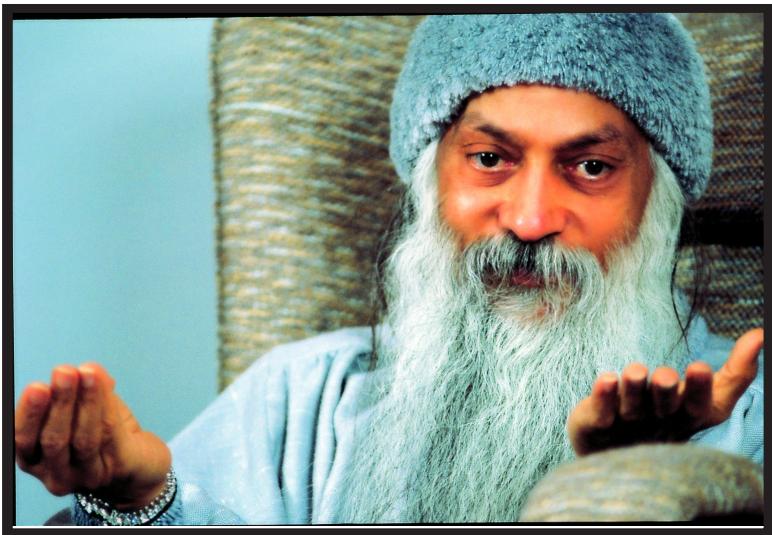
ओ परदेसी, सावधान!

मेरे जीअड़िआ परदेसीआ कितु पवहि जंजाले राम।
साचा साहिबु मनि वसै की फासहि जम जाले राम।। 1।।
मछुली विछुंनी नैण रुंनी जालु बधिकि पाइआ।
संसारु माइआ मोहु मीठा अंति भरमु चुकाइआ।। 2।।
भगति करि चितु लाइ हरि सिउ छोड मनहु अंदेसिआ।
सचु कहै नानकु चेति रे मन जीअड़िआ परदेसीआ।। 3।।

भक्ति मार्ग के पथिको, नमस्कार! आज के सत्र में आप सब का स्वागत है। गुरु नानकदेव जी के अमृत वचन, अपने आप को संबोधित करते हुए कहते हैं, हे मेरी परदेसी जीवात्मा, तू क्यों इस जंजाल में फंस रही है?

'मेरे जीअड़िआ परदेसीआ कितु पवहि जंजाले राम।'

अपने आप से बात करना भी ध्यान की एक अद्‌भुत विधि है। हम दूसरों से तो सदा चर्चाएं करते हैं। कभी एकांत में चुप बैठकर अपने आप से भी संवाद किया करें, और बड़े सार्थक संवाद होंगे।

' मेरे जीअड़िआ परदेसीआ'

हे मेरी परदेसी जीवात्मा... एक बात तो पक्की है, हम सब यहां परदेसी हैं। कुछ समय पहले हम नहीं थे, कुछ समय बाद फिर नहीं हो जाएंगे। यह हमारा घर नहीं, यह हमारा गांव नहीं, यह हमारा देश नहीं, यह दुनिया हमारी नहीं है। हम नहीं थे तब भी दुनिया थी, हम नहीं हो जाएंगे तब भी दुनिया रहेगी। हमारा होना बहुत क्षणिक है, होना न होना बराबर है। हमसे पहले कितने अरबों-खरबों लोग हो चुके। उनके होने न होने से अंततः क्या फर्क पड़ा? कुछ भी नहीं। वे होते कि न होते कुछ भी फर्क नहीं पड़ता। जैसे यह जमीन उनकी नहीं थी और वे विदा हो गए। लेकिन हम फिर जंजाल में फंस गए। जिस जमीन पर हम रह रहे हैं उसे हम अपनी जमीन कहने लगे। हमने मेरेपन का भाव जोड़ लिया। मेरा देश, मेरी जाति, मेरा गांव, मेरा घर, मेरा मकान, मेरे खेत-खलिहान और न जाने क्या-क्या मेरा?

किसी व्यक्ति की शादी हो गयी, अब मेरे पति, मेरी पत्नी। एक दिन पहले था कि पता नहीं ये कौन हैं, जानते भी न थे। अब ये अचानक मेरे पति हो गए, मेरी पत्नी हो गयी, फिर मेरे बच्चे हो जाएंगे। जिनके बारे में कुछ भी नहीं पता कि कौन हैं? क्या हैं? किसलिए आए हैं? कुछ भी नहीं पता। लेकिन मेरेपन की मुहर लगा देंगे।

इस प्रकार ये जंजाल फैलता जाता है। अपने आप को याद दिला रहे हैं गुरु नानकदेव कि हे मेरी परदेसी जीवात्मा तू क्यों इस जंजाल में उलझ रही है? यहां कुछ भी मेरा नहीं है, हो भी नहीं सकता। आज तक किसी का नहीं हुआ। सब लोग धोखे में रहे, इसलिए तो इसको जंजाल कह रहे हैं। भ्रांतिपूर्ण जादूगरी के खेल जैसा। दिखाई पड़ता है, मगर वैसा है नहीं।

'साचा साहिबु मनि वसै की फासहि जम जाले राम।।'

कहते हैं यदि वह सच्चा साहिब, वह परम सत्य रूपी परमात्मा अपने भीतर स्मरण आ जाए, तो फिर इस यम जाल से मुक्ति घट जाए। साधना के दो उपाय संभव हैं। एक पॉजिटिव ऐप्रोच है, सत्य का स्मरण। दूसरा निगेटिव ऐप्रोच है, असत्य से तादात्म्य तोड़ना। अलग-अलग रुचि, रुझान के लोगों को अलग-अलग मार्ग अच्छे लगते हैं।

आप देख लेना आपको कौन सा अच्छा लगता है, आपके लिए वही उचित मार्ग होगा। एक तो यह कि हम होशपूर्वक इस बात का ज्ञान करें कि क्या-क्या मैं नहीं हूं, मेरा नहीं है। नेति-नेति उससे दूर चलें, तादात्म्य तोड़ते जाएं, तोड़ते जाएं, अंततः वही बच जाएगा जिसको छोड़ा ही नहीं जा सकता, जो मेरा वास्तविक सच्चा स्वरूप है, एक उपाय यह है। दूसरा उपाय है पॉजिटिवली, सीधे ही उस सत्य के स्मरण से भरें। यह पॉजिटिव उपाय है। छोड़ो झूठ की चिंता, सपनों की चिंता। क्या हैं सपने? सत्य का ख्याल करो। कुछ लोगों के लिए संभव है। जब सत्य याद आ जाएगा तो सपने अपने आप छूट जाएंगे। अलग से कुछ प्रयास नहीं करना पड़ेगा।

तो जिसको जो भाता हो, अपनी विधि बना लें। याद रखना गौतम बुद्ध की विधि और अन्य बहुत से संतों की विधि नकारात्मक है, छोड़ने पर ज्यादा जोर है। इसलिए उनकी जीवनशैली में त्याग अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाता है। और ये जो शबद हम सुन रहे हैं, समाधि गीता में संकलित, ये गुरुनानक की परम्परा से आते हैं। इनका ऐप्रोच बिल्कुल अलग है, पॉजिटिव। ये त्यागवादी नहीं हैं। ये कह रहे हैं परम सत्य को जानो।

‘ साचा साहिबु मनि वसै।’

वह सच्चा साहिब हमारे भीतर बसा हुआ है, सीधा-सीधा उसका पता लगा लो। कुछ छोड़ने वगैरह की जगह नहीं है। दोनों एप्रोचेस अंततः वहीं पहुंचा देते हैं। दोनों का परिणाम एक ही है किंतु शरुआत का बिंदु बिल्कुल अलग है, ध्यानियों का बिंदु अलग है, भक्तों का बिंदु अलग है। इस बात का ख्याल रखना, नहीं तो कंफ्यूजन होता है। ध्यानी शुरुआत करता है उन चीजों के पीछे सजग होने से, जो मेरी नहीं, जो मैं नहीं। नाइदर दिस, नॉर दैट। यह उसका सूत्र है कि जो-जो मेरा नहीं है उसको त्यागूंगा, छोड़ूंगा, उससे दूर खिसकूंगा और भक्त इसकी चिंता नहीं करता। वह सीधा ही उसके ख्याल, उसके स्मरण से भर जाता है जो कि वास्तव में सच्चा स्वरूप है। ‘सांचा साहिब।’

‘मछुली विछुंनी नैण रुंनी जालु बधिकि पाइआ।’

कहते हैं, जैसे मछली फंस जाती है शिकारी के जाल में और फिर बहुत रोती है, पछताती है, लेकिन फिर तो कुछ हो नहीं सकता। एक बार फंस गए तो फंस गए। ठीक ऐसे ही ‘संसारु माइआ मोहु मीठा अंति भरमु चुकाइआ’। इस जगत का यह माया मोह भी बहुत मीठा लगता है, आकर्षक लगता है, लुभाता है। जीवात्मा उसमें जाकर फंस जाती है ‘अंत भरम चुकाईया।’ और अंतकाल में, मृत्यु के समय में जब भ्रम टूटता है कि अरे! यह मैं किन चीजों में उलझा था? आप इसकी कल्पना भी कर सकते हैं। जरा सोचें मृत्यु के समय आपको क्या घटेगा? जब मेरी जमीन भी गयी, मेरा मकान भी

गया, धन–दौलत भी गई, सामान भी गया, पत्नी खड़ी है, मां खड़ी है, पिता खड़े हैं, भाई खड़े हैं, पड़ोसी खड़े हैं आस–पास और आप मर रहे हैं। और अंत में अपना शरीर भी चला। हृदय धड़कना बंद हो रहा है, सांस चलनी बंद हो रही है। इस शरीर को अपना शरीर माना था, लो अब वह छूट रहा है। और आप कुछ भी नहीं कर सकते। सब प्रियजन खड़े हैं और कोई कुछ नहीं कर सकता।

उस समय क्या ख्याल आएगा? अंत में चौंक कर यही ख्याल आएगा 'अंति भरमु चुकाइआ'। कि गजब के भ्रम में उलझे रहे हम 70–80 साल तक, इन सब को अपना मानते रहे, इनके पीछे लड़ने–मरने को तैयार थे। धन, दौलत जमीन, लोग और यह लो हम चले। और तो और अपनी देह तक संग नहीं जा रही। कैसे भ्रम टूटेगा? और आश्चर्य होगा कि अस्सी साल तक हम भ्रम में डूबे रहे? कितना लंबा सपना था? और कितना सच्चा लगता था? और सपना टूटने पर पता चलता है कि सपना था।

हम रोज रात को सोते हैं, सपना देखते हैं। जब देखते हैं तो फिर वही सच लगने लगता है। वह तो सुबह जब नींद खुलती है तब पता चलता है कि सपना था। सपने के दौरान पता नहीं चलता कि सपना है। और मजे की बात है कि कितनी बार आप सो चुके! रोज सोते हैं, साल में 365 बार, दस साल में 3650 बार, कितनी बार सुबह उठ कर पता चला कि सपना था, सब झूठ था, कुछ भी उसमें सच न था! लेकिन रोज हजारों–हजारों सपने देखने के बाद भी जब आज रात को सोएंगे, फिर सपना घेर लेगा और बिल्कुल सच्चा लगने लगेगा। उस समय आप वास्तविक जगत से बिल्कुल टूट गए होंगे, कुछ भी ख्याल न होगा। और वह जो कहानी चल रही है भीतर, बिल्कुल काल्पनिक, वही छा जाएगी, आच्छादित हो जाएगी पूरे चित्त पर। वही सच जान पड़ेगी। फिर सुबह नींद खुलेगी तब पता चलेगा कि अरे! क्या बकवास चल रही था? कुछ ही मिनट बाद आप उसको फिर भूल जाएंगे। ऐसा हजारों बार हो चुका है।

नानक कह रहे हैं, संसार, माया, मोह, मीठा। जरूर यह माया, मोह, सपना अत्यंत मीठा होगा, इतना लुभा लेता है कि सारी दुनिया को भूल जाते हैं, वास्तविक दुनिया को। और बस वह काल्पनिक सपना, जो कि है ही नहीं, बुरी तरह फंसा लेता है हमको। सत्य असत्य में खो गया। जो सचमुच में है वह सच में गायब हो गया। बड़े से बड़ा चमत्कार है यह! आप सचमुच में हैं, आपकी चेतना सचमुच में है और वह उसमें उलझ कर खो गयी, उस सपने में जो कि है ही नहीं। इससे बड़ा जादू क्या होगा? और यह तो रात के सपनों की बात हो गयी। फिर वे दिन के सपने हैं जो 70–80 साल तक चलते रहेंगे। जब मृत्यु आएगी तब कैसा लगेगा? आश्चर्यकित होंगे कि यह भी खूब जादू रहा। 80 साल तक एक सपने को हम सच मानते रहे।

'अंति भरमु चुकाइआ'

लेकिन अंत में भ्रम टूटने से कोई लाभ नहीं है। जैसे रात को हम नींद में सोते हैं, छोटी नींद, ऐसे ही मृत्यु भी एक नींद है, लंबी नींद है। फिर नयी जिंदगी शुरू हो जाएगी, फिर नयी नींद शुरू हो जाएगी, फिर नए सपने शुरू हो जाएंगे। अंत समय में सपने टूटने से कुछ मतलब नहीं निकलता। कुछ हासिल नहीं होता। मजा तब आए जब बीच में सपना टूटे। जब वह चल रहा है, तभी होश आए। उस वक्त अगर हम जागरण में आ जाएं, तब असली मजा है। उसी की तरफ इशारा है।

'भगति करि चितु लाइ हरि सिउ छोड मनहु अंदेसिआ।'

मैंने आप से कहा गुरु नानक देव जी का मार्ग पॉजिटिव है, उपाय क्या बता रहे हैं? भगती करो। परमात्मा को अपने मन में बसा हुआ जानो।

'भगति करि चितु लाइ हरि सिउ छोड'

अपने चित्त को हरि में लगाओ, 'छोड़ मनउ अंदेशिया।' और हे मन ये सारे अंदेशे, शंकाएं इत्यादि छोड़ो, ये सपने छोड़ो, जो सत्यस्वरूप परमात्मा है अपने भीतर, उसमें चित्त लगाओ। भीतर के चैतन्य को, ओंकार को, भीतर के अमृत तत्व को जानो, पहचानो, उसमें डूबो। उसमें जड़ें जमाओ, सिर्फ पहचान से कुछ न होगा। उसमें जड़ें जमाओ, वहां तादात्म्य बनाओ, यह है पॉजिटिव एप्रोच। सत्य के साथ तादात्म्य बनाना।

**'भगति करि चितु लाइ हरि सिउ छोड मनहु अंदेसिआ।
सचु कहै नानकु चेति रे मन जीअड़िआ परदेसीआ।।'**

फिर दुहराते हैं गुरु नानकदेव जी कि मैं सत्य कहता हूं।

'सचु कहै नानकु चेति रे मन'

हे मन, जाग, चेत! हम जिसे सामान्य रूप से जागरण कहते हैं, इतना जागरण पर्याप्त नहीं है। माया के सपनों को तोड़ने के लिए, 'दिस इज नॅाट एनफ'। जैसे कोई पानी कुनकुना, कुनकुना गरम हो। तो ठीक है गरम तो है, मगर यह पर्याप्त नहीं है भाप बनाने के लिए। ऐसे ही हमारा जागरण कुनकुना, कुनकुना सा है। बस थोड़े-थोड़े जागे से हैं।

अब थोड़ा-थोड़ा जागा हुआ तो शराब पिये हुए आदमी भी रहता है। आखिर शराबखाने से डगमगाता-डगमगाता, गिरता पड़ता अपने घर पहुंच ही जाता है, रात के अंधेरे में। उससे पूछो होश में हो? वह कहेगा बिल्कुल! देखो। इतना लंबा रास्ता, रास्ते में तीन मोड़ आए, आखिर मुड़ गया ना? आ गया न अपने घर? ठीक है एक-दो जगह गिर गया, चोट लग गयी। पर आखिर अपने घर आ ही गया। थोड़ा तो उसको

भी होश है, पूर्ण बेहोश तो नहीं कह सकते।

ठीक ऐसा ही बुद्धों की तुलना में हमारा सामान्य जागरण है। हम जिसको होश कहते हैं, यह तो तुलनात्मक है। हम सामान्य जनों की तुलना में शराबी बेहोश है। और उस शराबी की तुलना में एनेस्थीसिया दिया गया आदमी, सर्जरी के टेबल पर लेटा हुआ आदमी बेहोश है। उस एनेस्थीसिया वाले की तुलना में कोमा का मरीज, ब्रेन हिमोरेज हो गया हो जिसका, वह ज्यादा बेहोश है। अब हम जैसे बैठे हैं, प्रवचन सुन रहे हैं, अभी अचानक बम विस्फोट की अवाज आ जाए, या धरती कांप जाए, भूकम्प आ जाए, आपका होश और घना हो जाएगा। तो होश–होश की मात्राएं हैं। इसका मतलब है जब और ज्यादा बेहोशी हो सकती है, तो और ज्यादा होश भी हो सकता है।

रात आप सो रहे थे, सपना देख रहे थे तो इतना तो होश था न कि सपना देखा। अगर बिल्कुल ही बेहोश होते तो सपने का भी किसको पता चलता? रात आप खर्राटे भर रहे हैं और कोई आपका नाम लेकर आवाज लगा दे तो आप तुरंत उठ कर बैठ जाएंगे। इसका मतलब थोड़ा होश तो है सोने पर भी। नहीं तो आपको कैसे पता चला कि आपका नाम लेकर पुकारा जा रहा है?

तो किसी तल पर जागे हुए हैं। यद्यपि खर्राटे भर रहे थे, ऊपर से देखने पर लग रहा था कि बिल्कुल बेहोश पड़े हैं, लेकिन फिर भी बिल्कुल बेहोश नहीं थे। तो होश की मात्राएं हैं, प्रतिशत है, तो हम जितना होश में हैं, इतना होश पर्याप्त नहीं है परम सत्य को जानने के लिए। इतने होश में हम खुली आंख के सपनों को ही जान पाते हैं, बस। इसलिए और सघन, कंडेंस्ड अवेयरनेस चाहिए। 'साचा साहिबु मनि वसै', इसको पता लगाने के लिए कहते हैं नानक, 'चेति रे मन'। और ज्यादा चैतन्य, और ज्यादा चैतन्य। परिपूर्ण चैतन्य अवस्था में सारे सपने गायब हो जाएंगे और जो शेष रहेगा वह परम सत्य होगा।

'चेति रे मन जीअड़िआ परदेसीआ।।'

फिर याद दिलाते हैं कि हे जीवात्मा तू परदेसी है, यह तेरा निवास स्थान नहीं है। तू कहीं से आयी है यहां विजिट करने, जल्दी ही यहां से वापस लौट जाएगी। जैसे आप गर्मी में किसी हिल स्टेशन पर गए और चार दिन किसी होटल में रुके, घूमे–फिरे और वापस चले आए। तब आपका वहां से तादात्म्य नहीं बनता। आपको पता है कि आप चंद दिनों के लिए यहां आए हैं, आप किसी जमीन को अपनी जमीन नहीं कहने लगते और होटल को मेरा होटल नहीं कहने लगते, और वहां के मैनेजर और वेटर और अन्य कार्यकर्ता, खाना पकाने वाले और सफाई करने वाले के साथ आप तादात्म्य नहीं बना लेते।

आपको पता है कि आप मेहमान हैं चार दिन बाद लौट जाना है। वहां जो है सो ठीक, उपयोग करो, मजा लो वापस लौट जाओ। हमें वहां की चाजों से क्या लेना–देना। हम खुद ही वहां टिकने को नहीं हैं। न हम वहां मीन–मेख निकालते, न आलोचना निन्दा करते। हम तो चार दिन के लिए मजा लेने गए हैं। हम क्यों आलोचना में उलझेंगे? हमने अपना मजा लिया, वापस लौट आए। न तो हमें पहले पता था कि वहां कैसा चल रहा है, न हम बाद में 'कंसर्न्ड' हैं कि क्या हुआ? आजकल क्या हो रहा है? हमें क्या लेना–देना? इससे क्या फर्क पड़ता है कि चार दिन के लिए गए, कि चार साल के लिए गए, कि चालीस साल के लिए, कि अस्सी साल के लिए। होटल, होटल ही है, परदेस, परदेस ही है। जो हमारा नहीं है, वह हमारा नहीं है चाहे कितने ही साल साथ रह लो। कोई पति–पत्नी पचास साल से साथ रह रहे हैं इससे क्या होता है? पांच हजार साल साथ रह लो तो भी कुछ नहीं होता। जो तुम्हारा नहीं है वह तुम्हारा नहीं है और नहीं हो सकता। अपने आप को याद दिलाना, अपने आप से बार–बार कहना

'जीअड़िआ परदेसीआ।।'

हे परदेसी जीवात्मा, यह बात ही चौकाने वाली और जगाने वाली है। तुम सोए–सोए रह न सकोगे। जैसे ही ख्याल आएगा कि मैं यहां सदा को रहने नहीं आया, मेरे जैसे अरबों–खरबों आए और चले गए, क्या तुम फिर उसी भांति जिओगे जैसा पहले जी रहे थे। असंभव, फिर तो गहन जागरण घटेगा। और उस जागरण में जो जाना जाता है वही है सत्य। 'साचा साहिबु मनि वसै'। वही है अविनाशी, अजन्मा, अमृत तत्व।

आओ उस दिशा में कुछ कदम उठाएं। गुरु नानकदेव जी की इस प्यारी वाणी के संग अब हम उत्सव मनाएं। झूमें, नाचें, गाएं। जय ओशो!

अमृत की उपलब्धि कैसे?

धनु जोबनु अरु फुलड़ा नाठीअड़े दिन चारि।
पबणि केरे पत जिउ ढलि ढुलि जुंमणहार।। 1।।
रंगु माणि लै पिआरिआ जा जोबनु नउहुला।
दिन थोड़े थके भइआ पुराणा चोला।। 1।। रहाउ।।
सजण मेरे रंगुले जाइ सुते जीराणि।
हुं–भी वंञा डुंमणी रोवा झीणी बाणि।। 2।।
की न सुणेही गोरीए आपण कंनी सोइ।
लगी आवहि साहुरै नित न पेईआ होइ।। 3।।
नानक सुती पेईऐ जाणु विरती संनि।
गुणा गवाई गंठड़ी अवगण चली बंनि।। 4।।

समस्त ओशो–प्रमियों को नमस्कार! आज के सत्र में आप सबका स्वागत है।

गुरुनानक देव जी की अमृत वाणी को सुनने के पहले खूब अच्छे से समझ लेना, अमृत को केवल वही प्राप्त होते हैं जो मृत्यु का साक्षात् जीते जी कर लेते हैं। जो मृत्यु से अपना मुंह छिपाते हैं, इस सत्य का साक्षात् करने से दूर भागते हैं, वे कभी अमृत की खोज में नहीं लगते, वे कभी अमृत को उपलब्ध नहीं होते।

'धनु जोबनु अरु फुलड़ा नाठीअड़े दिन चारि।
पबणि केरे पत जिउ ढलि ढुलि जुंमणहार।।
रंगु माणि लै पिआरिआ जा जोबनु नउहुला।
दिन थोड़े थके भइआ पुराणा चोला।।'

कहते हैं गुरुनानक देव जी कि मनुष्य का धन और यौवन तो फूलों की भांति चार दिनों का मेहमान होता है। ये तत्व पानी में पैदा होने वाले पत्तों के भांति मुरझा कर शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। इसलिए हे मेरे प्रिय मित्र, जब तक जवानी का चढ़ाव है, आनंद और उल्लास मना लो, किंतु थोड़े दिनों में यह चोला, अर्थात् शरीर पुराना पड़ जाएगा।

' सजण मेरे रंगुले जाइ सुते जीराणि।
हुं–भी वंज़ा डुंमणी रोवा झीणी बाणि।।'

हमारे प्रियजनों में से अनेक प्रियजन खुशियों में झूमते रहे लेकिन वे भी अंततः श्मशान घाट में जाकर सो गए। और मैं जो पीछे रह गयी, अकेली रह कर उनके लिए रोती रही कि शायद मैं बच जाऊं, किंतु ऐसा नहीं हो सकता। मैं भी अब वहीं जाकर रहूंगी।

'की न सुणेही गोरीए आपण कंनी सोइ।
लगी आवहि साहुरै नित न पेईआ होइ।।'

हे सुन्दर जीवात्मा, क्या तू रोज–रोज यह बात नहीं सुनती कि तुझे ससुराल जाना है? कोई स्त्री सदा–सदा अपने मायके में, पीहर में नहीं रहती है।

'नानक सुती पेईऐ जाणु विरती संनि।
गुणा गवाई गंठड़ी अवगण चली बंनि।।'

गुरु नानक देव कहते हैं कि जो लापरवाह स्त्री पीहर में ही सोयी रहे, वह दिन–दहाड़े लुट जाने वाले राही के समान है। उसका आचरण अपने यथार्थ गुणों के होश को गंवा कर अवगुणों की गठरी बांधने के तुल्य है।

केवल गुरुनानक देव ही नहीं दुनिया के समस्त संत मृत्यु का बारम्बार उल्लेख करते हैं ताकि हम जागें, चेतें। किंतु हम भी विचित्र लोग हैं, हम ऐसी मदहोशी की नींद सोए हैं जैसे मृत्यु है ही नहीं। और हमने भांति–भांति के उपाय किए हैं कि मौत का हमें पता भी न चले। हमारी जिंदगी गहरी मूर्च्छा से ओत–प्रोत है, मृत्यु के प्रति बिल्कुल

अचेत है। इसलिए श्मशान और कब्रिस्तान हम शहर से दूर बनाते हैं, गांव के बाहर। होना तो चाहिए था कि बिल्कुल बीच बाजार में हो जहां से आए दिन गुजरना होता है, दिन में चार बार आते–जाते हैं। जब वहां से गुजरो और देखो कि किसी की लाश जल रही है तो शायद किसी दिन होश आ जाए। लेकिन हम जानबूझ कर इसे गांव से बाहर बनाते हैं, जहां से कभी गुजरना नहीं होता। होना तो चाहिए बिल्कुल शॉपिंग मॉल के सामने, सिनेमा घर के सामने। जब टिकट की लाईन में लगे हों तब तुम्हें ख्याल आए कि जो सज्जन जल रहे हैं वे अभी–अभी लाईन में लगे थे। शॉपिंग मॉल में सामान खरीदते हुए... लोग ऐसे सामान खरीदते हैं कि पता नहीं कितने साल रहना है यहां?

जयललिता के पास इतनी साड़ियां हैं कि अगर वह कुछ भी न करे– खाना, पीना, नहाना, सोना सब बंद कर दे, सिर्फ एक साड़ी पहने, उतारे; दूसरी पहने, उतारे; सिर्फ इतना ही करती रहे बस, तो भी बची हुई जिंदगी में जितनी साड़ियां है उसके पास उसका दस परसेंट भी वह नहीं पहन पाएगी। इतना बड़ा भंडार इकट्ठा किया है! इतना तो दुकानों में भी नहीं है, बड़े–बड़े दुकानों में नहीं है।

हम ऐसे जीते हैं जैसे हमको लाखों करोड़ों साल यहां रहना है। और लोगों से कहो तुम आध्यात्मिक मूर्च्छा में हो तो कहते हैं नहीं! हम तो भले–चंगे होशो–हवास में हैं। कितनी छोटी–छोटी बातों पर झगड़े होते हैं। अगर ख्याल हो कि हम मर जाने वाले हैं, हमें यहां सदा नहीं रहना, अचानक पता चलेगा जिस बात पर हम झगड़ रहे हैं, उसका कोई मूल्य ही नहीं बचा। बेकार की बातों में, जिसमें एक मिनट भी गंवाने जैसा नहीं था। हमें अपने पूरे जीवन पर पुनर्विचार करना होगा।

कफन के रंग के कपड़े संन्यासी को पहनाये जाते हैं, यही याद दिलाने के लिए कि तुम कफन पहन कर ही जी रहे हो। ऐसे जिओ मानो मर ही चुके हो, या मरने ही वाले हो। एक अद्‌भुत फकीर हुआ इब्राहिम। सूफियों में उसका बड़ा नाम है। फकीर होने के पहले वह बादशाह था। उस समय भी उसका बड़ा नाम था। एक दिन आधी रात को उसकी नींद खुली, खटर–पटर की आवाज हो रही थी। महल की छत पर ऐसा लग रहा था कोई चल रहा है। सतर्क हो गया कि न जाने कौन दुश्मन है, क्या जान लेने आ रहा है? क्या कर रहा है? उसने जोर से चिल्लाकर पूछा, कौन है? ऊपर से आवाज आयी कि आप चिंता न करें मैं आपका शत्रु नहीं हूं, मेरा ऊंट खो गया है। और यह कहानी है अरब देश की जहां रेगिस्तान है। उसने कहा कि मेरा ऊंट खो गया है, तो मकानों की छतों पर मैं ढूंढ़ता फिर रहा हूं कि कहां है? शायद कहीं मिल जाए।

इब्राहिम ने कहा तुम पागल हो! ऊंट कभी छत पर मिलेगा क्या? ऊपर से हंसी की आवाज आयी। उस आदमी ने कहा कि तुम जीवन में शांति, आनंद, जो भी

सार–तत्व खोज रहे हो, सत्य खोज रहे हो, तुम इससे भी ज्यादा कठिन काम कर रहे हो। मुझे तो शायद ऊंट कभी मिल भी जाए, तुम अपनी सोचो! तुम जो कर रहे हो वह कभी भी नहीं होगा क्योंकि जिस जगह तुम खोज रहे हो वह जगह ही गलत है। और यहीं बताने के लिए मैं खटर–पटर कर रहा था। नमस्कार, चलता हूं।

इब्राहिम महल के बाहर आया, उस व्यक्ति को पकड़ने के लिए। बहुत महत्त्वपूर्ण बात कह रहा था लेकिन वह कहां खो गया कुछ पता न चला। नहीं ढूंढ़ पाया, कौन था? लेकिन दिल में बात कांटे की तरह चुभ गयी कि मैं जो खोज रहा हूं, आजतक तो कुछ नहीं हुआ। बड़ा विवेकवान आदमी था। उसकी बात मन में खटक गयी थी। कोई महीना भर गुजर गया फिर एक दिन उसने सुना कि आवाज आ रही है। दिन का ही समय था, वह अपने दरबार में ही बैठा था बाहर गेट पर आवाज आ रही थी। कोई आदमी दरबानों से लड़ रहा था।

वह पहचान गया कि यह वही आवाज है, जिसने कहा था कि छत पर ऊंट खोज रहा हूं। वह बाहर पहुंचा कि देखें कौन है आदमी? एक सूफी फकीर था और दरबान से उसकी लड़ाई हो गयी थी। वह कह रहा था कि इस सराय में मुझे ठहर जाने दो, दो–चार दिन। और दरबान कह रहे थे पागल हो तुम, तुम्हारा दिमाग खराब है, यह सराय नहीं है, राजमहल है। खबरदार ऐसे शब्द का उपयोग किया। वह कह रहा था कि नहीं, यह सराय है, और इतने लोग ठहरते हैं तो मुझे भी ठहर जाने दो, दो–चार दिन में क्या बिगड़ जाएगा? चला जाऊंगा दो–चार दिन बाद।

इब्राहिम ने कहा कि क्यों व्यर्थ विवाद कर रहे हो? सारी दुनिया जानती है यह सम्राट का महल है, मैं शहंशाह हूं, यह मेरा महल है। तुम इसको धर्मशाला या सराय क्यों कह रहे हो? उस आदमी ने कहा, आप हैं शहंशाह! यह आपका महल है? देखिए मैं तो बहुत बूढ़ा हूं आज से करीब बीस साल पहले भी मैं यहां आया था तब तो आप यहां नहीं थे। एक दूसरे सज्जन मिले थे, वे कह रहे थे कि उनका महल है। उनको बुलाइये, उनसे पूछते हैं। वे कहां है? क्योंकि आप कह रहे हैं आप का महल है, वे कह रहे थे उनका महल है। आज निपटारा हो ही जाए, किसका महल है?

इब्राहिम ने कहा वे मेरे अब्बाजान थे, वे तो स्वर्गवासी हो गए, अब वे इस दुनिया में नहीं हैं। उस फकीर ने कहा और करीब पचास साल पहले भी मैं यहां आया था तब एक दूसरे बुढ़उ मिले थे यहां, बिल्कुल बुड्ढा था वह। वह भी कह रहा था कि यह उसका महल है, उसको बुलाओ। इब्राहिम ने कहा जरा जबान संभाल कर बात करो। ये बुड्ढा और बुढ़उ शब्द! वो मेरे दादा जी थे, वो तो कब के स्वर्ग सिधार चुके।

तो फकीर ने कहा, यही तो मैं कह रहा हूं तुम्हारे दरबानों से कि यहां आते हैं,

थोड़े दिन रुकते हैं, चले जाते हैं। तुम्हारे दादा जी आए, चले गए। तुम्हारे पिताजी आए और चले गए, तुम रहोगे क्या यहां? कल को मैं फिर आऊंगा पक्का है कि तुम नहीं मिलोगे? फिर कोई और मिल जाएगा जो कहेगा कि हम इब्राहिम के बेटे हैं। यह महल हमारा है। तो सराय का यहीं तो मतलब होता है जहां लोग आते हैं, कुछ दिन रहते हैं, फिर चले जाते हैं, यात्री हैं। तो मुझे दो दिन रुक जाने दो, इसमें क्या हर्ज है? धर्मशाला हीं है एक प्रकार का, होटल।

इब्राहिम ने उस आदमी के पैर पकड़ लिए कहा कि मैं पहचान गया, तुम्हीं थे छत पर ऊंट खोज रहे थे। मैं तुम्हारी आवाज पहचान गया। बात समझ में आ गयी। अब इन चरणों को छोड़ूंगा नहीं। अब मुझे बताओ फिर मेरा घर कहां है? मैं खोज चुका ऊंट, वो मुझे नहीं मिला। मैं हार गया, मैं थक गया। तुम्हारी पहली वाली बात भी सही थी। लेकिन अब मुझे ज्ञान दो। समझ में आ गया नहीं है मेरा महल, तो फिर मैं कौन हूं? उस सूफी फकीर ने कहा फिर चलो मेरे संग। थोड़ा समय लगेगा, थोड़ी साधना करनी पड़ेगी लेकिन खोज लोगे क्योंकि आदमी तुम बुद्धिमान हो।

इब्राहिम उसके पीछे जाने लगा, दरबानों ने भीतर जाकर राजकुमारों को, राजकुमारियों को, रानियों को, अन्य मंत्रियों को बताया कि शहंशाह तो जा रहे हैं। वे लोग भागे–भागे आए। पूछा कहां जा रहे हैं महल छोड़कर? इब्राहिम हंसने लगा कि महल–वहल कुछ नहीं है हम धोखे में थे। हम जा रहे हैं अब असली महल की ओर। उसके मुख्यमंत्री और दूसरे मंत्री पीछे पड़ गए, कहां की बातें कर रहे हैं? ये पागल फकीर की बातों में आ गए। हम आपके मंत्री हैं, आप हमें भूल गए क्या? उसने कहा क्षमा करना, जब मैं नहीं था दुनिया में तब भी तुम थे, मैं नहीं रहूंगा तब भी तुम रहोगे। मुझे तुमसे कुछ लेना–देना नहीं। संयोग की बात है कि तुम मेरे मंत्री हो। न मेरा महल है, न मेरा राज्य, न मेरा कुछ है। मैं जा रहा हूं। असली राज्य की तलाश में कि मेरा क्या है? रानी रोने लगी कि हम आपकी रानी हैं। इब्राहिम ने कहा कि व्यर्थ की बातें न करो, यह संभव नहीं है। न तुम मेरी हो न मैं तुम्हारा हूं, यहां कोई किसी का हो ही नहीं सकता। इसमें मेरा या तुम्हारा किसी का दोष नहीं है। नियम ही ऐसा है, यहां कोई किसी का हो नहीं सकता।

इब्राहिम लौटा नहीं, चला गया। बाद में किस्सा आता है कि इब्राहिम एक कब्रिस्तान से कभी गुजर रहा था और एक खोपड़ी से पैर टकरा गया। इंसान की खोपड़ी पड़ी हुई थी। शाम का समय था धुंधले में उसके पैर टकरा गया। उसने वो खोपड़ी अपने साथ रख ली धागे में बांध कर जैसे बाबा लोग कमंडल रखते हैं न ऐसे ही वह खोपड़ी लटका कर रखता था। वह जहां जाए वहीं लोग घृणा करें उससे कि यह

क्या? आदमी की खोपड़ी क्यों लटका कर घूम रहे हो? देखकर घिन पैदा होती है। इब्राहिम बताता है कि मुझसे गलती हो गयी, अंधेरा हो गया था मेरा पैर टकरा गया इस खोपड़ी से। वह तो अच्छा हुआ आदमी मर गया था जिंदा होता तो मेरी खोपड़ी खोल देता वह।

जैसे किसी के सिर में पैर से मारो तो बदला नहीं लेगा क्या वह? हम इससे क्षमा मांगते रहे कि भई क्षमा कर, माफ कर मुझे, भूल हो गयी, अंधेरे में पैर लग गया था। लोग उसकी बात सुनकर हंसते कि खोपड़ी से क्षमा मांगने की क्या जरूरत? इब्राहिम ने कहा कि मुझे इस खोपड़ी को साथ रखने से एक लाभ रहता है, याद बनी रहती है कि अपने भीतर भी वही खोपड़ी रहती है। इसी प्रकार की, अभी ऊपर से ढकी है, इसके ऊपर की चमड़ी को कुत्ते, सियार वगैरह नोच कर ले गए, खा गए। एक दिन अपनी चमड़ी भी नोच कर ले जाएंगे। है यहां भी खोपड़ी और फिर निकलते हुए लोग लातें मारेंगे, क्या-क्या नहीं होगा? गाय गोबर कर के चली जाएगी ऊपर, हम क्या करेंगे? खोपड़ी कुछ भी न कर सकेगी।

तो फिर अभी भी अगर कोई ऐसा कर जाए तो मुझे क्रोध नहीं आता। कोई अपमान कर जाए, गाली दे जाए, जूता मार जाए मेरी खोपड़ी को, हम कहते हैं कुछ साल बाद तो यही होना ही होना है। तो चलो तुमने थोड़ा एडवांस में कर लिया, 'सो व्हाट'? क्या फर्क पड़ता है? बाद में तो जूते पड़ने ही पड़ने हैं। तो यह खोपड़ी मुझे याद दिलाती रहती है कि अपनी भी यही गति होने की है। इसलिए इतनी उत्तेजना में आने की जरूरत नहीं है। किसी ने जूता मार दिया सिर में तो मार दिया। अब वह जाने, उसका काम जाने कि क्यों मारा? इससे हमें कुछ लेना-देना नहीं। हमें क्रोध नहीं आता इस बात पर। यह तो होना ही होना है।

याद रखना आज तक जिन लोगों भी परम ज्ञान को पाया है, मृत्यु के स्मरण से ही पाया है। जीवन तो सुलाता है, मौत जगाती है। और इसलिए संतों की वाणी में बारम्बार मृत्यु का बोध दिलाया जाएगा। जगाने वाली यही बात है। नहीं तो क्षुद्र बातों में यूं उलझे हुए हैं हम मानो शराब पी रखी हो, गहरी मूर्च्छा में हों। जो यथार्थ है हमारे लिए वह तो खो गया है, जैसे है ही नहीं। और जो बिल्कुल व्यर्थ की बातें हैं वे बहुत सार्थक होकर, बड़ी होकर नजर आ रही हैं।

यही हमारे जीवन की विडम्बना है। और इस मूर्च्छा से अगर जागना है तो मृत्यु का स्मरण शुरू करो। परमात्मा का स्मरण करो न करो कोई फर्क नहीं पड़ता। जो यथार्थ है, फैक्ट है, उसका स्मरण करो तो चौंकोगे, जागोगे। हमारी जीवनशैली परिवर्तित हो जाएगी। भगवान के नाम का स्मरण करते रहो उससे कुछ भी नहीं होगा। समय बर्बाद

होगा। मौत का स्मरण करो, क्षण–क्षण ऐसे जिओ जैसे कभी भी मौत हो सकती है। और यह एक तथ्य है, कोई काल्पनिक बात नहीं है।

‘हुं–भी वंज़ा डुंमणी रोवा झीणी बाणि।।
की न सुणेही गोरीए आपण कंनी सोइ।’

लगी आवहि साहुरै नित न पेईआ होइ।।’

हे सुन्दर जीवात्मा, क्या तू रोज–रोज यह बात नहीं सुनती कि तुझे ससुराल जाना है सदा के लिए, इस पीहर में, मायके में नहीं रह सकती, आज तक कोई नहीं रहा।

‘नानक सुती पेईऐ जाणु विरती संनि।
गुणा गवाई गंठड़ी अवगण चली बंनि।।’

कहते हैं नानक कि जो जीवात्मा रूपी स्त्री बे–परवाह हुई और पीहर में ही सोई रही, वह दिन–दहाड़े लुट जाने वाले राही के समान है। अपने यथार्थ गुणों के कोष को गंवाकर अवगुणों की गठरी बांधने के समान है। जागो, चेतो और मृत्यु का स्मरण बहुत सुन्दर होगा। इब्राहिम की तरह खोपड़ी की जगह एक आधुनिक उपाय बता दूं, जाकर एक्स–रे करवा लेना अपने सिर का, उसमें खोपड़ी नजर आएगी। उसको अपने घर में, ऑफिस में, टेबल पर, जगह–जगह लगाकर रखो। अपना नाम लिख देना उस पर। जब–जब नजर पड़ेगी स्मरण आ जाएगा। ये ऊपर की चमड़ी, रंग–रोगन, और शक्ल–सूरत जिसके भीतर छुपी है– खोपड़ी। यह स्मृति खूब जगाएगी, चेताएगी, जीवन रूपांतरित करेगी।

जब रोज कपड़े पहनो यही समझ कर पहनना कि कफन धारण कर रहा हूं। अचानक तुम पाओगे कि जिन चीजों में तुम्हें बहुत रस था और लगाव था, और दीवानगी थी, वो सारा रस गायब हो गया। और एक नया रस प्राप्त होना शुरू होगा। पहले तो पुराना छूटेगा। एक ‘ट्रांजिश्नल फेज़’ से गुजरना होगा। क्योंकि जिन व्यर्थ की बातों को हम सार्थक मानकर बड़े रसमग्न थे पहले, उनसे मोह टूटेगा। लेकिन अगर तुम जागे रहे, जागे रहे, फिर धीरे–धीरे सत्य की सुगंध आनी शुरू होगी। पहले झूठ छूटेगा।

तो बीच का एक फेज़ बड़ा विचित्र है जहां अभी सत्य पकड़ में आया नहीं और झूठ छूट गया। बड़ी घबराहट वाली फेज़ है यह। जैसे किसी के पैरों के नीचे की जमीन खिसका ली गई हो, जिसको वह आधार समझ रहा था, मजबूत बुनियाद समझ रहा था, टिका है जिस पर वह। अचानक पैर के नीचे की जमीन खिसक गयी और कुछ नया आधार मिला नहीं, अतल खड्ड में जैसे गिरने लगा हो। लेकिन जो सत्य है सो है, उसको स्वीकारो। उस झूठी जमीन पर कब तक पैर टिकाकर खड़े रहोगे, जो है ही

नहीं।

इससे तो अच्छा है, जो सच है वहीं पता चले। चाहे वह घबड़ाने वाला हो, डराने वाला हो। जो कुछ भी हो कम से कम सच तो है। लेकिन जिसने इतनी हिम्मत की, अंततः एक दिन सत्य की जमीन पर उसके पैर पड़ते हैं। लेकिन बीच का यह फेज़ जरूर आता है। इससे बचने की कोशिश नहीं करना, वह तो आएगा ही आएगा। अगर तुमने बचने की कोशिश की तो तुम फिर जल्दी से सपनों को पकड़ लोगे। फिर उनको सच मानना शुरू कर दोगे। फिर मूर्च्छित हो जाओगे।

आओ, इस प्यारे शबद के साथ हम उत्सवमग्न हो जाएं। झूमें, नाचें, गाएं। मस्त होकर जागें। मूर्च्छा को दूर भगाएं। जय ओशो!

दीवानी प्रेमिका का श्रृंगार

मैं बउरी मेरा रामु भतारु।
रचि रचि ता कउ करउ सिंगारु।। 1।।
भले निंदउ भले निंदउ भले निंदउ लोगु।
तनु मनु राम पिआरे जोगु।। 1।। रहाउ।।
बादु बिबादु काहू सिउ न कीजै।
रसना राम रसाइनु पीजै।। 2।।
अब जीअ जानि ऐसी बनि आई।
मिलउ गुपाल नीसानु बजाई।। 3।।
उसतति निंदा करै नरु कोई।
नामे श्रीरंगु भेटल सोई।। 4।।

परम प्यारे की तलाश में निकले मस्तानों को नमस्कार! आज के सत्र में आप सबका स्वागत है। आओ इस प्यारे शबद के भावार्थ का रसपान करें। संत नामदेव जी कहते हैं–

' मैं बउरी मेरा रामु भतारु।'

कहते हैं, मैं दीवानी हूं अपने प्यारे प्रभु की, वह मेरा प्रेमी है, मैं उसकी प्रेयसी।

' रचि रचि ता कउ करउ सिंगारु।'

और जैसा उसे रुचता है, भाता है, मैं वैसा हीश्रृंगार करती हूं। भक्तों की भाषा मेंश्रृंगार शब्द साधना का पर्यायवाची है। अर्थात् मैं वैसी साधना करती हूं, अपने जीवन को वैसा ढालती हूं, जैसा कि परमात्मा को प्रिय है। मैं उसके अनुसार जीती हूं। जैसी प्रभु की मर्जी, यही भक्त काश्रृंगार है। अहंकार हमारी कुरूपता है और निरअहंकारी होना, प्रभु की मर्जी से जीना, हमाराश्रृंगार है, हमारा सौंदर्य है।

'भले निंदउ भले निंदउ भले निंदउ लोगु।
तनु मनु राम पिआरे जोगु।।'

कहते हैं अब चाहे दुनिया के लोग भले ही निंदा करें, आलोचना करें, किंतु मैं तो अपने उस प्रेमी के अनुसार ही जिऊंगी। मेरा तन मन उस प्यारे से जुड़ गया है। अब तो बस उसी की सुध, उसी का सुमिरन रहता है। मैं पूरी तरह उस प्यारे के प्रति समर्पित हूं।

दुनिया के लोगों की क्या धारणा है, उसकी अब मुझे चिंता नहीं, उसकी फिकर नहीं है। क्यों संत अपने आप को परमात्मा की प्रेयसी के रूप में, स्त्री रूप में संबोधन करते हैं? यह भी बहुत महत्त्वपूर्ण बात है, इसको समझना। स्त्रैण गुण का अर्थ है रिसेप्टिविटी, ग्रहणशीलता। पुरुष का गुण है आक्रमण करना, दूसरे पर विजय प्राप्त करना। आप मनुष्य जाति का इतिहास उठाकर पढ़ें, दुनिया के किसी भी देश का, किसी भी जाति का ....युद्ध, युद्ध और युद्ध की कहानी मिलेगी। स्मरण रखना ये सब पुरुषों के द्वारा निर्मित समाज, देश, राजनीति की कहानी है जिसका फाइनल कंक्लूज़न, अंतिम निष्कर्ष युद्ध होता है।

दुर्भाग्यवश, आज तक सारी दुनिया 'मेल डॉमिनेटेड' रही, पुरुषों की मानसिकता के अनुसार चली है। और उसका दुष्परिणाम है युद्ध, आतंकवाद, राजनीति, चालाकी, हिंसा, बेईमानी... सब प्रकार की दुष्टताएं। स्त्रियों को अवसर ही नहीं मिला एक सभ्यता और संस्कृति विकसित करने का, वरना दुनिया की स्थिति बिल्कुल दूसरी होती। ज्यादा प्रेमपूर्ण, भाईचारे से ओत–प्रोत, करुणा, सहानुभूति, दया ...ये उसके विशेष गुण होते। यह दुनिया एक स्वर्ग हो सकती थी। फिर इतिहास

में युद्धों का वर्णन न होता। करुणापूर्ण कृत्यों का वर्णन होता। लेकिन दुर्भाग्यवश, ऐसा नहीं हो सका।

और पुरुष जब परमात्मा को भी पाने की कोशिश करते हैं तो भी उनमें हिंसक भाव, आक्रामक भाव मौजूद रहता है। वे अध्यात्म के मार्ग पर भी ऐसे चलते हैं जैसे कोई विजय पताका फहराने जा रहे हों। ईश्वर पर भी हमला करने जा रहे हों। उसको भी वे उसी भाषा में बोलते हैं जैसे कोई विजय प्राप्त कर ली हो, ईश्वर को हासिल कर लिया हो। ईश्वरज्ञान प्राप्त करने चले और इसलिए बड़े अहंकार से भरे होते हैं। दुनिया में तो उन्होंने विजय हासिल कर ली, अब परमात्मा पर भी विजय पताका फहराने चले। और इसलिए वे प्रभु को पाने में असफल रहते हैं। इस ढंग से परमात्मा को नहीं पाया जा सकता।

इसलिए योगी कितने योग साधते रहें, कितने ही उल्टे–सीधे आसन करें, शीर्षासन करते रहें, कि एक टांग पर खड़े रहें, कि भूखे रहें, कि त्याग तपस्या करें, जो करना हो कर लें, सच्चिदानंद की प्राप्ति उन्हें नहीं हो सकती। जिस विधि से वे चल रहे हैं वह विधि ही नहीं है उसे पाने की। इस तरह वे अपने अहंकार को और मजबूत कर रहे हैं कि मैंने ये किया, मैंने वो किया, मैं कितना महान हूं। अब अशुद्ध संसार में मेरा रस नहीं, मैं तो ईश्वर को पाने चला।

इसमें भी वही आक्रामक भाव है, चढ़ाई करने जा रहे हों जैसे। भक्ति स्त्रैण गुण के द्वारा संभव है, यहां हिंसा नहीं है, आक्रमण नहीं है, प्रतीक्षा है, समर्पण है, श्रद्धा है, भरोसा है कि हम जिसे प्रेम करते हैं वह एक दिन आएगा। इसलिए भक्त स्वयं नहीं जाता ईश्वर को पाने। स्वयं परमात्मा ही एक दिन उसके द्वार पर दस्तक देता है। इस फर्क को याद रखना। वह तो अपने घर में इंतजार करता है। वह कहता है कि अभी मैं योग्य नहीं हूं, यही उसकी निरअहंकारिता और योग्यता है। वह कहता है, अभी मैं इस लायक नहीं हूं कि परमात्मा मुझ तक आए। जब मैं हो जाऊंगा विनम्र पात्र, योग्य पात्र, तो प्रभु अवश्य आएगा।

'भले निंदउ भले निंदउ भले निंदउ लोगु।
तनु मनु राम पिआरे जोगु।।'

कहते हैं मेरा तो तन मन अब उस प्यारे से जुड़ गया है। अब तो मैं पूरी तरह समर्पित हो गया हूं। एक भरोसा है कि वह जरूर मिलेगा। वह आएगा, मैं इंतजार में हूं, प्रतीक्षा में हूं। इस प्रतीक्षा के साथ धीरज उत्पन्न होता है, और जैसे–जैसे धीरज गहरा होता जाता है, चित्त शांत होता चला जाता है। प्रतीक्षा करने वाला क्या कर सकता है? शांत ही तो हो सकता है, बस। उसे कुछ करने को तो रह नहीं गया। वह तो सिर्फ

प्रतीक्षा कर रहा है।

तो प्रतीक्षा करने में शांति आती जाएगी और भीतर पात्रता निर्मित होती जाएगी। शून्यता घनी होती चली जाएगी। इसमें कोई प्रयास तो है नहीं, कुछ करना तो है नहीं। जो करना है वह परमात्मा करेगा इसलिए भक्तों ने परमात्मा को कर्ता–पुरुष कह कर पुकारा कि करने वाला वही एक है। हम भला क्या करेंगे? हम तो केवल प्रतीक्षा कर सकते हैं कि जब उसकी मौज हो, जब उसकी मर्जी हो वह आए। और नहीं आए तो यह हमारी ही कुछ भूल–चूक होगी। हमारी प्रतीक्षा में कुछ कमी होगी, हमारे प्रेम में कुछ कमी होगी, दोष कुछ हमारा ही होगा।

तो हम और प्रतीक्षा भाव को साधें, भक्त की भावदशा समर्पण की है। और इसलिए यह आश्चर्य नहीं कि बहुत से संतों ने अपने आप को स्त्रैण रूप में संबोधित किया है क्योंकि वास्तव में वे इस भावदशा में ही जी रहे हैं। परमात्मा को कहा है पुरुष, कर्ता पुरुष। जीवात्मा को कहा है स्त्रैण।

'बादु बिबादु काहू सिउ न कीजै।
रसना राम रसाइनु पीजै।।'

कहते हैं अब किसी से वाद–विवाद नहीं करता। कोई तर्क–वितर्क नहीं करता, कोई किसी को समझाने नहीं जाता। ये वाद–विवाद करना भी पुरुषों का लक्षण है। स्त्रियों को वाद–विवाद में रस नहीं होता। वे तर्क–वितर्क नहीं करतीं, वे विश्लेषण नहीं करतीं। वे विचार, चिंतन–मनन, कि दूसरों को हराना है, इस चक्र में वे नहीं पड़तीं। उनको जो अच्छा लगता है वही–वही करती हैं। दूसरे पर नजर नहीं होती।

पुरुष अध्यात्म में भी जाए तो भी उसकी पुरुषता, उसकी कठोरता बाकी रह जाती है। तब भी वह दूसरों को समझाने की चेष्टा करेगा। दूसरों को बदलने की कोशिश करेगा। इसलिए आपने देखा होगा, इतिहास में इतने धर्मगुरु हुए अधिकतम पुरुष, महिलाएं धर्मगुरु नहीं हुईं। उन्हें इस बात में कोई रुचि नहीं है कि दूसरे को बदलें, कि उससे वाद–विवाद करें, कि उसको बताएं कि तुम कर रहे हो वह सही नहीं है। इतना भी इंटरेस्ट नहीं है। यह भी पुरुषों का रस है।

शंकराचार्य को देखते हैं, कहां दक्षिण भारत में जन्म लिया था और 33 साल की छोटी सी उम्र में तो समाप्त हो गए, और इस छोटी सी उम्र में उन्होंने क्या–क्या कर डाला? कितने ग्रंथों की रचना कर दी और पूरे भारत का भ्रमण कर लिया और देश के चार कोनों में, चार धाम बसा दिए। अब यह कोई हंसी खेल तो है नहीं, आप में से यहां बैठे अधिकांश लोग 33 साल से ऊपर के हो चुके होंगे। अपना एक घर बसाना भी कितना मुश्किल है? और देश के चार कोनों में चार धाम बसा देना, लाखों लोगों को

उन्होंने कन्विन्स कर लिया होगा।

अगर सिकंदर और शंकराचार्य में आप तुलना करें तो कुछ खास भेद नजर नहीं आता। वे भी विश्वविजेता बनने चले हैं, ये दूसरे ढंग से विजेता बनने चले हैं। सिकंदर तलवार चलाते थे, ये तर्क चलाते हैं, मगर काम यही है। वे दूसरों का सिर काटते थे और ये तर्क से बुद्धि काटते हैं। लगभग मिलता–जुलता ही काम है। उनको हरा के, परास्त कर के फिर आगे बढ़ते हैं। पूरे देश में सारे पंडितों और सारे विद्धानों को उन्होंने हरा दिया। सब उनके प्रति समर्पित हो गए। तैंतींस साल की छोटी उम्र में तो वे समाप्त ही हो गए! अद्‌भुत ग्रंथों की रचना की, उनके तर्क का कोई मुकाबला नहीं। लेकिन यह तर्क भी तलवार जैसा ही है। दूसरे के विचारों को, धारणाओं को, फिलॉसफी को बुरी तरह काटेगी। तलवार ही है।

महिलाओं को इन सब में कोई इंटरेस्ट नहीं इसलिए महिलाएं में गुरु नहीं हुईं। ऐसा नहीं है कि महिलाओं को ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। वह तो बराबरी से हुआ। जितने पुरुष मोक्ष को गए, उतनी ही महिलाएं भी मोक्ष को गयीं, उसमें कोई फर्क नहीं है। लेकिन फिर भी महिलाओं के नाम हमें पता नहीं हैं क्योंकि उनको इतना भी इंटरेस्ट नहीं है कि वे प्रगट करें, कि बताएं। यह शौक भी पुरुष को चढ़ता है, ढिंढोरा पीटने का। महिलाओं को कोई शौक नहीं है। अन्य क्षेत्रों में देखें, राजनीति में कितनी कम महिलाएं हैं। जो हैं भी, किसी कारणवश इस मुसीबत में फंस गयी हैं।

अभी परसों मैं एक चुटकुला पढ़ रहा था कि पंकज उधास, महान गज़ल गायक, बहुत ही भविष्य–द्रष्टा रहे। उनके इस गुण को कोई नहीं जानता कि उनको भविष्य का कितना ज्ञान रहा पहले ही से। बरसों पहले उन्होंने गीत गा दिया–

चांदी जैसा रंग है तेरा, सोने जैसे बाल।
एक तू ही धनवान है गोरी, बाकी सब कंगाल।

अब पच्चीस साल बाद हम लोगों को पता चला कि यह गाना सोनिया गांधी के लिए गाया था। अब जाकर भेद खुला। सोनिया गांधी को राजनीति में कोई रुचि नहीं थी। जब उन्होंने विवाह किया था राजीव गांधी से, एक पायलट की नौकरी करने वाले से विवाह किया था, एक बिल्कुल साधारण व्यक्ति से विवाह किया था। राजीव गांधी को भी कोई रुचि नहीं थी राजनीति में। परिस्थितियां ऐसी बदलीं, इंदिरा गांधी की मृत्यु हुई, देश ने जबरदस्ती राजीव गांधी को सिंहासन पर बिठा दिया।

राजीव गांधी की मृत्यु हुई, सोनिया गांधी को जबरदस्ती पार्टी अध्यक्ष बना दिया गया। ऐसा नहीं है कि उनकी कोई आंतरिक इच्छा रही हो। करीब–करीब जबरदस्ती, कोई और था ही नहीं उस योग्य जिसकी सब लोग बात मान सकें। मजबूरी में वह पद

संभालना पड़ा। अन्यथा महिलाओं को राजनीति में कुछ रस नहीं होता। यदा-कदा किसी को होगा। नेतृत्व करने में रुचि नहीं है। न वे राजनीति में नेतृत्व करेंगी न वे अध्यात्म के क्षेत्र में धर्मगुरु बनेंगी, न किसी अन्य क्षेत्र में।

सच पूछो तो पूरा इतिहास उठाकर देखो, उसमें महिलाओं का योगदान लगभग नगण्य है। उन्होंने कुछ भी खास नहीं किया। न विज्ञान के क्षेत्र में वे अग्रणी हैं, न समाज, न अर्थव्यवस्था, न किसी अन्य क्षेत्र में कुछ खास कंट्रीब्युशन है। अर्थव्यवस्था, कमाना, यह पुरुष का काम है, शॉपिंग मॉल में जाना महिलाओं का काम है! और उनका तर्क यह है कि अगर हम शॉपिंग मॉल में न जाएं, खर्च न करें तो यह निठल्ला आदमी करेगा क्या? कमा-कमा कर करोगे क्या अगर खर्च ही न हो तो?

इस प्रकार महिलाएं इंडायरेक्ट योगदान देतीं हैं। आदमी कितना ही कमा ले, कितना ही अमीर से अमीर हो, उसकी पत्नी हमेशा यह ख्याल दिलाती रहती है कि तुम कितने दरिद्र हो? क्योंकि उसके खर्च तो पूरे हो ही नहीं पाते। पति की जितनी आमदनी बढ़ती है पत्नी का खर्च उससे और डेढ़ गुना, दो गुना बढ़ जाता है। पति को हमेशा ही लगता रहता है कि मेरे पास बहुत कम है और इसलिए बेचारा और-और कोशिश करता रहता है।

वह जो कहावत है न 'हर सफल पुरुष के पीछे एक औरत का हाथ होता है', निश्चित होता है। उस कहावत को मैं पूरा कर दूं- उसके हाथ में एक कोड़ा होता है, जो पुरुष की पीठ पर पड़ता रहता है कि अरे! दीन दरिद्र, भिखमंगे कुछ तो कमाओ। और ऐसा नहीं सोचना, आप सब हंस रहे हैं, हर एक के साथ ऐसा होता है। दुनिया का जो बड़े से बड़ा अरबपति है, खरबपति है, उसकी पत्नी भी संतुष्ट नहीं होती। उसको भी लगता है कि कितना गरीब आदमी है यह। इसकी कुछ इनकम ही नहीं, कुछ खर्च ही नहीं कर पाते हम।

तो महिलाओं की रुचि नेतृत्व में नहीं है और इसलिए अध्यात्म में भी वे प्रतीक्षा करतीं हैं, इंतजार करतीं हैं। वे भक्ति भाव में डूबती हैं, समर्पित होती हैं, इस तरीके से वे प्रभु को पाती हैं और वहां भी ढिंढोरा नहीं पीटतीं कि मैंने परमात्मा को पा लिया। ये सब पुरुषों का शौक है। अरे आनंद मिल गया तो आनंद लो, मगर नहीं! दुनिया भर को बताते फिरेंगे। देखिए इनके वचन।

'बादु बिबादु काहू सिउ न कीजै।
रसना राम रसाइनु पीजै।।'

अब मिल गयी राम रसायन तो अब रसना से पिओ, मजा लो, किसलिए हल्ला-गुल्ला मचाना? जीभ के दो उपयोग हैं- या तो बोलो या खाओ-पियो। ये कह

रहे हैं 'रसना राम रसायन पीजै'। यहां 'स्वाद योग' में भी हम रसना का उपयोग राम रसायन पीने में करेंगे। दिव्य समाधि में, दिव्य सुगंध को जानेंगे, दिव्य स्वाद को जानेंगे, दिव्य खुमारी को जानेंगे। बाहर की इंद्रियों से बहुत स्वाद और सुगंध लिए, अब अतींन्द्रिय स्वाद और अतींन्द्रिय सुगंध, एक दिव्य लोक में प्रवेश करेंगे।

'अब जीअ जानि ऐसी बनि आई।
मिलउ गुपाल नीसानु बजाई।।'

कहते हैं अपने प्रियतम प्रभु को पाकर, जिंदगी में अब ऐसी बात बन गयी है... 'ऐसी बनि आई, मिलउ गुपाल नीसानु बजाई।' अब तो भीतर अनहद नाद का प्यारा संगीत बजने लगा है और अब मैं डंके की चोट पर कहता हूं कि मैं प्रभु मिलन के रस में डूब गया हूं।

'उसतति निंदा करै नरु कोई।
नामे श्रीरंगु भेटल सोई।।'

और अब दुनिया चाहे मेरी कितनी ही निंदा करे, आलोचना करे, आरोप लगाए, चाहे स्तुति करे, मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। कहते हैं नामदेव, अब तो मैं अपने उस प्यारे प्रियतम से मिल गया, रस विभोर हूं, आनंदमग्न हूं। कोई क्या कहता है? तारीफ करता है कि निंदा करता है, अब इससे मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता।

' रसना राम रसाइनु पीजै।'

मैं तो अपने भीतर रस विभोर हूं।

तो प्यारे मित्रों, स्त्रैण भाव को अपनाना। मैं जानता हूं कुछ लोगों के लिए सरल होगा, कुछ लोगों के लिए कठिन होगा। मैं स्वयं ही पुरुषचित्त व्यक्ति हूं, तभी तो साल में चार-छः महीने देश के कोने-कोने में और विदेशों में जा-जाकर प्रवचन देता रहता हूं, सत्संग करता रहता हूं, लोगों को बताता रहता हूं कि तुम गलत हो। मैं स्त्रैण प्रवृत्ति का नहीं हूं इसलिए आपको सावधान कर रहा हूं। जो भूल मैंने की वह आप न करना।

मजे से राम रसायन पीकर अपना आनंद लीजिए, भाव-विभोर हो जाइए। प्रकृति ने जो गुण हमको दिए हैं, हम उनके अनुसार जिएं, अपने-अपने गुणों को स्वीकारें। दुनिया में सब की जरूरत है। जो लोग भक्त हो सकें, समर्पण भाव में डूब सकें, वे बहुत सौभाग्यशाली हैं। उनको फिजूल के झंझटों से मुसीबत नहीं लेनी पड़ेगी। जो ऐसा न कर सकें, मजबूर हैं, उनकी बात अलग है। चलो उसके भी कुछ प्लस प्वॉइंट हैं। मान लो मुझमें पुरुष गुण न होता तो फिर मैं आकर यहां पर प्रवचन भी नहीं दे रहा होता आपको।

मां को आप देखते हैं, छः दिन में से मुश्किल से दो दिन, तीन दिन से ज्यादा वो

नहीं आने वालीं। दो–तीन दिन भी बड़ी मुश्किल से आती हैं। उन्हें कोई रस नहीं कि सिखाएं। उनको लगता है कि इतना समय खराब हुआ। शाम का मौसम, इतना सुन्दर सूरज डूब रहा था, छत पर घूमते। यहां आकर लोगों को सिखाओ। सिखाने में रस नहीं है। प्रकृति ने एक बैलेंस बनाया है, सिखाने वाले हैं, सींखने वाले हैं तभी तो जोड़ी बनेगीं। तो मैंने जो आपको समझाया उसमें ऐसा नहीं है कि मैं पुरुषों की निंदा कर रहा हूं, कि उनकी आलोचना कर रहा हूं। बता रहा हूं कि फर्क है। इस फर्क को समझना, कोई ऊंचा और नींचा नहीं है अपने–अपने ढंग हैं जींने के।

स्त्रियां बहुत अच्छी शिष्याएं हो सकतीं हैं, पुरुष के लिए शिष्य होना बहुत मुश्किल है। इसलिए जितने गुरुद्रोही होते हैं, याद रखना वे सब पुरुष हीं होते हैं। उनके लिए शिष्य होना बहुत कठिन है, वे तो मजबूरीं में हुए थे बेचारे! जहां उनको मौका मिला वे विद्रोह कर देंगे। स्त्रियों के लिए शिष्या होना, समर्पित होना, श्रद्धा भाव में डूबना बहुत सरल है।

'रसना राम रसाइनु पीजै।'

आओ, इस प्यारे शबद के साथ भक्तिभाव में डूबते हैं। जय ओशो!

मानव जीवन की महिमा

करउ बेनंती सुणहु मेरे मीता संत टहल की बेला।
ईहा खाटि चलहु हरिलाहा आगै बसनु सुहेला।। 1।।
अउध घटै दिनसु रैणा रे। मन गुर मिलि काज सवारे।। 1।। रहाउ।।
इहु संसारु बिकारु संसे महि तरिओ ब्रहमगिआनी।
जिसहि जगाइ पीआवै इहु रसु अकथ कथा तिनी जानी।। 2।।
जा कउ आए सोई बिहाझहु हरि गुर ते मनहि बसेरा।
निजघरि महलु पावहु सुख सहजे बहुरि न होइगो फेरा।। 3।।
अंतरजामी पुरख बिधाते सरधा मन की पूरे।
नानक दासु इहै सुखु मागै मो कउ करि संतन की धूरे।। 4।।

गुरु अर्जुनदेव जी की अनूठी वाणी सुनने का आज सुअवसर आया है। समस्त साधक मित्रों को नमस्कार! आप सबका स्वागत है, आत्म–ज्ञान के मार्ग पर। आओ, इस प्यारे शबद के भावार्थ का रसपान करें। गुरु साहिब कहते हैं–

'मन गुर मिलि काज सवारे।'

इस मन ने सद्गुरु से मिलकर अपने जीवन के सारे महत्त्वपूर्ण कार्य संभाल लिए।

'करउ बेनंती सुणहु मेरे मीता संत टहल की बेला।'

कहते हैं मैं विनयपूर्वक कहता हूं कि हे मेरे मित्र! सुनो, यह मनुष्य जीवन जो मिला है यह सु–अवसर है 'संत टहल की बेला'। किसी सद्गुरु के संपर्क में आओ, श्रद्धा भाव से भरो और आध्यात्मिक साधना में लवलीन हो जाओ। पशु–पंछी, वृक्ष, कीट–पतंगे, मछलियां यह नहीं कर सकते। इसलिए इस मनुष्य जीवन को एक विशिष्ट महिमा दी जा रही है। केवल मनुष्य ही ऐसा कर सकते हैं कि अपने होने से परे उस कैवल्य के अनुभव को जानें, कि उस अद्वैत के अनुभव को जानें। यह मनुष्य का मन ही है जो मन के पार जा सकता है। इसलिए यह सौभाग्य गंवाने जैसा नहीं।

अन्य सब चीजें तो सभी कर रहे हैं। अपने भोजन का इंतजाम करना, कि सुरक्षित आवास बनाना, कि बच्चे पैदा करना, परिवार को आगे बढ़ाना, ये तो पशु–पंछी सभी कर रहे हैं। पंछी भी घोंसले बना लेते हैं, पशु भी अपना भोजन तलाश लेते हैं, वृक्ष भी अपनी संतति को आगे बढ़ा लेते हैं। अगर हम यही कुछ करते रहे तो हमने मनुष्य जीवन का पूरा सदुपयोग नहीं किया। अर्जुनदेव जी ठीक कहते हैं–

'करउ बेनंती सुणहु मेरे मीता संत टहल की बेला।
ईहा खाटि चलहु हरिलाहा आगै बसनु सुहेला।।'

यह जीवन भी संवर जाएगा। सुन्दर ढंग से, आनंदपूर्वक हम जी सकेंगे। और आगे बसंत सुहेला, आगे का मार्ग भी साफ–सुथरा हो जाएगा। मृत्यु के पश्चात् भी हम शांति और आनंद में हो सकेंगे। मौत भी हमारा कुछ बिगाड़ न सकेगी क्योंकि हमने मरने के पहले ही जान लिया उस अमृत तत्व को। वह भय भी समाप्त हो जाएगा।

'अउध घटै दिनसु रैणा रे।'

कहते हैं कि हर दिन, हर घंटे हमारे जीवन की अवधि कम होती जा रही है, आयु घटती जा रही है। अक्सर हम लोग उल्टा कहते हैं। बर्थडे पर कहते हैं कि एक साल उम्र बढ़ गयी, अगर हम मृत्यु की तरफ से कांउट करें तो वास्तव में हमारी उम्र घट गयी। समझो मैं 70 साल जीने वाला था और 59 साल का हो गया तो अब केवल ग्यारह साल ही बचे। अगले साल केवल दस साल ही बचेंगे। आयु घट रही है, बढ़ नहीं रही है।

' अउध घटै दिनसु रैणा रे।'

रोज एक-एक दिन कम होता जा रहा है जिंदगी में से। मन गुरु मिल काज संवारे। हे मित्रों, गुरु से मिलकर अपने जीवन को संवार लो, एक दिन भी व्यर्थ न जाए।

' इहु संसारु बिकारु संसे महि तरिओ ब्रहमगिआनी।'

इस संसार में बड़े विकार हैं, बहुत संशय है, बड़ा मायाजाल है। कोई ब्रह्मज्ञानी जिसे कैवल्य का अनुभव हुआ है, वही दूसरों को भी तार सकता है, उनकी मदद कर सकता है। याद रखना अद्वैत समाधि में जो हमने जाना वह आत्मज्ञान है। अपने भीतर स्वयं के होने को पहचाना, एक ढंग से। कैवल्य ज्ञान ब्रह्मज्ञान है। एक तीसरा ज्ञान होता है निर्वाण का, शून्यज्ञान। यह तीसरा ऐंगल है।

तो तीन प्रकार से परमज्ञान घटित होता है। किसी-किसी साधक-साधिका को इसमें से कोई एक ज्यादा प्रगाढ़ होगा। अन्य की प्रतीति उतनी प्रगाढ़ नहीं होगी। तो हमारे व्यक्तित्व और रुझान पर निर्भर करता है। किसी को अद्वैत समाधि में, किसी को कैवल्य समाधि में और किसी को निर्वाण समाधि में खूब गहराई मिलती है। तो जिसे ब्रह्मज्ञान कहा जाता है वह कैवल्य का अनुभव है कि मैं ब्रह्म हूं, अहं ब्रह्मास्मि। आत्मज्ञान है अपने भीतर के चैतन्य से, ओंकार से, आलोक से एकात्म होना। और निर्वाण, महाशून्य, वह तीसरा ढंग है।

महावीर आत्मज्ञान की बात करते हैं, उपनिषद् के ऋषि ब्रह्मज्ञान की बात करते हैं, गौतम बुद्ध निर्वाण की बात करते हैं। ये तीन भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यक्ति हैं। परम अनुभव एक ही है परंतु उसको देखने के तीन पहलु हो सकते हैं। और उसकी अभिव्यक्ति भी तीन ढंगों से हो सकती है। अर्जुनदेव जी यहां ब्रह्मज्ञान की बात कह रहे हैं कि 'महि तरियो ब्रह्मगिआनी।' जो ब्रह्मज्ञान को उपलब्ध हो गए हैं वही दूसरों को भी तार सकते हैं, उनकी मदद कर सकते हैं।

'जिसहि जगाइ पीआवै इहु रसु अकथ कथा तिनी जानी।।'

जिन्होंने परमात्मा की अकथ कथा को जाना, उसको पूर्णता में पहचाना, जो जाग गए हैं वही दूसरों को जगा सकते हैं। यह बात बिल्कुल तर्कसंगत और समझने योग्य है। अगर सौ लोग सो रहे हैं और एक व्यक्ति भी जाग गया है तो यही व्यक्ति बाकी लोगों को भी जगा सकता है। जो स्वयं सो रहा है वह दूसरों को कैसे जगाएगा? वह तो खुद ही स्वप्न में है, निद्रा में है। उस स्वप्न में जगाने की कोशिश भी एक सपना ही होगा। वह भी नींद का हिस्सा होगा। उससे किसी को मदद न मिलेगी। जो जाग गया है वही कुछ उपाय कर सकता है।

यह भी याद रखना, यह उपाय केवल थोड़े से लोगों के लिए कारगर होगा जो

जागने के कगार पर आ ही गए हैं। यह जो जगाने वाला व्यक्ति है, सब को नहीं जगा सकता। जिनकी नींद लगभग पूरी होने को है, जिनके जागरण का समय हो ही रहा है, नींद पूरी हो चुकी है, उन्हीं को हिलाने–डुलाने से, कि उनका नाम लेकर पुकारने से, उनके चेहरे पर ठंडा पानी छिड़कने से वे जागेंगे। जिनकी अभी नींद पूरी नहीं हुई है, जो गहरी निद्रा में है, उन्हें नहीं जगाया जा सकता।

इसलिए सद्‌गुरु आते हैं, कोशिश करते हैं। बहुत–बहुत लोगों पर कोशिश करते हैं लेकिन यदा–कदा ही सफलता हासिल होती है। किन पर सफलता हासिल होगी? जिनकी नींद लगभग पूरी हो ही चुकी होगी। जो उठने ही वाले थे। सच पूछो तो कोई न भी उठाता तो भी वे थोड़ी देर बात उठ जाते। बस थोड़ा सा फर्क पड़ गया, दस–पांच मिनट पहले जाग गए, इससे ज्यादा फर्क नहीं पड़ता। आठ घंटे की रात में जो अभी कोई चार घंटे सोया है, उसको नहीं जगाया जा सकता। उसको हिलाओ–डुलाओ, वह करवट बदल कर चादर खींच लेगा और सो जाएगा और खर्राटे भरने लगेगा।

धीरज रखना होगा, जब समय परिपक्व होगा तभी जागरण हो सकता है। समय के पूर्व होना उचित भी नहीं है, होना भी नहीं चाहिए, होता भी नहीं है। चीजें नियम से ही होंगी। इसलिए इसमें कोई श्रेष्ठता और निष्कृष्टता का भी भाव मत लेना। ऐसा नहीं है कि जो जाग गए हैं वे बड़े महान हैं, वे काफी देर सो चुके हैं, उनकी नींद पूरी हो चुकी है, वे जागने के कगार पर हैं। ये वही लोग हैं, जिनका निद्राकाल लगभग पूरा हो चुका, सपने उनके हो गए पूरे, बस अब उठने ही वाले हैं। और जो गहरी नींद में सो रहे हैं इसमें कोई दोष थोपने की जरूरत नहीं है, इसमें कोई बुराई नहीं है। इनकी अच्छे से नींद पूरी हो जाए, ताकि फिर वे जाग सकें, इसी में भलाई है।।

तो कुछ अच्छा–बुरा नहीं है, कुछ महान और कुछ क्षुद्र नहीं है। जो जाग गया वह कोई श्रेष्ठ नहीं है और सो रहे हैं वे कोई निकृष्ट नहीं हैं। बस इतना ही पता चलता है कि जो जाग गए हैं उनकी नींद पूरी हो चुकी है, पहले वे भी सोए थे। और इसलिए आज जो सोए हैं, हम जानते हैं कि कभी वे भी जाग जाएंगे। समय–समय की बात है। जैसे अगर कोई कोई छोटा बच्चा है, तो हम उसे डांटते थोड़े ही हैं कि नालायक, तू इतना छोटा क्यों है? हम भी कभी छोटे बच्चे थे। फिर समय के साथ हम मेच्योर हो गए। समझ आयी, अनुभव आए, बड़े हो गए। एक प्राकृतिक घटना है, एक विकास चल रहा है इसमें कोई महानता नहीं है कि हम बड़े हो गए। जो आज छोटा बच्चा है वह भी समय आने पर युवा होगा, प्रौढ़ होगा, वृद्ध होगा। इसमें कोई खूबी नहीं है किसी की। प्रकृति का सहज नियम है। चीजें घट रहीं हैं और इसलिए सद्‌गुरु के मन में किसी के प्रति निंदा का भाव नहीं होता।

इस बात को आप सब लोग भी हृदयंगम कीजिएगा। इसमें कोई निंदा की बात नहीं है। कोई सो रहा है, खर्राटे भर रहा है, अपने स्वप्नों में लीन है, 'इट इज़ परफेक्टली फाइन', बिल्कुल ठीक हो रहा है, ऐसा ही होना चाहिए। कोई जागने के कगार पर है, यह भी बिल्कुल ठीक। कोई जाग चुका, यह भी ठीक। सहज रूप से सब चीजें हो रहीं हैं, न किसी की खूबी है इसमें, न किसी का दोष है।

महावीर ने तो पूरा हिसाब–किताब दिया है, उन्होंने अपने पिछले जन्मों को देखकर बताया कि लगभग एक लाख साल मनुष्य योनि में जीने के पश्चात् उनको परमज्ञान घट सका। कैवल्य का अनुभव हुआ और उनका अनुमान है कि ऐसा ही सब के संग होगा। लगभग इतना ही समय लगेगा।

इसका मतलब यही हुआ कि जैसे छोटा बच्चा बड़ा हो रहा है, वृद्ध होने की तरफ जा रहा है, वैसी ही प्रोसेस है। वृद्ध होने में हमको 60–70 साल लगते हैं। इस स्पीरिचुअल मेच्योरिटी में लगभग एक लाख साल लगते हैं, मनुष्य योनि में आने के पश्चात्। हम जितने लोगों को दुनिया में देख रहे हैं, सब एक साथ नहीं आए हैं, धीरे–धीरे इस विकास क्रम में कोई कभी आया, कोई कभी आया। और दो–चार हजार साल तो कोई मायने ही नहीं रखते।

किसी ने एक बार ओशो से पूछा कि आप ने कहा है कि मीराबाई ही ललिता थी। अपने पिछले जन्म में वही कृष्ण की गोपियों में से एक थीं। तो मीराबाई को पांच हजार साल लगे कृष्ण जैसे पूर्ण अवतार के संग–साथ रहने के बावजूद भी! स्वयं जागृत होने में इतना विलम्ब क्यों? ओशो ने कहा– पागल! कितनी जल्दी हो गया यह देखो। मात्र पांच हजार साल लगे, कृष्ण का संग–साथ मिल गया था इसीलिए बहुत जल्दी हो गया।

हम अपनी छोटी सी जिंदगी के हिसाब से समय की गणना करते हैं, इस हिसाब से पांच हजार साल बहुत हैं। पर इस विराट जगत के आयोजन में पांच हजार साल का क्या महत्त्व है? सूरज दस अरब साल पहले बना था। पृथ्वी एक अरब साल पहले सूरज से टूटकर अलग हुई थी। इसमें दस–पांच हजार साल का तो कोई मतलब ही नहीं है, क्षण–क्षण जैसे हैं, बस दो–चार सेकेंड जैसे। यह बात आपको खूब रिलैक्स करेगी। कोई जल्दी नहीं है। चीजें अपने समय से हो रहीं हैं। और जितनी महान घटना घटनी हो उतना ही ज्यादा वक्त लगता है।

मुझे याद है एक बार नेपाल में था। एक महिला प्रेगनेंट थी, दो महीने हुए थे, उसको बहुत उल्टियां हो रहीं थीं, खाना खाते नहीं बन रहा था, काफी तकलीफ में थी। एक दिन झुंझलाकर बोली कि कितनी परेशानी भुगतनी पड़ती है। परमात्मा ने कैसा

इंतजाम किया है कि नौ महीने बच्चे को पेट में रखो तब जाकर डेलिवरी होगी। अरे नौ दिन में, कि अठारह दिन में, क्यों नहीं ऐसा इंतजाम कर दिया?

हमारे मन में अधैर्य हो सकता है लेकिन हमारे अनुसार चीजें नहीं होंगी। हां मच्छर, मक्खी रोज सौ, डेढ़ सौ अंडे देते हैं। जितना छोटा प्राणी है, उतने ही ज्यादा। बैक्टीरिया का तो गजब है, चौबीस घंटे में एक से एक करोड़ हो जाता है। इतनी संतति हो जाती है। लेकिन जैसे–जैसे प्राणी बड़ा होता जाता है वैसे ही यह सृजन की घटना ज्यादा समय लेती है। हाथी का बच्चा करीब ढाई साल में पैदा होता है। जब पैदा होता है तो एक क्विंटल से ज्यादा वजन होता है। अब इतने बड़े बच्चे को बनाने में समय तो लगेगा न। मच्छर की तरह तो नहीं हो सकता कि रोज डेढ़ सौ हाथी पैदा हो गए। और हो जाएंगे तो रहेंगे कहां? खाएंगे–पीएंगे क्या? मुश्किल हो जाएगी।

तो प्रकृति में जो इंतजाम है सब अद्‌भुत इंतजाम है, जैसा होना चाहिए वैसा ही, परफेक्ट। मच्छर की जिंदगी पंद्रह दिन की है। हाथी सौ साल से ऊपर जिएगा। उस हिसाब से यह इंतजाम है। यह तो छोटी बात हुई, शरीर का जन्म। हम जिस आत्मज्ञान की, ब्रह्मज्ञान की बात कर रहे हैं, निश्चित ही वह तो इसकी तुलना में बहुत बड़ी चीज है। निश्चित रूप से उसमें समय भी लगेगा। तो किसी के प्रति निंदा भाव मत रखिए। कोई सोया है, वासनाओं में ग्रस्त है, कामना से भरा है, षट्‌रिपुओं से ओत–प्रोत है। इसमें नाराज मत होना, वह गहरी नींद में है।

जो लोग बॉर्डर लाइन पर हैं उनमें हम मिश्रित लक्षण पाएंगे, थोड़े–थोड़े जागे हुए हैं। कई सद्‌गुण आ गए हैं लेकिन अभी पूरे पुराने दुर्गुण भी गए नहीं। अब इस मिश्रित अवस्था से भी उठने में हजारों साल लगेंगे। पच्चीस–पचास जन्म लगेंगे। इसमें कोई जल्दबाजी नहीं हो सकती। धीरे–धीरे एक–एक जन्म में थोड़ा बहुत परिष्कार होगा, फिर अगले जन्म में थोड़ा और परिष्कार होगा। तो हमें ऐसे लोग भी मिल जाएंगे जो काफी जागरूक हैं। दूसरों को भी जगाने का कार्य कर रहे हैं। लेकिन उनके मन के संस्कार भी अभी पूरे दग्ध नहीं हुए। पूरी तरह निर्बीज नहीं हुए हैं। निर्बीज होते–होते कई जन्म लगेंगे। और याद रखना चूंकि उनके भीतर बीज मौजूद है, चाहे उनकी कामना करुणा बन गयी हो, मगर बीज तो है। करुणा भी एक प्रकार की कामना ही है। वह भी बीज है और शायद इसलिए फिर–फिर जन्म लेकर आ रहे हैं और सद्‌गुरु का कार्य कर पा रहे हैं। अगर बिल्कुल ही निर्बीज हो गए होते, कुछ भी कामना न बचती तो वे गायब ही हो गए होते महाशून्य में, कब के।

तो प्रकृति ने ऐसा इंतजाम किया है, उसके प्रति भी धन्यवाद भाव से भरना। यह भी अन्यायपूर्ण नहीं है, वरना गुरु अर्जुनदेव के बारे में और गुरु नानक देव के बारे में

हमें पता ही नहीं होता। पूर्ण, सौ प्रतिशत शुद्ध, चौबीस कैरेट गोल्ड हो जाएं तो गायब ही हो जाएं। चौबीस कैरेट गोल्ड के आभूषण नहीं बनते। ऐसी पूर्ण शुद्धता की अवस्था में फिर व्यक्ति का पुनर्जन्म नहीं होता। फिर वे मानुष देह में नहीं आते। यहां कोई मदद करने भी आता है तो कुछ अशुद्धियां लेकर ही आता है, इस बात को जानना। वह चौबीस कैरेट गोल्ड नहीं हो सकता। तो इसमें भी अस्तित्व की करुणा है। कम से कम हमें कोई जगाने तो आता है। शायद जानबूझ कर कोई अशुद्धियां बचा लेता है ताकि फिर-फिर आ सके। यह भी उसकी करुणा है। बहुत पॉजिटिव भाव से देखना।

कहते हैं अर्जुनदेव जी कोई ब्रह्मज्ञानी ही जगा सकता है, जिसने अकथ कथा जानी है और जो स्वयं जागा है।

'जा कउ आए सोई बिहाझहु हरि गुर ते मनहि बसेरा।
निजघरि महलु पावहु सुख सहजे बहुरि न होइगो फेरा।।'

कहते हैं निज घर में, अपने महल के भीतर ही परम सुख पा लिया, सहज सुख पा लिया और फिर इस आवागमन के फेरे से मुक्त हो गए।

'अंतरजामी पुरख बिधाते सरधा मन की पूरे।'

कहते हैं, हे परमात्मा एक ही प्रार्थना है आप से कि हमारे हृदय में पूर्ण श्रद्धा बनी रहे।

'नानक दासु इहै सुखु मागै मो कउ करि संतन की धूरे।।'

और आप से एक ही सुख हम मांगते हैं। संत चरण-रज मिलता रहे, सद्गुरु का सान्निाध्य मिलता रहे। जागे हुए लोगों के समीप हम बने रहे तो हम भी शीघ्र ही जाग ही जाएंगे। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, इस जन्म में नहीं अगले जन्म में। ओशो ने कहा है कि मेरे संन्यासियों में से कुछ इसी जन्म में जाग जाएंगे जिन्होंने ध्यान की यात्रा शुरू कर दी है, कुछ अगले जन्म में और लगभग सभी जिन्होंने यात्रा अभी शुरू ही की है, तीन जन्म में। मत सोचना कि बहुत लंबा समय बता रहे हैं, मात्र तीन जन्म।

इतनी जल्दी हो रहा है जिसका हिसाब नहीं। अगर हमने ध्यान की यात्रा शुरू कर दी है, तीन जन्म से ज्यादा हमें फिर-फिर नहीं आना पड़ेगा। ठीक है बीच में कभी अप्स ऐंड डाउंस आएंगे। कभी थोड़ा जागरण घटेगा, फिर कभी सो जाएंगे। फिर खर्राटे भरने लगेंगे। फिर थोड़े चेतेंगे। अगली बार थोड़ा ज्यादा चेतेंगे, फिर थोड़ा और ज्यादा। एक बार यात्रा शुरू हो गयी, तो पूरी होकर तो रहेगी। तो ओशो का यह आश्वासन कि तीन जन्म में सभी ध्यानी साधक जाग जाएंगे, बहुत बड़ा आश्वासन है।

आओ, इस प्यारे शबद के संग आंखें बंदकर के झूमना। अपने अंतस में मग्न होना। जय ओशो!
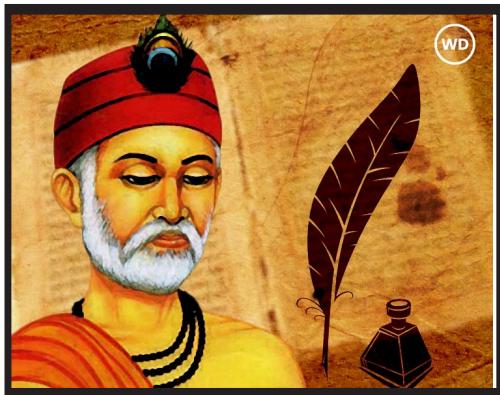
कौन भला, कौन बुरा?

अवलि अलह नूरु उपाइया कुदरित के सब बंदे।
एक नूर ते सभु जग उपजिआ कउन भले को मंदे।। 1।।
लोगा भरमि न भूलहु भाई।
खालिक खलक खलक महि खालिकु
पूरि रहिओ सरब ठांई।। 1।। रहाउ।।
माटी एक अनेक भांति करि साजी साजनहारै।
ना कछु पोच माटी के भांडे ना कछु पोच कुंभारै।। 2।।
सभ महि सचा एको सोई तिस का कीआ सभु कछु होई।
हुकमु पछानै सु एको जानै बंदा कहीए सोई।। 3।।
अलहु अलखु न जाई लखिआ गुरि गुडु दीना मीठा।
कहि कबीर मेरी संका नासी सरब निरंजनु डीठा।। 4।।

अंधेरे से उजाले की ओर जाने में उत्सुक साधक मित्रो, नमस्कार! आज के सत्र में आप सबका स्वागत है।

इस प्यारे शबद के भावार्थ का रसपान करने के पूर्व, इस बात पर ध्यान दें कि प्रकाश सूक्ष्मतम ऊर्जा है। प्राचीन भाषा में उसी को काव्यात्मक रूप से संतो ने नूर कह कर पुकारा है। उस एक प्रकाश से ही सब कुछ निर्मित है, 'एक नूर से सब जग उपजा'। विज्ञान कहेगा एक विद्युत से सब जग उपजा। कहने का अंदाज बदल गया। संत जो भाषा बोलते हैं वह ज्यादा काव्यात्मक है, हृदयपूर्ण है। विज्ञान की भाषा ज्यादा गणितपूर्ण है।

'एक नूर ते सभु जग उपजिआ कउन भले को मंदे।'

बहुत महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष कबीर साहब कहते हैं, कौन भला और कौन बुरा? जब सब कुछ उस एक से ही निर्मित है, एक ऊर्जा के ही विविध रूप हैं तो इसमें अच्छे और बुरे का लेबल लगाना हमारी नासमझी ही है। कोई अच्छा या बुरा नहीं है।

विद्युत के उदाहरण से समझें, विद्युत से हमने गीजर ऑन कर दिया तो गर्मी पैदा हो गयी और विद्युत से हमने फ्रीज को जोड़ दिया तो शीतलता पैदा हो गयी। ठंडक और गर्मी दोनों उसी एक शक्ति के रूप हैं। ठीक ऐसे ही हम जिनको शुभ और अशुभ में बांटते हैं उस बटवारे से ही हमारे भीतर विभाजन और द्वैत उत्पन्न होता है। अगर हम बाहर जगत में वैसा देखते हैं, भला और बुरा, तो याद रखना हमारे भीतर द्वैत उत्पन्न हो गया। दृश्य तो बाहर दिखाई दे रहा है किंतु असली विभाजन हमारे भीतर ही हो गया। और इसलिए कबीर साहब की कोशिश है कि हम बाहर का विभाजन समाप्त करें ताकि हमारे भीतर जो खण्ड–खण्ड बंट गए हैं, वे एक हो जाएं। कोई भीतर से शुरू करे तो बाहर खण्ड–खण्ड समाप्त हो जाएंगे। किंतु बाहर से भी शुरू करें तो भीतर के विभाजन समाप्त हो जाएंगे। द्वंद्व मिट जाएगा।

न यहां कुछ शुभ है न यहां कुछ अशुभ है। फिल्म की कहानी है, जिसमें हीरो और विलेन इन दोनों को ही कहानीकार ने बनाया। दोनों को निर्देश देनेवाला वही डायरेक्टर है। एक ही फाइनेंसर ने दोनों के लिए धन–राशि का इंतजाम किया है। पर्दे के पीछे पूरी की पूरी टीम एक है जो दोनों को सहयोग कर रही है। लेकिन पर्दे पर ये दोनों उभर कर दिखाई देंगे तो बड़े ही विपरीत नजर आएंगे।

ठीक ऐसे ही संसार का यह सारा खेल है। इस बात को खूब गहराई से हृदयंगम करना।

'एक नूर ते सभु जग उपजिआ कउन भले को मंदे।। 1।।
लोगा भरमि न भूलहु भाई।'

कबीर साहब कहते हैं भाई भ्रम में मत पड़ जाना, परदे पर जो दिखाई दे रहा है,

वह असलियत नहीं है। असलियत कुछ और है।

'खालिक खलक खलक महि खालिकु
पूरि रहिओ सरब ठांई।।'

वह स्रष्टा सृष्टि में और सृष्टि स्रष्टा में समायी हुई है। वे दोनों भी अलग-अलग नहीं है।

' माटी एक अनेक भांति करि साजी साजनहारै।
ना कछु पोच माटी के भांडे ना कछु पोच कुंभारै।।'

जैसे एक ही मिट्टी से कुम्हार अलग-अलग, भांति-भांति के बर्तन बना देता है, ढंग-ढंग के घड़े बना देता है, किंतु इन घड़ों को देखकर हम भ्रम में पड़ सकते हैं कि एक अच्छा घड़ा, एक बुरा घड़ा, एक छोटा, एक बड़ा। वे कहते हैं कि न तो इसमें बर्तनों का कुछ दोष है और न ही कुम्हार का कोई दोष है। ये उसकी ही सृजनात्मकता है कि वह विविध प्रकार की चीजें बनाता है। यह उसकी लीला है। छोटे और बड़े घड़े, सब जरूरी हैं।

अकेले बरगद ही बरगद के वृक्ष होते दुनिया में और घास-पात न होती तो सब भूखे मर जाते, सारे पशु-पक्षी, प्राणी। हमारी दृष्टि में होगा घास तुच्छ, बरगद महान। परमात्मा की दृष्टि में ऐसा नहीं है। छोटा बर्तन भी उसी ने बनाया है, बड़ा बर्तन भी उसी ने बनाया है, सब की जरूरत है।

' ना कछु पोच माटी के भांडे ना कछु पोच कुंभारै।।
सभ महि सचा एको सोई तिस का कीआ सभु कछु होई।'

उस एक के द्वारा ही सब कुछ हो रहा है।

' हुकमु पछानै सु एको जानै बंदा कहीए सोई।'

जो उस एक के हुक्म को पहचानता है, वही सच्चा भक्त है।

'बंदा कहिए सोई।'

वही है असली बंदा खुदा का, जिसने एक को पहचान लिया।

' अलहु अलखु न जाई लखिआ गुरि गुडु दीना मीठा।
कहि कबीर मेरी संका नासी सरब निरंजनु डीठा।।'

कहते हैं वह परमात्मा जो देखा नहीं जा सकता, वह मैंने गुरुकृपा से देखा, उसका स्वाद लिया। और कहते हैं कबीर- मेरी सारी शंकाएं नष्ट हो गईं। अब सर्वत्र मुझे वही निरंजन दिखाई देता है।

ऊर्जा समाधि के सत्र में दो शब्द समझने जैसे हैं। सामान्य भाषा में हम जिनको ऊर्जा और शक्ति कहते हैं, अंग्रेजी में एनर्जी और पावर। पावर का अर्थ है ऐप्लाइड एनर्जी और एनर्जी का अर्थ है अनयूज़्ड पावर। तकनीकी भाषा में भी शक्ति शब्द का तब

प्रयोग करते हैं, जब ऊर्जा का उपयोग किया जाता है। जब तक उसका उपयोग नहीं हो रहा है वह अपने प्योर फॉर्म, शुद्ध फॉर्म में है, तब तक वह ऊर्जा है, एनर्जी है। और जैसे ही उसका उपयोग शुरू हुआ वह शक्ति बनी।

तो चैतन्य अपने शुद्धतम रूप में एनर्जी है। अभी उसका कोई उपयोग नहीं हो रहा है। लेकिन जैसे ही वह हमारे हृदय की भावनाओं को चलाने में काम आने लगी वह शक्ति हो गयी। मन को चलाने लगी, मन की शक्ति हो गयी, मनोबल। अवचेतन मन की शक्ति, 'दि पावर ऑफ अनकॉन्शस माइंड'। कॉन्शस माइंड में विचार की शक्ति हो गयी, हृदय में भाव शक्ति हो गयी। शरीर के तल पर आकर शरीर का बल दैहिक बल, फिजिकल पावर हो गयी। मस्कुलर पावर हो गयी।

जैसे-जैसे बाहर की ओर प्रवाहमान होने पर यह 'ग्रॉस फॉर्म' में आती जाती है, वैसे-वैसे स्थूल रूप उत्पन्न होते जाते हैं। केंद्र में वह केवल एनर्जी है और हमारी कोशिश, ऊर्जा समाधि के प्रयोगों में, यही है कि हम बिल्कुल केंद्र में पहुंच जाएं जहां ऊर्जा अपने शुद्धतम रूप में मौजूद है। 'चौबीस कैरेट गोल्ड', अभी इसका उपयोग नहीं हुआ। जैसे ही उपयोग शुरू होगा कुछ अशुद्धि मिलना शुरू हो जाएगी। इस शुद्ध सोने के आभूषण नहीं बन सकते। कुछ चांदी मिलानी होगी, कुछ तांबा मिलाना होगा 22 कैरेट। अगर और मजबूत आभूषण बनाने हैं तो बीस कैरेट तक आना होगा। शुद्ध सोने के आभूषण नहीं बन सकते, उसका उपयोग नहीं हो सकता। वे किसी काम के नहीं।

तो शक्ति और ऊर्जा शब्द का हम बार-बार यहां इस्तेमाल करेंगे, अलग-अलग अर्थों में, तो ये दो भावार्थ आप विशेष रूप से ख्याल रखिएगा, एनर्जी और पावर; यूज्ड, ऐप्लाइड अथवा अनयूज्ड, अनऐप्लाइड। जब कबीर कहते हैं 'सरब निरंजनु डीठा', सभी में वह निरंजन। यहां पर निरंजन, शुद्धतम रूप एनर्जी, ऊर्जा जैसे ही उपयोग होगा चाहे भाव-शक्ति हो, चाहे मनोबल हो, चाहे दैहिक बल, अशुद्धि आने लगेगी। ऊर्जा अपने शुद्ध रूप में नहीं रह जाएगी। वैसा संभव ही नहीं है। और इस बात को स्वीकार लेना, ऐसा ही प्रकृति का नियम है।

हम थोड़ी देर के लिए अंतरतम में डूब सकते हैं, उस शुद्धतम को जानने के लिए लेकिन संसार में जैसे ही हम तन का, मन का, हृदय का उपयोग करेंगे हम उसके अशुद्ध रूपों का ही उपयोग करेंगे। उपयोग करते से ही वह निरंजन फिर निरंजन नहीं रह जाता। किंतु जानने के लिए हम उस निरंजन में स्थित हो सकते हैं। संसार में आते ही थोड़ी अशुद्धि मिल ही जाएगी।

आओ, इस प्यारे शबद के साथ हम उत्सव मनाएं। नाचें, झूमें, गाएं। जय ओशो!

साधो, गोबिंद के गुण गाओ

साधो गोबिंद के गुण गावउ।
मानस जनमु अमोलकु पाइओ बिरथा काहि गवावउ।। 1।। रहाउ।।
पतित पुनीत दीन बंध हरि सरनि ताहि तुम आवउ।।
गज को त्रासु मिटिओ जिह सिमरत तुम काहे बिसरावउ।। 1।।
तजि अभिमान मोह माइआ फुनि भजन राम चितु लावउ।।
नानक कहत मुकति पंथ इहु गुरमुखि होइ तुम पावउ।। 2।।

सभी साधक–साधिकाओं को नमस्कार!

आज के साधना–सत्र में आपका बहुत–बहुत स्वागत है। याद रखना, जो साधना करे वही साधु है। आज हम सुनेंगे गुरु तेग बहादुर जी की अमृत वाणी। वे कहते हैं–

'साधो गोबिंद के गुण गावउ।'

हे प्रभु के खोजियो! गोविंद के गुणों पर ध्यान दो। गुण का अर्थ है– जिसकी सकारात्मक सत्ता है। और हम जिन्हें अवगुण कहते हैं, उनका कोई अस्तित्व नहीं है। प्रकाश और अंधकार के उदाहरण से खूब अच्छे से समझ सकते हैं, प्रकाश वस्तुतः है। अंधकार वास्तव में कुछ नहीं है, वह प्रकाश की अनुपस्थिति मात्र है। ठीक इसी प्रकार जिन्हें हम गुण और अवगुण कहते हैं। गुण की तो अपनी सत्ता है, अवगुण केवल गुणों का अभाव है। वह स्वयं अपने आप में कुछ नहीं है, और जो स्वयं अपने आप में कुछ नहीं है, उसके साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता।

सद्गुरु ओशो अपने प्रवचनों में अनेक जगह कहते हैं, क्या तुम अंधकार को मिटा सकते हो? किसी कमरे में अंधकार है, क्या धक्के मार कर बाहर निकाल सकते हो? कि तलवार से उसको काट सकते हो, कि बंदूक चला कर नष्ट कर सकते हो, कि पहलवानों को, गुण्डों को बुला कर पिटवा सकते हो अंधकार को? अंधकार के साथ अगर हमने कुछ भी किया तो हमारे ही हाथ पैर में चोट लगेगी, अंधकार का कुछ भी न बिगड़ेगा। और तब हम बड़े अजीब से निर्णय पर पहुंच जाते हैं, जो की बिल्कुल गलत है। लेकिन वही हमें उस समय तर्कसंगत लगता है और वह जजमेंट यह है कि अंधकार बहुत मजबूत है, हम कमजोर हैं। हमने इतनी मेहनत की, हम अंधेरे का कुछ ना बिगाड़ सके। उल्टे हमें ही चोटें लग गईं, हम ही हार गए, परास्त हो गए। मगर अंधेरा टस से मस न हुआ। इसका मतलब अंधेरा बहुत शक्तिशाली है। हम बिल्कुल दुर्बल हैं, हम हार गए।

हमारा यह निष्कर्ष भी सरासर गलत है। अंधेरा कुछ है ही नहीं, यहां आसक्त होने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता था, भूल हमारी थी। हम उससे भिड़ रहे थे जो है ही नहीं और इसलिए हम हार गए। ठीक इसी प्रकार बहुत से साधक–साधिकाएं अध्यात्म के मार्ग पर चलने का निर्णय लेते हैं वे इसी प्रकार की भूलों में उलझ जाते हैं। अवगुणों के साथ लड़ाई में पड़ जाते हैं। उन से संघर्ष ले लेते हैं, कोई सोच रहा है क्रोध को मिटा दें, कोई कह रहा है लोभ को कैसे नष्ट करें? कामना से कैसे मुक्त हों? वासना को कैसे समाप्त कर दें? ईर्ष्या से छुटकारा कैसे हो? शत्रुता का भाव कैसे नष्ट हो? कुल मिलाकर संक्षेप में अगर कहें, तो वह है अहंकार पर कैसे विजय प्राप्त करें?

अहंकार अंधकार के समान है। उस पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकती। कुछ हो

तो विजय प्राप्त कर सको। अध्यात्म के मार्ग पर चलने वाले बहुतेरे लोग इसी भूल में पड़ते हैं, वे इन चीजों से संघर्ष मोल ले लेते हैं, दुश्मनी मोल ले लेते हैं। करुणा नहीं है, इसलिए क्रोध है। अगर कुछ करना है तो करुणा के संग करना होगा। प्रकाश जलाना होगा तो अंधकार मिट जाएगा।

जो कुछ भी करना है प्रकाश के संग करना होगा। प्रेम नहीं है इसलिए हिंसा है, मैत्रीभाव नहीं हैं इसलिए शत्रुता है, आत्मसम्मान नहीं है इसलिए ईर्ष्या है, तुलना है, प्रतियोगिता है। अगर कुछ करना है तो आत्मसम्मान जगाना है। ईर्ष्या ढूंढ़े से भी नहीं मिलेगी। अगर कुछ करना है तो अपने हृदय में प्रेम की भावना पैदा करनी है, सद्भावना, मंगल–भावना से भरना है। तब हम पाएंगे जो अमंगलकारी भावनाएं थीं, जिनको हम दुर्भावनाएं कह रहे हैं, वे सब गायब हो गईं।

दीपक जलाया, फिर अंधेरा कहीं ढूंढ़ने से भी नहीं मिलेगा। अंधेरा था ही नहीं तो जाएगा कहां? इस बात को खूब अच्छे से ख्याल रखना जो गुण हैं उनकी विधायक सत्ता है। इसलिए आगे जो कुछ भी करना है उन्हीं के संग करना है। साधो गोविंद के गुण गाओ। अवगुणों पर ध्यान ना दो। अवगुण का अर्थ है गुण का अभाव। न अपने भीतर देखना, न दूसरों के भीतर, न सारे जगत में, न किन्हीं घटनाओं में, न व्यक्तियों में, कहीं भी नहीं। वे गुणों का अभाव हैं। वे ध्यान देने योग्य नहीं हैं।

अपनी सारी ऊर्जा को गुणों में उड़ेलना, सींचना, ताकि गुण विकसित हों। वे बीज रूप में मौजूद हैं। उनको अंकुरित करना होगा, पौधा बनाना होगा, वृक्ष बनाना होगा, यह है असली साधना। गुणों का परिष्कार, अवगुणों से लड़ाई नहीं। उस भूल में जो भी पड़ा वह बुरी तरह परास्त हुआ। इसका निष्कर्ष एक दिन यही निकलता है कि मैं न जीत सकूंगा, ये अवगुण बहुत प्रबल हैं। मेरा जीवन कम है, समय कम है, ऊर्जा कम है, समझ कम है इनसे नहीं जीत सकता। यही निष्कर्ष साथ में आएगा अगर शुरुआत में ही गलती हो गयी।

तो साधना के दो रूप देखने में आते हैं, एक नकारात्मक साधना जो कहते हैं– हम अहिंसा साधेंगे, अपरिगृह साधेंगे, अचौर्य व्रत ले लेंगे, यह नहीं करेंगे, वह नहीं करेंगे, बस शुरुआत से ही गलती हो गयी। जो लोग भी आचरण साधने में लगते हैं, उनसे यही गलती हो जाती है। नकारात्मक चीजों से लड़ाई शुरू। दूसरी साधना प्रचलित नहीं है ज्यादा, लेकिन वही सच पूछो तो असली साधना है। और वह बड़ी सरल भी है।

ये जो पहले वाली साधना का रूप मैंने कहा जो कि अत्यंत कठिन है, उसको तो साधना कहना ही नहीं चाहिए। ऐक्चुअली वह साधना है ही नहीं, वह तो साधना की

भ्रांति मात्र है। वास्तविक साधना बड़ी सरल और सुगम है। अपने भीतर टटोलो, जो भी गुण मौजूद हैं, चलो छोटे रूप में सही, बीज रूप में सही, हम इन पर ध्यान दें और ध्यान जल–सिंचन के समान है। जिन बीजों पर हमारा ध्यान जाएगा वे अंकुरित होने लगेंगे, एक दिन पुष्पित, पल्लवित हो जाएंगे। माना छोटा सा झरना है अभी, लेकिन आगे चलकर बड़ी नदी बन सकती है।

आप जानते हैं न गंगोत्री से गंगा निकलती है। विश्वास नहीं आता, वहां पर देखो कि छोटे से गोमुख से निकल रही है पतली सी धार जो बंगाल की खाड़ी तक पहुंचते–पहुंचते कितना बड़ा रूप ले लेती है? लगभग सागर जैसी हो जाएगी इतनी सी धार! भरोसा नहीं आता है। आमेजन नदी दुनिया की सबसे बड़ी नदी है और उसके मूल उद्‌गम से एक मिनट में केवल तीन बूंद पानी टपकता है, बस। हर बीस सेकेण्ड में एक बूंद। हमारे लिए अकल्पनीय है कि यह दुनिया की सबसे बड़ी नदी बनेगी। लेकिन बन जाती है।

ठीक ऐसे ही चाहे हमारे भीतर सद्‌गुण अत्यंत सूक्ष्म मात्रा में हों, बूंद–बूंद ही सही, कभी–कभार ही टपक रहे हों लेकिन याद रखना अगर हमने उन पर ध्यान दिया, वे विकसित होने लगेंगे, बढ़ने लगेंगे और बूंदें आने लगेंगी और धीरे–धीरे धार बन जाएगी और एक दिन विराट नदी भी बन जाएगी। फिर एक दिन सागर से, अपनी मंजिल से जा मिलेगी।

‘ साधो गोबिंद के गुण गावउ।
मानस जनमु अमोलकु पाइओ बिरथा काहि गवावउ।।’

तो बिरथा गंवाने का अर्थ अवगुणों के साथ संघर्ष में पड़ना, वो बिरथा गंवाने की विधि है।

‘ मानस जनमु अमोलकु पाइओ’

यह अमूल्य अवसर मिला है, सूझ–बूझ और बुद्धि मिली है। अन्य पशु–पक्षियों के पास ऐसा नहीं है। उनके पास केवल ‘इन्स्टिंक्ट’ है, इंटेलिजेन्स नहीं। मनुष्य की खूबी है कि अगर वह थोड़ा सा श्रम करे, थोड़ी सी मेहनत करे, अपने विचारों के संग चिंतन–मनन, मंथन करे, अनुभवों के संग चीजों को तौले, कसौटी पर कसे, जल्दी ही विवेक उत्पन्न हो जाता है। यह अमूल्य अवसर है। ऐसा अन्य कोई पशु–पक्षी न कर पाएगा। मनुष्यों में ही कितने कम लोग कर पाते हैं। अपने अनुभवों के आधार पर चिंतन–मनन करते रहो, जल्दी ही विवेक पैदा हो जाता है, अनुभवों के आधार पर। फिलॉसफी में मत उलझना, अनुभवों के आधार पर कसना।

समझो आप क्रोध से लड़ने की कई बार कोशिश कर चुके, हर बार हारे। अब इस

अनुभव से कुछ सबक ग्रहण करो तो विवेक पैदा हो जाएगा। अगर तुम किताबों में, फिलॉसफी में गए तो बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाएगी। वे तुम्हीं को अपराधी बता देंगे कि तुम पिछले जन्म के पापी हो। किए होंगे कुछ दुष्कर्म, कर्मबंध हैं तुम्हारे, क्रोध करना ही पड़ेगा, मजबूरी है तुम्हारी। पता नहीं कैसे-कैसे सिद्धांत हैं। ग्रह नक्षत्रों की दशा ऐसी है इसलिए गुस्से में आ जाते हो। कोई ज्योतिषी तुम्हें अपने पत्थर बेच लेगा, कोई अंगूठी पहन लो तो क्रोध शांत हो जाएगा।

न जाने क्या-क्या गोरखधंधा चलता रहेगा? अगर तुम अपने अनुभव पर कस के न देखोगे, चारों तरफ 'एक्सप्लॉएटर्स' की भीड़ है, सांत्वना देने वालों की भीड़ है। मनोवैज्ञानिक समझा देंगे कि तुम क्या कर सकते हो? तुम्हारे माता-पिता भी क्रोधी थे, उन्हीं के जीन्स हैं, यह तो जेनेटिक प्रॉब्लम है। बात खतम हो गई। माता-पिता तो बदल नहीं सकते। और उन बेचारों का भी क्या दोष, उनके माता-पिता वैसे थे। तोश्रृंखला जहां से शुरू हुई थीं वे लोग तो कब के विदा हो चुके। अब तो कुछ किया ही नहीं जा सकता। अब तो केवल मन मसोस कर रह जाओ कि आप ऐसे हैं और ऐसे ही रहना है और कुछ किया नहीं जा सकता। मनोवैज्ञानिकों का एक दूसरा स्कूल है। वे कहते हैं कि पूर्वजों ने, माता-पिता ने जैसा पाला-पोसा, बड़ा किया, बचपन के संस्कार हैं, उनकी वजह से तो तुम ऐसे हो। बचपन तो गुजर चुका, अब तो कुछ किया नहीं जा सकता। जो संस्कार पड़ चुके सो पड़ चुके।

ईसाई कह रहे हैं कि 'अदम' व 'ईव' ने ईश्वर के खिलाफ अवज्ञा की थी, पूरी मनुष्य जाति उसका फल भुगत रही है। लो भुगतो, अब तो कोई उपाय ही नहीं रहा। अब 'अदम' व 'ईव' ने गलती की थी, उनकी संतान को सजा मिल रही है। और मिलती ही चली जा रही है। छः हजार साल हो गए ईसाईयों के हिसाब से सृष्टि का निर्माण हुए। कितनी पीढ़ियां गुजर गईं, बीस साल में एक पीढ़ी गुजर जाती है। हजारों पीढ़ियां गुजर गईं अभी तक, मगर सजा खत्म ही नहीं हुई, कैसा दण्ड है यह? गलती किसी ने की, सजा कोई पा रहा है।

न जाने कैसे-कैसे सिद्धांत हैं, इन सबमें नहीं उलझना। अपने अनुभवों और तथ्यों पर गौर करना और तुम एक बात क्लिअर देख लोगे कि क्रोध से लड़-लड़ कर तुम नहीं जीत सके। और इसी प्रकार अन्य अवगुणों को टटोलना, स्पष्ट हो जाएगा कि यह भी संभव नहीं है। और दूसरी बात भी एकदम से क्लिअर हो जाएगी कि फिर करने योग्य क्या है? हम अपने गुणों का विकास करें। छोड़ें आचरण की चिंता, जागरण की चिंता करें। हमारे भीतर जागृति है, चेतना है। चलो छोटी मात्रा में सही, बहुत साफ-सुथरी नहीं, धुंधली-धुंधली सही, मगर है तो। हम इसको थोड़ा सा और

निखारें।

हमारे हृदय में प्रेम का स्वर है। हां, इसके साथ कुछ बेसुरी आवाजें भी मिली हैं। चलो इसे परिष्कृत करें, इस मीठे स्वर को पहचानें, इसको बचाएं, इसको बढ़ाएं। इस बांसुरी को और अच्छे से बजाना सीखें। थोड़ी बहुत करुणा के कण हैं, चलो इनको बीनते हैं, कणाद मुनि की तरह। कण–कण बीन कर बड़ा भण्डार इकट्ठा हो जाएगा। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं कह सकता है कि उसके भीतर प्रेम है ही नहीं, कि करुणा है ही नहीं, कि सद्भावना है ही नहीं, थोड़ा–बहुत तो सबके भीतर है। छोटी मात्रा में ही सही, चलो ठीक है, हम उसी पर ध्यान देते हैं, उसी को संवारने में लगते हैं।

जब हम नकारात्मक चीजों की परवाह नहीं करते, तब हम पाएंगे कि हमने अपने अमूल्य गुणों का सदुपयोग करना शुरू कर दिया। और जैसे–जैसे उनका सदुपयोग करते हैं, वृद्धि होती है उनकी। बढ़ते हैं वे। इसको ऐसे समझो आपको गणित करना है और आपको आता है, चलो थोड़ा बहुत ही सही। आप किसी बच्चे को समझा दोगे, किसी का होमवर्क करा दोगे। उससे क्या होगा? ...आपका गणित और अच्छा होने लगेगा। आप जितना अधिक प्रयोग करोगे अपनी गणितीय प्रतिभा का, आपकी छोटी–मोटी बुद्धि, उपयोग करते–करते, धीरे–धीरे विकसित होने लगेगी।

एक और स्थूल उदाहरण से समझें– हमारे हाथ–पैरों में मस्कुलर पावर है। अगर हम इसका उपयोग करेंगे, व्यायाम करेंगे, चलेंगे–फिरेंगे, वजन उठाएंगे, कुछ खेलेंगे, तो हम पाएंगे कि हमारी मसल्स और मजबूत हो गयीं। अगले हफ्ते हम इससे भी और ज्यादा वजन उठा पाएंगे, ज्यादा चल पाएंगे। उपयोग करने से हमारी मांसपेशियां मजबूत हो गयीं। उपयोग नहीं करेंगे तो जो है वह भी खराब होता जाएगा।

ठीक ऐसी ही क्षमता हमारे हृदय की भी है। प्रेमल होना, करुणामय होना, सद्भाव में होना, आनन्द भाव में, अहोभाव में होना, शांति में होना, अगर हम इन पर ध्यान देंगे, इनको विकसित करने का प्रयास करेंगे, तो ये बढ़ने लगेंगे। ध्यान देने मात्र से बढ़ने लगेंगे। आप शांति के क्षणों का स्मरण करें और आप पाएंगे कि वही क्षण फिर से आ गया, अभी तुरंत। वह अतीत की बात न रही। आप याद तो कर रहे थे किसी घटना को जब आप शांत हो गए थे। लेकिन उसको स्मरण करते ही वह फिर से अभी हो जाएगा, और आप शांत हो जाएंगे। आप अपने प्रियजनों के संग थे, बड़ी पुलक महसूस कर रहे थे, आप उसको याद भर करें और आप पाएंगे, वही प्रेमल भावना, वही पुलक, वही ऊर्जा, अभी व्याप्त हो गयी, तुरन्त विकसित होने लगी। और जो व्यक्ति इस प्रकार धीरे–धीरे सद्गुणों से अपने जीवन को भरने लगा, नकारात्मक चीजें गायब होने लगीं, उनके लिए जगह ही नहीं बची। उनके लिए अवसर ही नहीं। कुल चौबीस

घंटे तो हैं हमारे पास और हमने उसे सकारात्मक चीजों से भर लिया। हमने अपने अमूल्य जीवन का, अपने अमूल्य गुणों का उपयोग कर लिया, अपने जीवन को सार्थक कर लिया।

'बिरथा काहि गवावउ।'

क्यों व्यर्थ की चीजों में गंवाते हो? कोई तीस–पैंतीस साल हो गए मैंने अखबार नहीं पढ़ा कभी, टी.वी. न्यूज नहीं देखता। मुझे क्या करना? न अन्य कोई पत्र–पत्रिका पढ़ता। मुझको क्या लेना–देना? पढ़ना तो अपने काम की चींज जिससे हमारा डायरेक्ट कन्सर्न हो। अपने समय का सदुपयोग करेंगे। खाली बैठे हैं तो ठींक है, निर्विचार ही बैठेंगे। काहे के लिए टी.वी. देखना? क्यों यहां–वहां की किताबें पढ़ना? सद्‌गुरु के वचन पढ़ेंगे, सुनना ही है तो उनकी वाणी सुनेंगे। मैं अपना मोबाईल इसलिए ऑफ ही रखता हूं। असद्‌गुरुओं की वाणी काहे के लिए सुनना? ये बेकार की बकवास होगी। क्यों अपना समय गंवाएं? हमारे पास क्या इतना समय है कि यहां–वहां की बातों में, निंदा, आलोचना में, दुनिया भर के दुख सुन–सुन कर उसे गंवाएं। पहले मैं लोगों से अलग से मिला करता था अब मैंने बिल्कुल बंद कर दिया है। अलग से मिलने जो भी आते हैं वे अपना रोना सुनाने आते हैं। हमारा दिमाग खराब है, आप दुख पैदा करो इतनी मेहनत से और फिर हमें सुना कर जाओ। फिर अगली बार वही के वही लोग हैं, फिर नए जंजाल पैदा करके आ जाते हैं।

गिने–चुने लोग हैं, उनके जीवन में कुछ न कुछ उपद्रव ही होता रहता है। इसके करता–धरता वे खुद ही हैं। हम क्यों सुने? हंसी–खुशी की बात हो तो जरूर सुनेंगे, चुटकुला जरूर सुनेंगे, गाना जरूर सुनेंगे। हमें किसी का दुख नहीं सुनना। अपना–अपना भुगतो, आपने क्रिएट किया है, आपको बड़ा रस होगा, लो मजा उसको डिस्ट्रीब्यूट क्यों करना यहां–वहां? और जो लेने तैयार हों, उनको दो। अपन उसके ग्राहक नहीं, हमको नहीं चाहिए।

' मानस जनमु अमोलकु पाइओ बिरथा काहि गवावउ।
पतित पुनीत दीन बंध हरि सरनि ताहि तुम आवउ।।'

पतित को भी पुनीत कर देने वाले उस दीनबंधु चैतन्य रूपी हरि की शरण में आओ।

'गज को त्रासु मिटिओ जिह सिमरत तुम काहे बिसरावउ।'

उस गज वाली कहानी की उपमा दे कर कह रहे हैं– स्मरण मात्र से उसका संताप मिट गया। तुम भी स्मरण करो। किसका स्मरण करो? गोविंद के गुणों का।

याद रखना गोविंद कोई व्यक्ति नहीं, गोविंद यानी जीवन, गोविंद यानी अस्तित्व, गोविंद यानी सब कुछ, उसमें हमारा होना भी शामिल है।

'साधो गोबिंद के गुण गावउ।
तजि अभिमान मोह माइआ फुनि भजन राम चितु लावउ।'

अपने चित्त को प्रभु के गुणों मे लगाओ। माया, मोह, अभिमान, ये सब झूठी बातें हैं। इनको जाने भी दो। ये इस योग्य भी नहीं कि इस पर तुम ध्यान भी दो। कई लोग पूछते हैं कि अहंकार को कैसे मिटाएं? ऐसे महान कार्य में मत लगो। यह इस योग्य भी नहीं है कि तुम इस पर ध्यान भी दो। हां तुम अपनी चैतन्य सत्ता को जानो, असली 'मैं' को पहचानो। इस नकली 'मैं' के चक्कर में ना पड़ो, कि अहंकार को मिटाएंगे। वह नहीं मिटने वाला और मिटाने की कोशिश में पड़े कि तुम बुरी तरह से उलझ जाओगे। वह पीछे से घूम–फिर कर फिर आ जाएगा।

ओशो के प्रवचन में एक बहुत जोरदार लतीफा आता है। एक शहर में चार चर्च थे, चारों का बड़ा नाम था। एक बार सर्वधर्म सम्मेलन में सभी पादरी इकट्ठे हुए। सम्मेलन के पश्चात् भोजन के समय वे अपनी–अपनी डींगे हांक रहे थे। एक पादरी ने कहा कि आपलोग तो जानते ही हैं, हमारा चर्च मनन, चिंतन, वाद–विवाद, तर्क इत्यादि में बहुत कुशल है। हमने इतनी किताबें छपवाई हैं, ये किया है, वो किया है, हमारे विद्वान जगह–जगह फैले हुए हैं। अन्य तीन को मानना पड़ा कि यह बात सच थी।

दूसरे चर्च के पादरी ने कहा कि देखिए अध्ययन, मनन में तो हम इतना जोर नहीं दे पाते लेकिन सेवा के मामले में हमारा कोई मुकाबला नहीं, उसमें हम नम्बर एक हैं। और उसने गिना दिया कि हमने क्या–क्या सेवा की है, इस शहर में, इस शहर के बाहर, विश्व स्तर पर बड़ी इंटरनेशनल संस्थाएं थीं उसकी। कहां स्कूल–कॉलेज खोले? कहां अस्पतालें खोलीं? कहां गरीबों को नौकरी दिलवाई? सब लोगों ने उसकी बात सुनी, सब सहमत हुए, बात सही थी।

तीसरे की तरफ उन्होंने देखा। उसने कहा कि हमारी संस्था न तो ज्ञान में और न ही सेवा में आगे है, किन्तु तपस्या में हमारा कोई मुकाबला नहीं। जैसे तपस्वी साधु हमारे मठ में पैदा हुए हैं, दुनिया में आज तक नहीं हुए और उसने गिना दी पूरी लिस्ट कैसी–कैसी तपस्याएं की जाती हैं उसके वहां? निश्चित रूप से उस क्षेत्र में वह बिल्कुल आगे था।

अब बचा चौथा पादरी, वे तीनों उसकी तरफ देख रहे थे कि वह क्या कहेगा? क्योंकि वास्तव में बिल्कुल ही निठ्ले थे वह, उस चर्च के लोग कुछ भी नहीं करते थे।

लेकिन उसने सीना फुला कर कहा कि देखिए न तो हम सेवा में, न ज्ञान में, और न ही तपस्या में आगे हैं। किन्तु हमने तो वह सूत्र पकड़ा है जो ईश्वर पुत्र ने स्वयं बताया था। उन्होंने कहा था कि धन्य हैं वे जो विनम्र हैं, प्रभु के राज में वे ही प्रथम होंगे। तो विनम्रता में हमारा मुकाबला नहीं। वीं आर दि मोस्ट हंबल पीपल, नंबर वन।

यहीं तो अहंकार है नम्बर वन, विनम्रता में भी सबसे आगे। अगर तुमने विनम्रता साधने की कोशिश की और निरअहंकारी होने की कोशिश की तो यही होगा। घूम फिर कर तुम यहीं कहोगे कि मैं नम्बर वन हूं विनम्रता में और कोई दूसरा आ जाए और कहे कि नम्बर वन तो हम हैं, तो मारपीट हो जाएगी। अहंकार पीछे के द्वार से आ गया, सावधान!

‘ तजि अभिमान मोह माइआ’

यहां तज का मतलब ये नहीं है कि हम जानबूझ कर त्याग कर देंगे। तज का अर्थ है वे छूट जाएंगे। गुणों पर ध्यान दो, तुम्हारे भीतर चैतन्य एक गुण है, उस पर ध्यान दो। अहंकार से मत लड़ो, आत्मसत्ता को उजागर करो तब मोह, माया, अभिमान छूट जाएंगे।

कबीरदास कहते हैं ना कि जब से शबद निरंतर में मन लगा है, मलिन वासना त्यागी। वहां उनका तात्पर्य है कि मलिन वासना मुझे त्याग कर चली गयी। यह नहीं कह रहे हैं कि मैंने छोड़ी। उसने मुझे छोड़ दिया। जैसे कोई दीपक जला ले और कहे की अंधकार छोड़ कर चला गया। कुछ ऐसा होता है।

‘ नानक कहत मुकति पंथ इहु’

कहते हैं यही है मुक्ति का पंथ। ‘गुरमुखि होइ तुम पावउ’ कोई शिष्य बनकर ही इस बात को अपने सद्‌गुरु से समझ पाता है और अपने जीवन में उतार पाता है।

आओ, अब गुरु तेग बहादुर जी के इस प्यारे शबद के संग उत्सव मनाएं। शिष्यभाव में डूबें। जय ओशो!
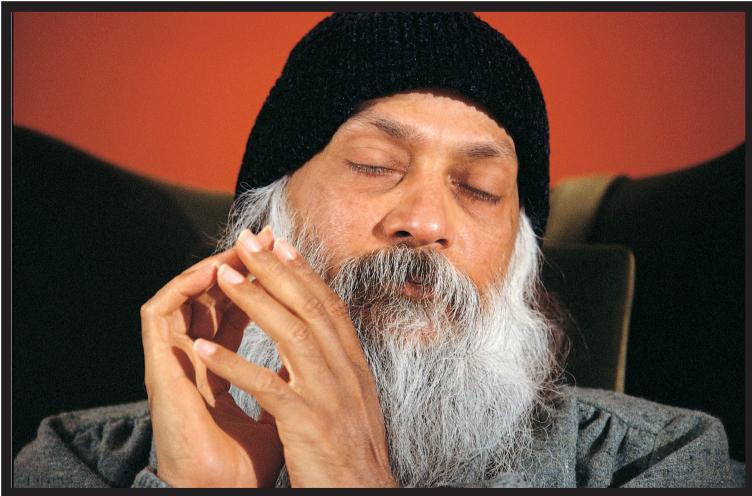
प्रियतम से मिलन कैसे?

सेज एक एको प्रभ ठाकुरु।
गुरमुखि हरि रावे सुख सागरु।। 1।।
मैं प्रभ मिलण प्रेम मनि आसा।
गुरु पूरा मेलावै मेरा प्रीतमु हउ वारि वारि आपणे
गुरु कउ जासा।। 1।। रहाउ।।
मैं अवगुण भरपूरि सरीरे।
हउ किउ करि मिला अपणे प्रीतम पूरे।। 2।।
जिनि गुणवंती मेरा प्रीतमु पाइआ।
से मैं गुण नाही हउ किउ मिला मेरी माइआ।। 3।।
हउ करि करि थाका उपाव बहुतेरे।
नानक गरीब राखहु हरि मेरे।। 4।।

आज के इस सत्र में सभी जिज्ञासु मित्रों का स्वागत है।

इसके पहले कि हम शबद की व्याख्या करें, आपको पुनः स्मरण दिला दूं, कल की शबद व्याख्या में जो चर्चा की थीं कि विधायक सद्गुणों पर ध्यान देना। जिन्हें हम अवगुण कहते हैं, वे अभाव हैं, उनमें कभी मत उलझना। वे ध्यान देने योग्य भी नहीं, लड़ने की तो बात अलग, वे उपेक्षनीय है। उनकी उपेक्षा करना सीखना।

भगवान बुद्ध ने अपने उपदेशों में उपेक्षा शब्द का बहुत इस्तेमाल किया है... इन्डिफरेन्स, भूल ही जाओ। आज रामदास जी की वाणी सुनकर आपको पुनः स्पष्ट हो जाएगा कि वह बात कितनी सटीक है। एक बात और ख्याल रखियेगा, संतों की वाणी जब हम सुनते हैं, जो भी शास्त्रों में, ग्रंथों में उल्लेख है, कुछ वचन उनके ऐसे हैं जो उन्होंने ज्ञान प्राप्ति के पूर्व कहे थे, लिखे थे। कुछ वचन ऐसे हैं जो बाद में कहे हैं, कुछ वचन ऐसे हैं जब वे सद्गुरु की भूमिका निभा रहे थे। काफी अनुभव से गुजर चुके, बहुत से शिष्य शिष्याओं का अध्ययन किया। उसके बाद कहे हैं, निश्चित रूप से उनमें और भी अधिक परिपक्वता है।

कालान्तर में हम ये तो भूल जाते हैं कि कौन सी बात कब कही गयी थीं? किससे कही गयीं थीं? वे स्वयं किस अवस्था में थे? गौतम बुद्ध सदा तो बुद्ध नहीं थे। 29 साल तक एक साधारण सांसारिक व्यक्ति की तरह, एक राजकुमार की तरह जिए थे। छः साल एक साधक के रूप में जिए, उसके बाद सिद्ध की भांति जिए, सद्गुरु की भांति जिए। उसमें भी क्रमिक विकास होता जाता है, विवेक का। सारी बातें एक सी नहीं होतीं।

ज्ञान प्राप्ति के बाद तुरन्त जो कहा होगा, उसके दस साल बाद जो कहेंगे, उसमें बहुत फर्क पड़ जाएगा। इस बीच दस साल का अनुभव विभिन्न लोगों के साथ कार्य करने का, उन्हें सहयोग पहुंचाने का... कौन सी बात सहयोग पहुंचा पाती है? कौन सी नहीं पहुंचा पाती? बीस साल बाद और परिवर्तन हो जाएगा। ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् चालीस साल तक उन्होंने उपदेश दिए। क्या आप सोचते हैं वो वही बातें हैं जो पहले दिन कहीं थीं?

नहीं! बहुत कुछ बदल जाएगा। बदलता ही जाएगा और खासकर संतों की वाणियां। वे वाणियां भी ग्रंथों में शामिल हैं जब वे साधक रूप में थे; उसमें विरह का वर्णन है, मिलन का वर्णन नहीं है, इस बात का भी ख्याल रखियेगा, हमारे काम की है, क्योंकि हम भी उन दशाओं से गुजरेंगे, हम भी विरह से गुजरेंगे, हम भी तड़फेंगे, पाने की कोशिश करेंगे, भूल–चूक भी होगी। तो वह वाणी हमारे काम की है। पर इतना

स्मरण रखियेगा कि उनकी बातों को उस दृष्टि से लेना कि एक व्यक्ति टटोल रहा है अभी। सत्य उसे मिला नहीं है।

' मैं प्रभ मिलण प्रेम मनि आसा।'

मैं प्रभु से मिलना चाहता हूं। मन में बड़ा प्रेम है और बड़ी आशा है।

' गुरु पूरा मेलावै मेरा प्रीतमु'

कोई पूर्ण गुरु मिल जाए और वो मुझे उस प्यारे प्रियतम परमात्मा से मिला दे।

'हउ वारि वारि आपणे गुरु कउ जासा'

मैं अपने उस गुरु पर बारंबार बलिहारी जाऊंगा। एक साधक के वचन हैं, याद रखना जो अभी तलाश में है।

' मैं प्रभ मिलण प्रेम मनि आसा।'

मन में बड़ी आशा है, उम्मीद है, बार-बार अपने गुरु को जासा।

' मैं अवगुण भरपूरि सरीरे।
हउ किउ करि मिला अपणे प्रीतम पूरे।।'

कहते हैं मेरा शरीर तो अवगुणों के खान है। कमियां ही कमियां हैं, दोष ही दोष हैं। वह प्यारा प्रियतम भला मुझसे क्यों मिलेगा? मिलने के लिए कुछ समान गुण तो चाहिए। दूध पानी में मिल जाता है, क्योंकि दोनों ही वाटर बेस्ड हैं। तेल पानी में नहीं मिल सकता दोनों के केमिकल बिल्कुल अलग-अलग हैं। उनकी स्पेसिफिक ग्रैविटी अलग-अलग है, वो मिल ही नहीं सकते। उनका स्वभाव भिन्न है।

ठींक ऐसे ही परमात्मा अगर परम आनन्द है, तो हम दुखी, चिंतित, भयभीत लोग उससे कैसे मिल सकेंगे? उसके जैसा तो कोई लक्षण चाहिए। चलो ना सही परम आनन्द, छोटा ही आनन्द सही, एक सुखद भावदशा ही सही। वह परम प्रियतम है, हमारे भीतर कुछ तो प्रेम हो, कुछ तो नाता बने, नहीं तो जोड़ बनेगा कैसे? नदी के दोनों किनारों मे समानता है तो पुल बन सकता है। अगर दोनों बिल्कुल ही भिन्न हैं, कोई तालमेल हीं नहीं है तो ब्रिजिंग कभी हो नहीं सकती, सेतू कभी बन नहीं सकता। तो समान से ही समान धर्मा का मिलन हो सकता है।

कबीर साहब ने बहुत स्पष्ट किया है इस बात को कि-

'दुख में सुमिरन सब करें, सुख में करे ना कोई।'

हम दुख में प्रभु की याद करते हैं जबकि याद हो ही नहीं सकती क्योंकि हम उससे बिल्कल विपरीत भावदशा में हैं। वह है महासुख और हम हैं दुख में। मिलन कैसे होगा?

'जो सुख में सुमिरन करे, तो दुख काहे को होय।'

साधना कहां से शुरू करनी है? सुख से, पॉजीटीव गुण से। जब तुम प्रसन्न हो, पुलकित हो, उमंग में हो वह क्षण है प्रभु स्मरण का। अभी हो जाएगा, बड़ी आसानी से

हो जाएगा। विपरीत चीजों को नहीं मिला सकते।

ओशो एक बोधकथा के माध्यम से समझाते हैं। कहते हैं एक बहुत पुराने जमाने की बात है। एक दिन सूरज की शिकायत लेकर रात पहुंची ईश्वर के पास और कहा कि आप अपने सूरज को समझा दीजिए, मेरे पीछे पड़ा है। बिल्कुल मजनूं की तरह, मुझे परेशान कर डाला। मैं भागती फिरती हूं, छिपती फिरती हूं, यहां–वहां। थोड़ी देर चैन भी नहीं मिल पाता, विश्राम भी नहीं कर पाती कि वो फिर आ जाता है। इसको रोकिए। ईश्वर ने कहा जरूर। उन्होंने नोटिस भेजा सूरज के नाम, कि वह हाजिर हो दरबार में। सूरज आया, उसको बताया कि तुम्हारे ऊपर ये आरोप लगा है। तुम बेचारी रात को क्यों परेशान करते हो? वो कह रही है कि तुम सालों–साल से उसके पीछे पड़े हो।

सूरज ने आश्चर्य से कहा कि क्षमा करें मैं तो जानता ही नहीं कि रात कौन है? कभी देखा नहीं और अगर गलती से कुछ भूल–चूक हो रही है मुझसे तो आप एक बार मेरा परिचय करवा दें, रात को मेरे सामने बुला दें। मैं ठीक से देख लूं, तो भूल–चूक से भी गलती ना हो। हो सकता है, जब शिकायत की है तो कुछ हो रहा होगा। लेकिन मुझे तो खबर नहीं रात है कौन? कहां रहती है? क्या करती है? मेरे सम्मुख बुला दें मैं पहचान लूं।

कहते हैं लाखों, करोड़ों साल बीत गए; ईश्वर की फाइल में ये मामला अभी भी वहीं का वहीं पड़ा है। लोग कहते हैं ईश्वर सर्वशक्तिमान है। लेकिन इस कहानी से सिद्ध हो जाता है कि नहीं है सर्वशक्तिमान, ये काम वो भी नहीं कर सकता कि सूरज और रात को आमने सामने कर दे। क्योंकि रात का मतलब है सूरज का अभाव; तो सूरज की उपस्थिति और उसकी गैर–अनुपस्थिति, दोनों एक साथ कैसे होंगे? परमात्मा है आनन्द। तो दुख का मतलब हुआ आनन्द का अभाव। तो आनन्द की मौजूदगी और उसकी गैर–मौजूदगी एक साथ कैसे हो सकते हैं? हम जिन्हें अवगुण कह रहे हैं, वे गुणों की गैर मौजूदगी हैं।

रामदास जी कह रहे हैं–

'मैं अवगुण भरपूरि सरीरे।
हउ किउ करि मिला अपणे प्रीतम पूरे।।'

मेरा वह प्रियतम तो पूर्ण है, पूरा प्रियतम और मैं हूं हर भांति अधूरा–अधूरा, खण्डित, टूटा–फूटा मेरा शरीर अवगुणों की खान और वह सतगुणों की खान। वह क्यों मुझसे मिलेगा? बड़ी निराशापूर्ण स्थिति से साधक गुजरता है। लगता है कि नहीं होने वाला, ये बात समझ में नहीं आती कि हम कहां गलती कर रहे हैं? हम प्रभु से मिलना तो चाह रहे हैं पर ऐसा लगता है कि हम उस लायक ही नहीं, योग्य ही नहीं।

'मैं प्रभ मिलण प्रेम मनि आसा।'

लेकिन वो सामने वाला मिलने को तैयार हो तब ना। आप प्रधानमंत्री से मिलने जाएं तो सिर्फ आप पर थोड़े ही निर्भर है कि प्रधानमंत्री से मुलाकात हो जाएगी। प्रधानमंत्री भी तो मिलना चाहे आप से!

'मैं अवगुण भरपूरि सरीरे।
हउ किउ करि मिला अपणे प्रीतम पूरे।। 2।।
जिनि गुणवंती मेरा प्रीतमु पाइआ।
से मैं गुण नाही हउ किउ मिला मेरी माइआ।।'

कहते हैं हे मां! अपने आप को स्त्री-रूप में सम्बोधन करते हैं। कहते हैं हे मां, मुझ जीवात्मा रूपी स्त्री से, जिसमें कोई गुण नहीं है, वह प्यारा प्रियतम नहीं मिलेगा और जिन गुणवंती जीवात्माओं से वह मिला है वो उनकी खूबी थी। उन लोगों ने उस प्यारे परमेश्वर को पाया। उनके भीतर वो गुण थे, उनकी खूबी थी, उनकी योग्यता थी। मुझमें वह गुण नहीं। वैसे गुण मैं कहां से लाऊं? मुझे तो अपने भीतर अवगुण ही अवगुण नजर आते हैं।

'किउ मिला मेरी माइआ।'

हे मां, वह मुझे नहीं मिल पाएगा। लगता है यह जीवन मेरा व्यर्थ जाएगा।

'हउ करि करि थाका उपाव बहुतेरे।'

कहते है, मैं तो बहुत उपाय कर-कर के थक गया। अनेक उपाय कर लिए, दुनिया में धर्मगुरु जो भी समझा रहे हैं वह सब करके देख लिया। पूजा कर ली, प्रार्थना कर ली, शास्त्र पढ़ लिए, कंठस्थ कर लिए, भजन गा लिए, कीर्तन कर लिए, गंगा स्नान कर लिया, तीर्थ यात्रा हो आए, उपवास कर लिए। जो-जो कर सकते थे, एक इंसान होने के नाते, कर लिए। कुछ बात बनी नहीं।

'नानक गरीब राखहु हरि मेरे।।'

और अंत में प्रार्थना करते हैं कि हे हरि, तुम्हीं इस गरीब की लाज रखो, मेरे बलबूते के तो बाहर है। मुझे जितनी समझ है, वो सब कर के देख लिया। कुछ बात बनी नहीं। ऐसा नहीं समझना कि साधक के वश में नहीं है। ये सर्वशक्तिमान ईश्वर के भी बस में नहीं है। वो भी अंधेरा और प्रकाश को एक साथ नहीं कर सकता। साधक को ही अपनी भूल समझनी होगी कि मैं अवगुणों पर ध्यान दे रहा हूं, यहां गलती हो रही है। मेरे भीतर गुण भी मौजूद हैं। बीज रूपी सही, पोटेन्शियल, ठीक है अभी ऐक्चूअल नहीं हुए, पोटेन्शियल मौजूद है। एक्चुअलाइज हो सकते हैं। उनको एक्चुअलाइज करने में लगो।

हमारी परिवार व्यवस्था, समाज व्यवस्था और विशेषकर शिक्षा प्रणाली और

संघर्षमय जीवन की सारी व्यवस्था हमारे भीतर के अवगुणों को तो बढ़ाने मे खूब सहयोगी है। सभी पुष्ट करते हैं हमें, अहंकारी बनने के लिए प्रेरित करते हैं, क्रोधी, प्रतिशोधी बनने के लिए, बदला लेने की भावना भरते हैं, प्रतियोगिता सिखाते हैं, स्पर्धा सिखाते हैं, दूसरों से आगे निकलना है, ईर्ष्या और वैमनस्य सिखाते हैं।

हमारा पूरा समाज, हमारा पूरा विश्व, सारी नकारात्मक चीजों को उभारने मे लगा हुआ है। और बढ़ाओ और बढ़ाओ...। यहां दुनिया में सफल आदमी वही कहलाता है, जिसके अन्दर ये सारी नकारात्मक चीजें अपने क्लाइमैक्स पर पहुंच गयीं। वह भारी प्रतियोगिता में लगा है और सबके आगे निकल गया। किन्हीं ऊंचे पदों पर पहुंच गया, सम्राट बन गया, कि बड़ा राजनेता या राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री बन गया। या कुछ और किसी भी क्षेत्र में।

हमारे भीतर जो पोटेन्शियल गुण हैं, बीज रूपी, वो बीज ही रह जाते हैं। समाज व्यवस्था उसका जल सिंचन नहीं करती, बिल्कुल नहीं करती। अगर छोटे बच्चे खेल रहे हैं और एक बच्चे ने किसी को मार दिया और वो घर में आया तो उसके माता–पिता उसको और डाटेंगे कि तुमने क्यों नहीं मारा? पिट के क्यों आये? उसके भीतर प्रेम भाव, मैत्री भाव, क्षमा भाव का जल सिंचन नहीं होगा। वो बीज, बीज ही रह जाएगा। उसको प्रेरित किया जा रहा है, तुम्हें बदला लेना सीखना होगा। अगर उसने एक चाटा मारा है तो तुम दो मारो। खबरदार जो रोते हुए घर आए। उसको रुला के घर भेजना।

सब भड़काने के लिए तैयार हैं, सब तरफ से। जितने खेल–कूद हैं वे सब युद्ध के छोटे रूप है। ट्रेनिंग हो रही है अभी। फिर बड़े होकर बाद में बनना आतंकवादी और बड़े–बड़े युद्ध करना। बचपन से थोड़ी ट्रेनिंग तो हो जाए। हम जिसे खेल कहते हैं वो सब ईर्ष्या को भड़काने के उपाय हैं। ठीक है मित्रों के संग खेल रहे हैं लेकिन अभी फिलहाल मान लो कि ये शत्रु हैं। दो टीम हो गयीं।

हैं सब दोस्त लेकिन खेल–खेल में चलो अभी ग्यारह इस तरफ, ग्यारह उस तरफ... अब दुश्मन हो गए। हम कोशिश करेंगे गेंद को उस तरफ भेजने की तुम कोशिश करो इस तरफ भेजने की, देखें कौन जीतता है। वो बेचारी गेंद पर लातें पड़ रहीं हैं। युद्ध की रिर्हसल चल रही है। अभी दोस्तों के संग चल रही है, बाद में दुश्मनों के संग करेंगे।

मुझे याद आती है अपने बचपन की... मुझे कभी समझ में नहीं आया कि इस प्रकार के खेल क्यों खेलना? मैंने कभी कोई खेल नहीं खेला। मुझे पता भी नहीं कि होते क्या हैं? ना कभी टी.वी. में देखे, ना कभी एक्चूअल में देखे। कोई रस ही नहीं आया मुझे। अगर दौड़ना अच्छा लग रहा है तो गेंद के पीछे क्यों दौड़ना और दूसरों को क्यों हराना? ऐसे ही दौड़ो ना!

अगर पैदल चलने मे मजा आ रहा है तो पैदल चलो। लेकिन दूसरों से आगे निकलने का क्या पागलपन? दूसरों से हमें क्या लेना–देना? वो अपनी गति से चलें, हम अपनी गति से चलें। अपना–अपना मजा लें। लेकिन लोग मजा के लिए नहीं कर रहे हैं; दूसरे को सजा देना है इसलिए कर रहे हैं, जो भी कर रहे हैं, जो कुछ कर रहे हैं। भले ही अपने पैर दुख जाएं कोई बात नहीं। दूसरे की टांग ही टूट जाए, मोच आ जाए, ये कोशिश है।

सावधान। चारों तरफ से पूरा समाज अवगुणों को भड़काने की कोशिश में है। पच्चीस–तीस साल की इस शिक्षा व्यवस्था से बाहर होते–होते हम उसमें पूरी तरह पारंगत हो जाते हैं। फिर आश्चर्य नहीं हम भी यही कहेंगे कि–

'मैं अवगुण भरपूरि सरीरे।'

अपने मन की दशा देखेंगे, अपने हृदय की कठोरता देखेंगे तो यही कहेंगे कि–

'हउ किउ करि मिला अपणे प्रीतम पूरे।'

वह प्यारा प्रियतम भला क्यों मिलेगा? जैसे व्यक्ति हम हैं, जरा गौर करो, ऐसे व्यक्ति से तुम खुद भी मिलना नहीं चाहते। भविष्य में हो सकता है कि जेनेटिक इंजीनियरिंग से ऐसा होने लगे कि कलोन्स बना दिए जाएं, एक ट्रू कॉपी बना दी जाए, बिल्कुल आपके हू–बहू। अभी आप कहते हो कि पत्नी से इसलिए नहीं पटती कि विचार नहीं मिलते। भाई से इसलिए झगड़ा हो गया कि मतभेद हो गया। पिताजी से इसलिए नहीं पटती कि वे ऐसे हैं, वैसे हैं। पच्चीस चीजें बताते हैं... दूसरों की खराबी, कि मतभेद, विचार भेद। अगर आपका एक क्लोन बना दिया जाए तब आपको पता चलेगी असली मुसीबत।

उसका शरीर भी आपके जैसा, उसके विचार भी आपके जैसे, सोचना, भावना सब कुछ बिल्कुल आपके ही जैसा। इसके साथ दो दिन भी काटना मुश्किल होगा; या तो आप उसकी गर्दन दबा दोगे या वो आपकी गर्दन दबा देगा। आपको पता नहीं कि कितनी ऊबाउ स्थिति होगी। यही तो कारण है कि हम अपने साथ नहीं रहते, हम ध्यान में नहीं डूबते। हमें पता है कि अगर महाऊबाउ आदमी कोई है तो यही है। हम दुश्मन के साथ भी समय बिताना मंजूर कर लेंगे बजाय अपने संग बिताने के।

बहुत लोग ध्यान की साधना शुरू करते हैं फिर दो–चार दिन में छोड़ देते हैं कि ये नहीं होने वाला। चुपचाप अपने संग अपने कमरे में बैठे हुए, ये कोई बात हुई! तुम अपने जैसे आदमी से मिलना ही नहीं चाहते। तो स्पष्ट है कि परमात्मा क्यों मिलेगा? उसका दिमाग खराब है क्या? जब तुम ही नहीं मिलना चाहते, तुम ही उसके संग नहीं जीना चाहते! और फिर यही भाव उठता हैं कि–

'जिनि गुणवंती मेरा प्रीतमु पाइआ।'

जिन सौभाग्यशाली आत्माओं ने पाया परमात्मा को, उनमें रहे होंगे कुछ गुण।

'से मैं गुण नाही हउ किउ मिला मेरी माइआ।'

मुझ में वैसे गुण नहीं, यह प्रार्थना भी काम नहीं करेगी।

'हउ करि करि थाका उपाव बहुतेरे।
नानक गरीब राखहु हरि मेरे।।'

यह प्रार्थना भी काम नहीं करेगी। हरि भी यह कार्य नहीं कर सकता, इतना सर्वशक्तिमान वो भी नहीं है।

एक दिन मैं मजाक उड़ा रहा था। एक व्यक्ति आस्तिक हैं बहुत। कह रहे थे परमात्मा सर्वज्ञ और सर्वज्ञाता, सर्वदृष्टा और सर्वशक्तिमान है। मैंने कहा अच्छा! क्या ईश्वर जो सर्वशक्तिमान है वो इतना बड़ा पत्थर, इतनी बड़ी चट्टान बना सकता है जो वो खुद ना उठा सके, क्या इतनी शक्ति है उसमें? बोले हां क्यों नहीं? अवश्य बना सकता है। मैंने कहा लो फिर आप की बात ही कट गयी। अगर ईश्वर ने इतनी बड़ी चट्टान बना ली जो वो खुद ना उठा सके फिर सर्वशक्तिमान कहां रहा? चट्टान तो उससे उठ नहीं रही। वे कहने लगे क्या मतलब? वे चौंके जरा। बोले नहीं–नहीं ऐसी चट्टान नहीं बन सकती। मैंने कहा इसका मतलब सर्वशक्तिमान नहीं है वो। इतनी बड़ी चट्टान ही नहीं बना सकता। कहने लगे आप बहुत अजीब आदमी हैं, दोनों तरफ से मैं ही फंस रहा हूं। मैंने कहा आपकी धारणा ही ऐसी विचित्र है। आपने ढंग से कभी सोचा ही नहीं, चिंतन–मनन नहीं किया कि सर्वशक्तिमान का मतलब क्या होता है?

सब बचकानी बातें हैं, परमात्मा भी यह कार्य नहीं कर सकेगा। हमें ही कुछ करना होगा। और वह कार्य क्या है? हम अपने भीतर के सकारात्मक गुणों का संवर्धन करना शुरू करें। हटाएं अवगुणों से नजर, अंधेरे पर नजर ना गड़ाएं। जो छिटपुट है, ना सही सूरज, मोमबत्ती ही सही, उसकी रोशनी पर ध्यान दें। ध्यान देंगे तो वह बढ़ेगी। एक दिन सब कुछ प्रकाशित, आलोकित हो जाएगा। यही साधना का सम्यक् मार्ग था, है, और रहेगा। इसलिए मैंने यह भेद भी स्पष्ट किया कि आज के इन वचनों को आप गुरु रामदास जी के जीवन के उस समय की वाणी समझना जब वे स्वयं एक साधक रहे।

हम भी अपने भीतर के गुणों पर ध्यान देना शुरू करें। अहोभाव से भरे हुए हमारे भीतर ये जो धन्यवाद का भाव है, यह अद्‌भुत सत्‌गुण है। इसका उल्टा है शिकायत भाव, इसके अभाव में होता है वो। धन्यवाद को बढ़ने दें, एक–एक श्वास के लिए धन्यवाद, प्रत्येक क्षण जो मिला है जीवन में, उस हर अनमोल पल के लिए धन्यवाद।

जय ओशो!
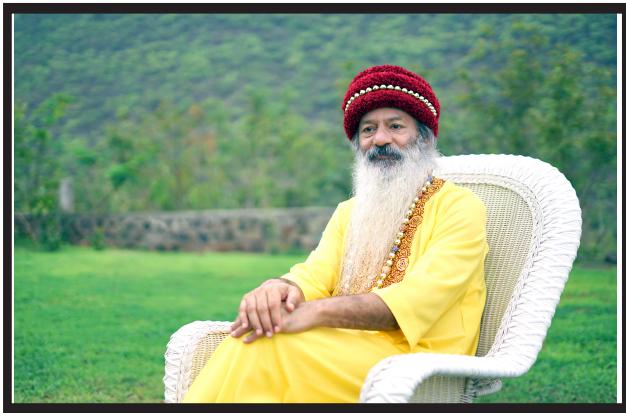
चिंतन नहीं, मनन में डुबकी

मंने की गति कही न जाइ। जे को कहै पिछै पछुताए।।
कागदि कलम न लिखणहारु। मंने का बहि करनि वीचारु।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।। 1।।
मंनै सुरति होवै मनि बुधि मंनै सगल भवण की सुधि।।
मंनै मुहि चोटा न खाइ। मंनै जम कै साथि न जाइ।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।। 2।।
मंनै मारगि ठाक न पाइ। मंनै पति सिउ परगटु जाइ।।
मंनै मगु न चलै पंथु। मंनै धरम सेती सनबंधु।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।। 13।।
मंनै पावहि मोखु दुआरु। मंनै परवारै साधारु।।
मंनै तरै तारे गुरु सिख। मंनै नानक भवहि न भिख।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।। 14।।

अध्यात्म–मनन हेतु दूर–दूर से पधारे प्यारे मित्रो, नमस्कार! आज के सत्र में आप सबका स्वागत है। आओ, इस गूढ़ शबद के भावार्थ में डुबकी मारें।

कहते हैं गुरुनानक देव जी कि मनन के बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता और जिसने भी कुछ कहने की कोशिश की वह पीछे पछताया। क्योंकि उसे भली–भांति पता है कि वह ठीक बात नहीं बता पाया।

सबसे पहले तो मनन क्या है उसको समझ लें। फिर गुरुनानक देव जी का यह वचन समझ में आ सकेगा। हम अकसर दो शब्दों का प्रयोग करते हैं– चिंतन और मनन। ये दोनों अलग–अलग बातें हैं। चिंतन का अर्थ है जैसे कोई व्यक्ति किसी सरोवर में तैर रहा हो। तो वह एक जगह से दूसरी जगह और दूसरी जगह से तीसरी जगह, तीसरी जगह से चौथी जगह जाए, यह उसकी गति ऊपरी सतह पर है पानी के सुपरफीशियल लेअर में, यह चिंतन है। ठीक ऐसे ही हमारे मन में विचार हैं; हम एक विचार, दूसरा विचार, तीसरा विचार, इस विषय में, उस विषय में, बार–बार जगह बदल रहे हैं तो उसका नाम है चिंतन।

मनन इससे बिल्कुल भिन्न है। मनन में भी जगह बदल रहे हैं किन्तु ऊपर सतह पर नहीं, नीचे गहराई की तरफ जा रहे हैं। चिंतन में हम ए से बी, बी से सी, सी से डी की तरफ जा रहे हैं। और मनन में ए से ए वन, ए टू, ए थ्री, ए फोर उसी बिन्दु पर गहराई में जा रहे हैं। गति तो दोनों में है, एक की गति तो ऊपर–ऊपर से दिखाई देगी। उससे हम परिचित हैं। हमारे मन की सामान्य गति वही है और ये शब्द मनन भी बड़ा प्यारा है। जहां मन न हो जाए वह मनन। गहराई में डुबकी।

यह सूत्र कहने के पहले गुरु नानक देव जी ने श्रवण का सूत्र कहा है। बाद में मनन का कहा। तो पहले ओंकार श्रवण की बात कही और फिर कहा अब इसका मनन करो। अर्थात् इसमें डूबो, सोच–विचार नहीं करना है। उसके बारे में हिसाब–किताब नहीं लगाना है। ना ही किसी विश्लेषण की जरूरत है, ना किसी बौद्धिक व्यायाम की, उसमें डूबना है। तो श्रवण के बाद मनन, इसके बारे में समझाना मुश्किल है, अनुभव करना आसान है। इसलिए कहते हैं–

'मंने की गति कही न जाइ। जे को कहै पिछै पछुताए।'

पश्चाताप होता है कि हमने इतनी महत्त्वपूर्ण बात के बारे में बताने का प्रयास किया किन्तु हम उसमें सफल ना हुए। असली बात बता ही ना पाए।

'कागदि कलम न लिखणहारु। मंने का बहि करनि वीचारु।'

उस मनन के बारे में जो भी विचार कहे जाते हैं, लिखे जाते हैं, सुने जाते हैं, वे

कोई भी उपयुक्त नहीं, पर्याप्त नहीं। कहते हैं ऐसा कागज–कलम अभी तक बना ही नहीं है जिस पर अपने भीतर के चैतन्य में डूबने वाली बात को लिखा जा सके, कहा जा सके।

'ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।'

जो मनन में डूबता है वही उसका अनुभव करता है। वह उसे जानता तो है– अपने भीतर की निरंजन चेतना को। चैतन्य को हमेशा निरंजन कहा गया है अर्थात् जिस पर कोई अंजन नहीं चढ़ता, कोई लेप नहीं लगता। कोई दाग–धब्बा, कोई चीज उसे छूती नहीं। निरंजन अर्थात् संसार में कोई भी घटना घटे, हमारी देह में और हमारे मन में, उसकी कोई भी प्रतिक्रिया हो, वह भीतर की चेतना तक नहीं पहुंचती।

वह सदा–सदा अस्पर्शित रह जाती है। इसलिए भीतर की वह चेतना जिसमें 'नाम' गूंज रहा है, वह निरंजन है। भीतर जो ओंकार की ध्वनि है उस पर बाहर की किसी घटना का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। आप का मन प्रसन्न है, कि उदास है, आप खुशी में हैं, कि गम में हैं, भीतर की वह निरंजन चेतना बिल्कुल अप्रभावित रहती है।

'ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।। 1।।
मंनै सुरति होवै मनि बुधि मंनै सगल भवण की सुधि।।
मंनै मुहि चोटा न खाइ। मंनै जम कै साथि न जाइ।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।।'

जो भीतर की उस सुरति में डूब गए उनके भीतर अद्‌भुत बुद्धि का प्रकाश उत्पन्न होता है। इसे साधारण बुद्धि कहना ठीक नहीं, विवेक कहें, प्रज्ञा कहें, अंग्रेजी में एक शब्द हैं इंटलेक्चुअलिटी, बौद्धिक विचार की क्षमता और एक शब्द है विज़डम, जिसे हम विवेक कहते हैं। दोनों में बड़ा भेद है। कोई आदमी हो सकता है बहुत बौद्धिक हो। वकीलों को देखते हैं, कितने तर्कशील, कितने बुद्धि में कुशल, बड़ी तेज होती है उनकी स्मृति। गलत को सही और सही को गलत सिद्ध कर दें, लेकिन विवेक नहीं है। अपराधी का साथ दे रहे हैं, उसको बचा रहे हैं, बुद्धि तो बड़ी तेज है। लेकिन इसके भीतर विज़डम नहीं है। ये क्या कर रहे हैं, कभी सोचते नहीं कि करना चाहिए भी कि नहीं करना चाहिए।

वैज्ञानिक हैं, कितने कुशल हैं बुद्धि में, चमत्कारिक बुद्धि है उनकी। क्या–क्या खोज लिया? लेकिन कभी यह नहीं सोचा कि ये खोज करनी भी चाहिए कि नहीं। इससे मनुष्य जाति का कल्याण होगा कि अहित होगा। परमाणु बम बना लिए, नौकाएं, अस्त्र–शस्त्र बना लिए, स्टार–वार की तैयारियां चल रही हैं। बायलॉजिकल वेपन्स बन गए, बनाना चाहिए कि नहीं बनाना चाहिए यह विवेक नहीं है। बुद्धि तो बड़ी तेज है, बुद्धि और विवेक के भेद को पहचान लेना।

गुरु नानक देव जी को हो सकता है कि छोटा सा हिसाब भी न करते बने गणित का, हो सकता है संत कबीर साहब को साइकिल का पंक्चर जोड़ना भी न आता हो, महावीर को आप जाकर अपना मोबाईल पकड़ा दें, बेचारे उसको ऑपरेट भी नहीं कर पाएंगे। उनको यही नहीं पता होगा कि यह क्या है? इसका करना क्या है? लेकिन उनके भीतर विवेक है। बुद्धि और विवेक के भेद को खूब अच्छे से समझ लेना।

कहते हैं–

'सगल भवण की सुधि।'

ऐसे व्यक्ति को अद्‌भुत सुधि उत्पन्न होती है। सारे जगत के बारे में सुध–बुध विवेक पैदा हो जाता है। और फिर ऐसा व्यक्ति कहीं मुंह की नहीं खाता। और न ही यम उसे अपने साथ ले जा सकते। उसने अपने भीतर निरंजन चेतना को जान लिया, जहां नाम गूंज रहा, जहां आलोक ओत–प्रोत है। वह यम की पकड़ के भी बाहर है। मृत्यु में यह देह नष्ट होगी लेकिन भीतर उसने स्वयं को जिस रूप में पहचाना है, वह स्वरूप कभी भी नष्ट नहीं हो सकता।

'मंनै मारगि ठाक न पाइ। मंनै पति सिउ परगटु जाइ।।
मंनै मगु न चलै पंथु। मंनै धरम सेती सनबंधु।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।'

कहते हैं कि– मननशील प्राणी के जीवन में कभी कोई अड़चन नहीं आती, कोई व्यवधान नहीं आता। जो व्यक्ति बाहर जगत में जी रहा है उसके जीवन में तो सदा ही बाधाएं आती हैं। क्योंकि वह जिन चीजों को पाने की कोशिश कर रहा है वे हैं कम और पाने वाले हैं बहुत। एक कुर्सी है प्रधानमंत्री की, लाखों लोगों को सनक सवार है प्रधानमंत्री बनने की।

थोड़ा सा धन है दुनिया में, थोड़े से हीरे जवाहरात हैं, और पाने वाले करोड़ों हैं, भारी प्रतियोगिता, भारी हिंसा और स्पर्धा है। इसलिए बाधाएं ही बाधाएं हैं। हर व्यक्ति आपकी राह में अवरोध उत्पन्न करने की कोशिश करेगा। क्योंकि उसको भी वही चीज पानी है, जो आपको पानी है। भीतर कोई स्पर्धा नहीं है और सबके भीतर वही निरंजन 'नाम' मौजूद है, इसलिए आपस में कोई छीना–झपटी नहीं होनी।

परमात्मा है अनन्त, तुम कितना ही पा लो इससे दूसरे को कमी नहीं हो जाएगी। बाहर की सम्पत्ति के बारे में ठीक उल्टा है। अगर गांव के चार आदमी धनी हो गए तो बाकी के लोगों को गरीब होना ही होगा। सारे लोग धनी नहीं हो सकते, सारे लोग सुन्दर नहीं हो सकते, सारे लोग बुद्धिमान नहीं हो सकते, सबको नोबल प्राईज नहीं मिल सकता, सारे लोग ओलंपिक में स्वर्ण पदक तो जीत नहीं सकते।

एक पार्टी जीतेगी तो दूसरे को हारना ही पड़ेगा। भारी छीना–झपटी है, गलाघोंट प्रतियोगिता है। लेकिन अपने भीतर, वहां तो सबके भीतर वही खजाना मौजूद है, इसलिए छीना–झपटी का सवाल ही नहीं। इसलिए वहां कोई बाधा नहीं है। परमात्मा का मनन करने से सभी जीव अपने भीतर प्रतिष्ठित हो जाते हैं और धर्म में, वास्तविक धर्म में उनकी आस्था होती है।

हम सामान्यतः जिन्हें धर्म कह रहे हैं, सम्प्रदाय कह रह रहे हैं, गुरु नानक देव जी उस धर्म की बात नहीं कर रहे। धर्म यानी स्वभाव, धर्म यानी ताओ, धर्म यानी जीवन का महानियम, मनन करने वाला व्यक्ति उसमें स्थिर हो जाता है, उसमें टिक जाता है।

कबीर साहब न तो मंदिर गए, न मस्जिद गए, लेकिन धर्म में प्रतिष्ठित हैं। सारी दुनिया के लोग काशी में मरने आते हैं, यह सोच कर कि काशी में मरेंगे तो स्वर्ग जाएंगे। कबीर साहब अपनी वृद्धावस्था में काशी को छोड़ के मगहर नाम की जगह चले गए, जिसके बारे में कहा जाता है कि वहां मरने वाला नरक जाता है और अगले जन्म में गधा बनकर पैदा होता है। कबीर साहब ने कहा कि मुझे ऐसा स्वर्ग नहीं चाहिए जो काशी की वजह से मिलता है। अगर मेरी वजह से मिले तब ही मैं उसे अंगीकार करूंगा। मगहर में जाकर अगर मुक्ति मिलती है तो वह मेरी मुक्ति है। मैं गधा बनना पसंद करूंगा, लेकिन काशी वाला स्वर्ग मुझे नहीं चाहिए।

लोगों ने बहुत समझाया कि आप क्या कर रहे हैं? जिन्दगी भर काशी में रहे, और अब मगहर जा रहे हैं। कबीर साहब मगहर में जाकर मरे। क्यों? उन्हें पक्का पता है अपने भीतर के मोक्ष का, अपने भीतर के स्वर्ग का, इसमें तो वे प्रतिष्ठित हैं ही। ये तो लोगों को जगाने के लिए उन्होंने ऐसा किया। पागलों! किसी खास स्थान में मरने से कहीं स्वर्ग–नरक होता है। यह तो तुम्हारे भीतर की बात है। यह किसी परिस्थिति का सवाल नहीं, यह तो तुम्हारी चेतना की स्थिति की बात है। कबीर जहां भी जाएंगे, वे स्वर्ग में ही होंगे, वे मोक्ष में ही होंगे और हम जिन्हें सामान्य जन कह रहे हैं वे कहीं चले जाएं, वे अपना नरक अपने साथ ही लेकर चल रहे हैं। लोगों को सावधान करने के लिए कबीर साहब मगहर जाकर मरे। क्योंकि वे आंतरिक धर्म में प्रतिष्ठित हैं। वे परमात्मा में रमे हुए हैं। वहां से उन्हें कोई डांवांडोल कर ही नहीं सकता।

मननशील व्यक्ति आनन्द और उल्लास में अपना जीवन पथ तय करता है। उसका संबंध यथार्थ धर्म से होता है। अभी मैं कह रहा था न तथाकथित धर्मों से संबंध नहीं है यथार्थ धर्म का। जिसे बुद्ध कहते हैं 'एस धम्मो सनन्तनो', लाओत्सु जिसे 'ताओ' कह कर पुकारता है, परम नियम जिसको हम कहें। विज्ञान खोज करता है पदार्थ के नियम की और संतों ने खोज की है चेतना के नियम की। उसका नाम है धर्म,

इसका किसी सम्प्रदाय से कोई लेना–देना नहीं।

हम जिन्हें कहते हैं हिन्दु, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध, सिक्ख, इत्यादि, इनका वास्तविक धर्म से कुछ भी लेना देना नहीं। ये तो आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक संगठन हैं। और याद रखना संगठन की, संस्था की कोई आत्मा नहीं होती। और बिना आत्मा के, बिना चेतना के तो धर्म हो नहीं सकता। ये तो संगठन हैं, संस्थाएं हैं। जैसे रोटरी क्लब है, लायन्स क्लब है, किटी पार्टी का क्लब है, ऐसे ही ये तो लोगों के मिलने–जुलने की संस्थाएं हैं। जिनके विचार एक दूसरे से मिलते–जुलते हैं, वे वहां इकट्ठे होते हैं। इसको धर्म मत समझ लेना।

धर्म की खोज तो अपने भीतर डुबकी लगाकर, मनन करके प्राप्त होगी। बाहर के मंदिर में नहीं, अपने मन के दिर से भीतर प्रवेश करो। ये मंदिर शब्द बहुत अच्छा है। दिर यानि द्वार, दरवाजा, हमारा मन ही द्वार है उससे भीतर जाओ। चेतना में डुबकी लगाओ। बाहर के ईंट, पत्थर, सीमेंट के बने मंदिरों में जाने से क्या होगा? वे तो वैसे ही बने जैसे तुम्हारा मकान। जैसे ईंट, पत्थर, लोहा, सीमेंट तम्हारे मकान में लगा है, वैसे ही मंदिर में लगा है। उसमें तो कोई भेद नहीं है। असली मंदिर अपने भीतर है।

पुनः गुरु नानक देव जी पुनरावृत्ति करते हैं कि निरंजन परब्रह्म का नाम अत्यंत महत्त्वपूर्ण है और उसमें मनन करते हुए, डूबते हुए ही व्यक्ति जानता है कि वह क्या है? अन्य कोई भी उसे नहीं जान सकता।

'मंनै पावहि मोखु दुआरु। मंनै परवारै साधरु।
मंनै तरै तारे गुरु सिख। मंनै नानक भवहि न भिख।
ऐसा नाम निरंजन होई, जेके मन्नै मन जाणै कोई।'

कहते हैं, उसको पाकर ही मोक्ष का द्वार खुलता है। उसे पाकर ही सारा परिवार तर जाता है। गुरु और शिष्य उसी मनन से होते हैं। जिसने भीतर के उस परम चैतन्य को, निरंजन नाम को जान लिया, वह सद्‌गुरु हो गया। और जो उसे जानने का प्रयास कर रहा है वह शिष्य हो गया।

गुरु नानक जब परिवार की बात कर रहे हैं तो गुरु–शिष्य परिवार की बात कर रहे हैं। भौतिक शरीर के जो संबंध हैं, हम उन्हें परिवार कहते हैं, चलो ऊपर–ऊपर से ठीक। लेकिन असली परिवार तो आत्मिक तल का है। सद्‌गुरु और उसके शिष्य, यह असली परिवार है। नानक कहते हैं पूरा परिवार तर जाता है।

'मन्ने तरे तारै गुरु सिख, मन्नै नानक भवह न बिख।
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।।'

जो उस मनन को जानता है, बस वही जानता है। दूसरों को जना नहीं सकता,

फिर सद्‌गुरु करता क्या है? अगर दूसरों को बता ही नहीं सकते तो। बस यही उसका प्रयास है कम से कम इतनी बात समझा दें कि मैं बता नहीं पा रहा हूं। लेकिन कुछ अद्‌भुत शांतिदायी, आनन्ददायी मैंने जाना है। किस विधि जाना है? अपने भीतर डूब कर। तुम भी अपने भीतर डूबो। तो वे उस निरंजन का वर्णन नहीं कर रहे हैं। परमात्मा का वर्णन नहीं है, संतों के शब्दों में। केवल प्यास जगाने का प्रयास है कि सद्‌गुरु की वाणी सुनते–सुनते तुम्हारे भीतर अभीप्सा उत्पन्न हो जाए। और फिर गुरु इशारा करते हैं, कैसे? अपने भीतर डूब कर, शांत होकर, निर्विचार होकर। मन के पार है मनन। उस नाम में डूबो जो निरंजन है, निर्लेप है, यही सद्‌गुरु का कार्य है, बस। और इसलिए शास्त्रों में जो लिखा रह जाता है, वह काम नहीं आ पाता क्योंकि उसमें से इशारे खो जाते हैं। मुख्य बात जो गुरु शिष्य के बीच में बड़े प्रेमपूर्वक घटित हुई थी, श्रद्धापूर्वक घटित हुई थी, वह बात गायब हो जाएगी।

गुरु ने जो कहा था वही किताब में भी लिखा होगा, बाद में। लेकिन फिर वहे किसी के काम न आ सकेगा। क्योंकि लोग उसको ऐसे पढ़ेंगे जैसे इसी को पढ़ कर परमात्मा मिल जाएगा। और गुरु तो स्पष्ट कह ही रहे थे कि मैं वर्णन नहीं कर पा रहा हूं। मैं जो भी कह रहा हूं, जो मैं कहना चाहता हूं, वह वर्णन नहीं है उसका।

एक कारण और है। जो भी वर्णन किया जाता है वह मन के द्वारा किया जाता है। हमारी सारी भाषा, शब्दावली, विचार, तर्क, ये मन में है। मन बीच में है, भीतर है चेतना। बाहर हैं इन्द्रियां और संसार, बीच में है मन। मन इन्द्रियों से जुड़ा है, इन्द्रियां बाहर संसार से सूचना प्राप्त करतीं हैं, इन्फॉर्मेशन, और वह सूचना मन को देतीं हैं। मन इंद्रियों का मालिक है, हमारी पांचों इंद्रियां एक मन से संयुक्त हैं।

मैं आंख से देख रहा हूं, उस दृश्य की सूचना भी मन को मिल रही है, मैंने कुछ सुना, कानों ने यह खबर मन को भेजी। चाहे हम स्वाद लें, कि सुगंध लें, कि स्पर्श का अनुभव करें, ये सारी इन्फॉर्मेशन भीतर जो बायलॉजिकल कम्प्यूटर है मन नाम का, उसमें फीड कर दी जाती है। भीतर कोई इन्द्रियां नहीं हैं और वहां से कोई सूचना मन को प्राप्त नहीं होती। इसलिए मन भीतर के बारे में कुछ नहीं जान सकता। वह उसका क्षेत्र नहीं है, वह जिन इन्द्रियों से जुड़ा हुआ है वे बाहर संसार की तरफ खुलती हैं। वहां से सूचना प्राप्त होती है, मन को वह ज्ञान प्राप्त होता है। और फिर मन उनका विश्लेषण करता है, उन्हें शब्द देता है, उनकी व्याख्या करता है और उनकी अभिव्यक्ति कर सकता है, उसको समझा सकता है, उसको बता सकता है कि मैंने क्या जाना? भीतर कोई इन्द्रियां नहीं हैं। इसलिए मन को वहां से कोई सूचना नहीं मिलती। इसलिए जब हम मनन की अवस्था में पहुंचे, भीतर डुबकी लगा ली, उस समय मन को कोई भी खबर

नहीं है। तो फिर वह उसका वर्णन कैसे कर सकता है?

जिसे हमने निर्विचार में जाना, उसे हम विचारों में प्रकट कैसे करेंगे? जिसे भाषा के पार जाकर जाना, उसे भाषा में अभिव्यक्ति देना संभव नहीं। इसलिए आज तक कोई भी सद्गुरु अपने वास्तविक अनुभव के बारे में कुछ भी न बता सका। न कभी भविष्य में बता सकेगा। उसकी कोशिश बस इतनी है कि सुनने वाले के भीतर बस प्यास उत्पन्न हो जाए और वह भी अंर्तयात्रा के लिए राजी हो जाए। वह अपने भीतर जाकर खुद ही जान लेगा।

आओ गुरु नानक देव जी के इन प्यारे वचनों के संग हम भी उस नाम निरंजन की तरफ यात्रा करें। मैं चाहूंगा कि आप सब आंखें बंद करके भीतर के साक्षी चैतन्य में रमें। जय ओशो!

मन है ज्योति स्वरूप!

मन तूं जोति सरूपु है आपणा मूलु पछाणु।
मन हरि जी तेरै नालि है गुरमती रंगु माणु।
मूलु पछाणहि तां सहु जाणहि मरण जीवन की सोझी होई
गुरपरसादी एको जाणहि तां दूजा भाउ न होई।
मनि सांति आई वजी वधाई ता होआ परवाणु
इउ कहै नानकु मन तूं जोति सरूपु है अपणा मूलु पछाणु।। 5।।

हमें गुरू अमरदास जी की अमर वाणी रसास्वादन करने का सौभाग्य मिला है। नमस्कार! आज के साधना–सत्र में आप सब मित्रों का स्वागत है। वे कहते हैं–

' मन तूं जोति सरूपु है आपणा मूलु पछाणु।'

हे मेरे मन, तू स्वयं ज्योति स्वरूप है। अपने मूल को पहचान, अपनी जड़ों की तरफ ध्यान दे। तू कहां से आया? ऊपर–ऊपर की सतह पर क्या इकट्ठा हो गया है? धूल–धंवास! उस पर गौर न कर, अपने मूल तत्व को पहचान।

' मन हरि जी तेरै नालि है गुरमती रंगु माणु।'

परमात्मा सदा–सदा तेरे संग साथ है, तू इस बात का स्वाद ले, इसका अनुभव ले। सदा–सदा संग साथ है, यह बात कैसे पता चलेगी? गहराई में जाकर। एक वृक्ष को कैसे पता चलेगा कि पूरी पृथ्वी उसके सपोर्ट में है? अपनी जड़ों पर ध्यान ले जाएं तो पता चलेगा कि पूरी धरती माता उसके लिए जीवन का इंतजाम कर रही है। क्षण–क्षण उसे रस दे रही है।

बाहर–बाहर हम सतहों पर गए तो हम भ्रम में पड़ जाएंगे और अपने मूल में डुबकी लगाई, गहराई में गए, तब हमें पता चलता है कि वहां तो परमात्मा मौजूद है... ज्योति स्वरूप, ओंकार स्वरूप, चैतन्य स्वरूप, साक्षी स्वरूप... वही हमारा मूल है। फिर तने में से शाखाएं निकलीं, फिर शाखाओं में से प्रशाखाएं निकलीं, पत्तियां निकलीं, फूल निकले, फिर बहुत विविधता हो गयी। बड़ी वेरायटी हो गयी।

और यह वृक्ष जब बगल में खड़े दूसरी जाति के वृक्ष को देखेगा तो इसे कभी भी अंदाज न लगेगा कि ये हमारे समान है। यह आम का वृक्ष है, वह नीम का वृक्ष है, कहां यह मीठा, कहां वह कड़वा! पास में एक छोटा सा घास का पौधा है। कोई भी तालमेल नजर नहीं आता है कि इस पीपल के वृक्ष का इस घास के पौधे से कोई संबंध है, कि यह उसका ही कोई रिश्तेदार है।

ऊपर–ऊपर से देखेंगे तो बहुत भेद है। भेद ही भेद हैं, सच पूछो तो दो पीपल के पेड़ भी एक जैसे नहीं हैं और दो घास की पत्तियां भी एक सी नहीं है। बहुत भेद हैं। अभेद का कहां पता चलेगा? जब अपने मूल में जाएं तब पता चलेगा कि इस वृक्ष की जड़ें जिस धरती से रस ग्रहण कर रही हैं, दुनिया के सारे वृक्षों की जड़ें उसी धरती से रस ग्रहण कर रही हैं। जिस वायुमंडल में यह वृक्ष हवा लेती है, दुनिया के सारे वृक्ष उसी वायुमंडल में श्वास का आदान–प्रदान कर रहे हैं। जो सूरज इसकी पत्तियों में भोजन पकाता है वही सूरज सारे पेड़–पौधों का पालन पोषण करता है। जो मानसून की हवाएं इसके लिए बादल–पानी लेकर आई हैं वही सारी धरती पर जल बिखेर के

आयी हैं। मूलतः सब एक हैं। फैलाव में जाएंगे, विस्तार में जाएंगे तो फिर बड़ी विविधता है। और दोनों का अपना–अपना सौन्दर्य है, विविधता का अपना सौन्दर्य है।

मूल में है एक, सतह पर हैं अनेक। और उस 'एक' के आधार पर ही ये 'अनेक' फल–फूल रहे हैं। वही इनका मूल आधार है और इसी से जीवन का सारा सौन्दर्य है। अगर बाहर भी सब एक ही होता तो बड़ा उबाऊ हो जाता, नीरस हो जाता। वहां रसपूर्ण है क्योंकि वहां बहुत विविधता है। सच पूछो तो हर पत्ती अद्वितीय है, बेजोड़ है, हर कण अपने आप में बिल्कुल अनूठा है। मूल में जाएंगे तो एक है।

' मन तूं जोति सरूपु है आपणा मूलु पछाणु।'

तू प्रकाश ही प्रकाश है, चैतन्य का प्रकाश। अपने मूल को अगर पहचानें, अपनी गहराई में अगर जाएं तो वहां पर जो हम पाते हैं, वही आत्मा का परम रूप है।

' मन हरि जी तेरै नालि है गुरमती रंगु माणु।'

और यह गुरु की कृपा से, उसके उपदेश से संभव हो पाता है कि हम ध्यान में डूबना सीखते हैं। हम अपनी सूझ–बूझ से शायद ऐसा कभी नहीं कर पाते। बाहर के जीवन की आवश्यकताएं हैं, उन आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए किए जाने वाले कर्म में तथा वहां की प्रतियोगिता का जगत इतना व्यस्त करने वाला है कि हमें फुर्सत ही नहीं होती कभी अपने भीतर डूबने की। और यह ख्याल भी नहीं आता है कि भीतर जैसी भी कोई चीज है। क्योंकि हमारी इंद्रियां जिसे देखतीं, सुनतीं, स्पर्श करतीं, स्वाद लेतीं, सूंघतीं हैं, वह सब बाहर ही बाहर है। तो हमारा सारा ज्ञान बाहर से आता है, सारी सूचनाएं बाहर से आती हैं। भीतर तो कोई आंख है नहीं और भीतर तो कोई कान है नहीं। तो भीतर भी कुछ देखना हो सकता है, कि सुनना हो सकता है यह बात हमें अपने आप कभी सूझ नहीं सकती। इसलिए सद्गुरु का इतना महत्त्व है जो उस अलौकिक ज्ञान की तरफ इशारा करता है।

'गुरमती रंगु माणु।
मूलु पछाणहि तां सहु जाणहि मरण जीवन की सोझी होई'

और जिसने अपने मूल तत्व को पहचान लिया, उसके लिए जीवन–मरण का मसला हल हो जाता है। वह पहेली सुलझ जाती है। अन्यथा वह कभी सुलझने वाली नहीं। न जीवन समझ में आता है, न ही मृत्यु समझ में आती है। ये क्यों हैं? यह शाश्वत प्रश्न है। दार्शनिक इसका उत्तर खोजते रहे हैं, आज तक तो कोई उत्तर मिला नहीं। यह खेल, यह लीला भीतर जाकर ही समझ में आती है। परमात्मा के प्रकट होने का ढंग है कि वह अप्रकट, प्रकट होता है, वह निराकार, आकार लेता है, वह अरूप भांति–भांति के रूप धरता है। यह एक खेल है। फिर रूप वापस मिल जाते हैं अरूप में। फिर वह नए रूप धारण करता है।

अभी देखते हैं पेड़–पौधों मे कितने पत्ते हैं। कल बारिश हुई तो सब कैसे चमक रहे हैं? छः महीने बाद पतझड़ आ जाएगा, सब सूख कर मिट्टी में मिल जाएंगे। फिर उनका खाद बन जाएगा। फिर वृक्ष की जड़ें उसी खाद को अवशोषित कर लेंगी, अगले बरस पतझड़ में फिर नए कोपलें फूटेंगी। घूम फिर कर ये तत्व वापस लौट आएंगे।

आपको जानकर हैरानी होगी कि धरती के ऊपर मुश्किल से दो फीट की मिट्टी है, जो पिछले करोड़ों–करोड़ों साल से खरबों–खरबों पेड़–पौधे बन चुकी। फिर नवीनीकरण चलता ही रहता है। वही पेड़–पौधे, फिर मिट्टी हो जाते हैं। फिर नये पेड़–पौधे उग आते हैं। वहीं ऊपर की दो–तीन फीट की परत में, बस।

हम जितनी अनाज की फसलें खाते हैं मुश्किल से एक–डेढ़ फुट मिट्टी इन्वॉल्व है उसमें। हमारा मुख्य भोजन ऊपर की एक–डेढ़ फुट मिट्टी का है। उसी का रूपांतरण चल रहा है। फिर जीव–जन्तु इन पौधों को खा रहे हैं। उनका जीवन चल रहा है। अंततः वे फिर मिट्टी में मिल जाते हैं, फिर सड़–गल जाते हैं, सब इसी दो फीट की मिट्टी में हो रहा है। खरबों–खरबों बार भांति–भांति के रूप धारण कर चुकी है।

सुबह–सुबह आपने जो चाय पी है अभी आपके शरीर में पहुंच गयी। उसमें जो दूध था, उसका कैल्शियम बाकी हड्डियों में डिपॉजिट हो गया और आप कह रहे हैं मेरी हड्डियां हैं ये। कल तक वह दूध गाय के शरीर में था और दो दिन पहले वही घास था। गाय ने जब चरा नहीं था, वह कैल्शियम वहां था। और पंद्रह दिन पहले वह घास उगी ही नहीं थी। वह मिट्टी में था। मिट्टी में कहां से आया होगा? हमारे पूर्वज जो मिट्टी में मिल गए, उनकी हड्डियों का चूरा होगा, और कहां से आएगा?

अभी आप सोच लें, सात अरब आदमी और अन्य पशु–पंछी, सब की गिनती लगाओ कितने खरब हो जाएंगे? अगर ये सब मर जाएं तो एक मोटी, एक–डेढ़ फुट मिट्टी की परत तो इन्हीं की बन जाएगी। ऐसा करोड़ों–करोड़ों बार हो चुका।

सब मिट्टी में मिल चुके, फिर पेड़–पौधे हो गए, फिर पशु–पंछी हो गए, फिर मनुष्य हो गए, फिर मिट्टी में मिल गए। गोल, गोल, गोल घूम रहे हैं। वह कैल्शियम का अणु न कभी बना, न कभी नष्ट होगा। वह शाश्वत है, चला आ रहा है। और इसी प्रकार एक–एक परमाणु, न तो कभी किसी का निर्माण हुआ और न कभी कोई नष्ट होने वाला है। मूल तत्व वही के वही रह जाएंगे। यह खेल, यह लीला चलती रहेगी। लेकिन यह बात भी खूब गहराई में जाकर पकड़ में आती है।

'मरण जीवन की सोझी होई।'

तब यह पहेली सुलझ जाती है, मूल को पहचान कर।

'गुरु शबदी, गुरु प्रसादी, एको जाणही ते दूजा भाव ना होई।'

और गुरु के प्रसाद से फिर 'एक' को जान लिया, वह जो भांति–भांति के रूप

धर रहा है और स्वयं रूपवान नहीं है। जो सब प्रकार के आकार लेता है और खुद तो निराकार है। याद रखना जो निराकार है वही हर प्रकार का आकार ले सकता है।

समझो एक ठोस पत्थर है या एक आइसक्यूब है, सॉलिड, इसका अपना स्वयं का आकार है, यह हर आकार नहीं ले सकता। इसका एक फिक्स्ड आकार है। पानी जो तरल है, लोटे में डाल दोगे, लोटे के शेप का हो जाएगा। गिलास में गिलास जैसा, बाल्टी में बाल्टी जैसा, क्योंकि उसका कोई फिक्स्ड शेप नहीं है। जिसका स्वयं का फिक्स्ड शेप है वह कोई दूसरा शेप नहीं ले सकता।

फिर पानी से और सूक्ष्म हवा है जिसका न तो ठोस रूप है बर्फ जैसा और न ही पानी जैसा तरल है। दुनिया में अरबों प्रकार के मकान हैं, हर मकान अलग आकृति का है, सब के भीतर वही हवा है। कितने जीव–जन्तु हैं, सबके भीतर वही प्राणवायु है। पेड़–पौधों के भीतर भी, कीट–पतंगों के भीतर भी। उसका अपना कोई शेप नहीं है।

अगर बहुत सूक्ष्मदर्शियों से देखेंगे तो उसमें भी शेप मिल जाएगा। तो बर्फ की तुलना में या पानी की तुलना में नहीं है, लेकिन फिर भी है। चैतन्य जो है उससे भी ज्यादा बारीक है। चींटी में वह चींटी की आत्मा हो गया, हाथी में वह हाथी की आत्मा हो गया। घास की पत्ती में वह घास बन गया। वटवृक्ष में वह वटवृक्ष की चेतना हो गया। मनुष्य में मनुष्य हो गया। मूर्ख में मूर्ख हो गया। सयाने में सयाना हो गया। बुद्धिमान में बुद्धिमान हो गया। अद्‌भुत खेल है, क्योंकि उसमें कोई अपना आकार नहीं है।

एक अदृश्य शक्ति। विद्युत शक्ति है। अभी आप स्पीकर से आवाज सुन रहे हैं तो ध्वनि की तरंगें बन गयीं, उसी विद्युत की। ऊपर बल्ब जल रहा है सीलिंग पर, वह प्रकाश की किरणें बन गयीं। विद्युत का पंखा चल रहा है, एक मेकैनिकल एनर्जी पैदा हो गयी, हवा को धकेल रही है। उसी विद्युत की शक्ति एअर–कन्डीशनर में ठण्डक बनके आ रही है। हीटर और गीजर में वही गर्मी बन गयी, वही एक विद्युत।

आज तक विद्युत को किसी ने नहीं देखा। हमने उसके प्रभाव देखे, उसके इफेक्ट्स देखे। वही चुम्बक बन जाती है, वही कैथोड किरण बन जाती है, वही एक्स–रे बन जाती है। हमने इफेक्ट्स देखे, उसके परिणाम, आज तक विद्युत को किसी ने नहीं देखा। ठीक ऐसे ही जीवन ऊर्जा, चैतन्य ऊर्जा, साधु में साधु हो गयी, असाधु में असाधु हो गयी। वही महात्मा बन गयी, वही पापी और अपराधी बन गयी। सब उसी का खेल।

'मरण जीवन की सोझी होई... दूजा भाव ना होई।'

जिसने उस 'एक' को पहचान लिया फिर द्वैत भाव मिट जाता है। जो गहरे से गहरा द्वैत भाव मन में समाया है, उसे पकड़ना। वो है अच्छे बुरे का भेद। यह हमारे गहरे

से गहरे अवचेतन में बैठा हुआ है, 'गुड' ऐण्ड 'एविल'। और सब भेद–भाव हम भूल भी जाएं अंततः हम पहुंच जाते हैं– अच्छा या बुरा। जहां अच्छा या बुरा आयेगा, वहां पर हम सीमा रेखा खींचेंगे। यह भेद कैसे मिटेगा?

'गुरपरसादी एको जाणहि तां दूजा भाउ न होई।'

यह द्वैत का भाव तभी मिटेगा जब हम इस बात के प्रति सजग हो जाएं कि हम जिसे दुर्गुण कह रहे हैं वह सद्गुण का अभाव है। वह विपरीत नहीं है। हम जिसे रात कह रहे हैं वह सूरज का छुप जाना है, प्रकाश का न होना है। वह अपने आप में कुछ नहीं है। हम जिसे असाधु कह रहे हैं वह साधुपन का अभाव है। हम जिसे बुरा कह रहे हैं उसमें अभी अच्छाई की खिलावट नहीं हुई है। संभावित रूप से वह अच्छा है। रात के गर्भ में से फिर सूरज उगेगा। फिर दिन होगा। बड़े से बड़ा पापी कभी पुण्यात्मा हो जाएगा। हुआ है, इतिहास गवाह है इस बात का।

अगर विपरीत होते तो फिर एक दूसरे में परिवर्तित कैसे हो जाते? फिर महर्षि वाल्मिकी और महान भिक्षु अंगुलीमाल तो कभी हो ही नहीं सकते थे। अगर ये दो इकाइयां बिल्कुल अलग–अलग हैं, भिन्न और विपरीत हैं एक दूसरे से, तो फिर पापी पुण्यात्मा कैसे होगा? फिर तो विकास का कोई उपाय ही नहीं बचा। वह इसलिए हो सकता है क्योंकि पाप है– पुण्य की अनुपस्थिति। जब पुण्य आ जाएगा, पाप गायब हो जाएगा। कोई खास बात नहीं।

हर पुण्यात्मा का अतीत है। वह भी कभी पापी था और हर पापी का भविष्य है, वह भी कभी पुण्यात्मा हो जाएगा। जैसे एक छोटा बच्चा है, हम उसको इस बात के लिए डांटते तो नहीं हैं कि नालायक, तू इतना छोटा क्यों है? हमको देख कितने बड़े हैं? हम जानते हैं कि हमारी कोई खूबी नहीं बड़े होने में और छोटे बच्चे होने में किसी का कोई दोष नहीं है। पहले हम भी छोटे बच्चे थे, फिर हम बड़े हो गए। तो आज जो बच्चा है वह भी बड़ा हो जाएगा। इसमें न तो किसी का कोई क्रेडिट है, न कोई ब्लेम। न कोई श्रेय है, न कोई दोष। यह विकास का एक क्रम है। न कोई अहंकार की बात है इसमें और न ही कोई गिल्ट फीलिंग की जरूरत है। हम एक विकास के क्रम में हैं, धीरे–धीरे आगे बढ़ रहे हैं। स्वाभाविक है, कुछ लोग पीछे हैं, कुछ लोग बहुत पीछे हैं, कुछ लोग हमसे आगे निकल गए, कुछ लोग बहुत आगे निकल चुके। आज हम जहां हैं, कोई अभी से एक लाख साल पहले इसी स्थिति में था। वह एक लाख साल पहले वहां से निकल चुका। न किसी चीज का घमण्ड करना है कि मैं अच्छा हूं और न किसी को अपराध बोध से भरना है कि तुम बुरे हो। इसको बच्चे और वृद्ध जैसा ही समझना।

एक दूसरे उदाहरण से भी यह बात आसानी से समझ में आ जाएगी। एक व्यक्ति

बुद्धू है, नहीं है उसके पास बहुत अक्ल। हम भली–भांति जानते हैं ऐसा बुद्धिमत्ता की कमी से है। मूर्खता अपने आप में कोई चीज नहीं है सिर्फ समझदारी की कमी है। और जो आज बुद्धिमान हो गया है, पहले कभी वह भी नासमझ था, धीरे, धीरे, धीरे वह अनुभवी हुआ, बुद्धिमान हुआ। तो आज जो बुद्धू है, कालान्तर में वह भी बुद्धिमान हो जाएगा। हम एक विकास प्रक्रिया से एक पथ पर चल रहे हैं। कोई दो कदम आगे है, कोई दो कदम पीछे और कोई बीच में। कुल मिलाकर देखो तो सभी एक गोल वर्तुल पर हैं, कोई आगे या पीछे नहीं है। अगर गौर से देखोगे तो आगे–पीछे का भेदभाव भी मिट जाएगा।

भारत में चार बड़े धर्म पैदा हुए हिन्दु, जैन, बौद्ध, और सिक्ख। ये सब अद्वैत की बात करते हैं। भारत के बाहर जो धर्म पैदा हुए यहूदी और उसकी शाखाएं, ईसाईयत और इस्लाम, ये बेसिक द्वन्द्व को स्वीकार करते हैं। और इसलिए अंततः उन्हें मानना पड़ता है कि परम सत्ताएं भी दो हैं, भगवान और शैतान, इससे कम वे नहीं कर सकते। सारी अच्छाइयों के लिए भगवान हैं, यह 'गॉड' शब्द गुड से बना है। जो–जो शुभ है वह ईश्वर के नाम है। लेकिन दुनिया में अशुभ भी है, उसका क्या करोगे? उसको झुठला तो नहीं सकते, बुराइयां है इसको कौन मैनेज कर रहा है? ये किसने क्रिएट किया? इसके लिए कौन उकसा रहा है? मानना पड़ेगा कि एक शैतान तत्व भी है। तो पश्चिमी धर्म भगवान और शैतान को स्वीकार करते हैं लेकिन इस स्वीकार करने से समस्या हल नहीं हो जाती।

कोई भी व्यक्ति अगर तर्क को थोड़ा आगे उठाएगा तो सवाल यहीं खड़ा होता है कि शैतान जो है वह अपनी मर्जी से है, स्वतंत्र रूप से उसकी सत्ता है या ईश्वर ने ही उसको बनाया है। अब बड़ा खतरनाक सवाल पैदा हो गया। अगर कहो कि ईश्वर ने ही बनाया, ईश्वर सर्वशक्तिमान है तो उसी ने बनाया होगा, तो फिर तो बड़ा खेल हो गया। बुरा काम करवाने के लिए पहले तो एक एजेंट नियुक्त किया गया और फिर उसे दोष दे रहे हैं कि यह बुराई करवा रहा है। तो कुल मिलाकर तो ईश्वर ही जिम्मेवार हुआ। अगर शैतान का निर्माण ईश्वर ने ही किया है, तो फिर ईश्वर को कैसे बचाओगे बुराई के आरोप से? यह तो ऐसा ही हुआ कि हमने प्रोफेशनल मर्डरर रख दिया और उससे मर्डर करवा रहे हैं। तो जिम्मेवार तो हम ही हुए और हम सेवा कर रहे हैं लोगों की कि लोग मर न जाएं। जिनको गोलियां लग गईं, उनको पट्टियां बांध रहे हैं और इलाज करवा रहे हैं, सर्जरी करवा रहे हैं, गोलियां निकलवा रहे हैं और प्रोफेशनल मर्डरर को पैसे दिए कि चलाओ गोली, फोड़ो बम। दूसरी तरफ हम अस्पताल खोल रहे हैं और सेवा कर रहे हैं। यह तो बड़ा गोरखधंधा हो गया। इससे अच्छा सीधा–सीधा ही कर लो जो करना है।

अगर यह कहो कि शैतान की अपनी ही सत्ता है। तब और मुश्किल खड़ी हो जाती है। फिर तो यही दिखाई पड़ता है कि अंततः शैतान ही जीत रहा है। अगर भगवान जन्म देने वाला है और शैतान प्राण हरने वाला है तब तो यही दिखाई देता है कि अंत में सबके प्राण हर लिए जाते हैं, असली जीत तो शैतान की हो रही है। ईश्वर तो हार रहा है बार–बार, रोज हार रहा है। वह कितना ही बसंत लाए, शैतान फिर पतझड़ ले आता है। तो फाइनल विक्ट्री 'डेविल' की ही है। यह डेविल शब्द इविल से बना है। गुड से गॉड बना है। तो पश्चिमी धर्मों ने इस द्वैत को स्वीकारा और इसलिए वहां पर साधु और असाधु। यहीं तक बात जाती है, मनुष्य यहीं तक पहुंच सकता है।

भारत के धर्मों ने एक तीसरी कोटि और जानी– जागृत लोगों की। अब वह न साधु है न असाधु है। उनके लिए संत शब्द का प्रयोग किया है। संत का मतलब साधु नहीं। हमारी साधारण अच्छाई वाली परिभाषा में वह जरूरी नहीं है कि फिट बैठे। वह अच्छाई और बुराई दोनों के परे है, त्रिगुणातीत, न वहे तमस से बंधा है, न वह रजस से बंधा है। यहां तक की सत्व से भी नहीं बंधा है। पश्चिम के धर्म जिसको साधु कह रहे हैं वह सात्विक व्यक्ति है, बहुत अच्छा व्यक्ति है।

भारत में जिसको संत कह रहे हैं वह अच्छा व्यक्ति नहीं है। वह अच्छाई, बुराई के परे हो गया। यह गहरी से गहरी खोज है। इसलिए पश्चिम के धर्म बहुत बचकाने हैं और जैसे ही कोई व्यक्ति ज्यादा बुद्धिमान हो जाता है वह नास्तिक हो जाता है। क्योंकि उन पर फिर भरोसा कर ही नहीं सकते। वह किसी तर्क की कसौटी पर फिट नहीं बैठते।

बर्ट्रेन्ड रसेल जैसे अद्भुत प्रतिभाशाली व्यक्ति ने किताब लिखी है 'व्हाय आइ ऐम नॉट अ क्रिश्चियन? ' मैं ईसाई क्यों नहीं हूं? और उसने सैकड़ों तर्क दिए हैं और एक–एक तर्क अखडण्नीय है। कोई उसका खण्डन नहीं कर सकता। कह रहा है, मैं इन–इन कारणों से ईसाई नहीं हूं। केवल बहुत बचकानी बुद्धि के लोग ही पश्चिमी धर्मों को मान सकते हैं। भारत में जो धर्म पैदा हुए, वे बहुत गहरे, अद्वैत तक गए।

'दूजा भाउ न होई।
मनि सांति आई वजी वधाई ता होआ परवाणु
इउ कहै नानकु मन तूं जोति सरूपु है अपणामूलु पछाणु।।'

मन शांत हो गया। गहराई में, मूल में जाने का यही उपाय है, मन में जो अशांति की लहरें चल रही हैं, वे सर्फेस पर हैं, सतह पर हैं, वहां से दूर खिसको तो तुम पाओगे मूल में पहुंचने लगे, सागर की गहराई में पहुंचने लगे।

' मनि सांति आई वजी वधाई'

बधाई का मतलब होता है जिसमें वृद्धि हो, विकास हो भीतर शांति विकसित होने लगी।

‘ ता होआ परवाणु ’

और तब जैसे प्रभु ने स्वीकार कर लिया। इस अस्तित्व ने अंगीकार कर लिया अपनी बांहो में भर लिया।

फिर से रिपीट करते हैं गुरु नानक देव–

‘ मन तूं जोति सरूपु है आपणा मूलु पछाणु।’

अपने भीतर डुबकी मारो। सतह पर जहां विचार, तर्क इत्यादि चल रहे हैं, वहां से गहरे जाओ। फिर भावनाएं हैं, उनकी लहरें हैं, उनसे भी और गहरे जाओ। पहुंच जाओ चेतना में, साक्षी चैतन्य में, जहां कोई लहर नहीं, कोई कंपन नहीं और वहां अपने मूल को पहचानो। और वह मूल द्वंद्व से परे है।

वह विद्युत शक्ति जो किसी उपकरण में ठण्डक पैदा करती है और किसी उपकरण में गर्मी पैदा करती है, वह स्वयं ना ठण्डी है, न तो गर्म है, वह दोनों के परे है। ठीक ऐसे ही हमारे भीतर की चैतन्य ऊर्जा शुभ–अशुभ के परे है।

आओ उस तरफ डुबकी लगाने के पहले थोड़ा उत्सव मनाएं। नाचें, गाएं, मस्त हो जाएं। जय ओशो!

गलत तादात्म्य से छुटकारा

अखी काढि धरी चरणा तलि सभी धरती फिरि मत पाई।
जे पासि बहालहि ता तुझहि अराधी जे मारि कढहि भी धिआई।
जे गुरु झिड़के त मीठा लागै जे बखसे ते गुर वडिआई।
गुरुमुखि बोलहि सो थाइ पाए मनमुखि किछु थाइ न पाई।। 26।।
पाला ककरु वरफ वरसै गुरसिखु गुर देखण जाई।। 27।।
सभु दिनसु रैणि देखउ गरु अपुना विचि अखी गुर परे धराई।। 28।।
अनेक उपाव करी गुरु कारणि गुर भावै सो थाइ पाई।। 29।।
रैणि दिनसु गुर चरण अराधी दइआ करहु मेरे साई।। 30।।
नानक का जीउ पिंडु गुरु है गुर मिलि त्रिपति अघाई।। 31।।
नानक का प्रभु पूरि रहिओ है जत कत तत गोसाई।। 32।।

आत्मज्ञान के पथिक मित्रो, मेरे सह–यात्रियो; नमस्कार! आज के सत्र में आप सबका स्वागत है। आओ, इस प्यारे शबद के भावार्थ में डुबकी मारें–

' जे गुरु झिड़के त मीठा लागै '

सब चीजों को प्रतीकात्मक लेना, काव्यात्मक। मैं अपनी आंखें निकालकर गुरु चरणों में भेंट कर दूंगा, समस्त पृथ्वी पर शायद कहीं कोई गुरु मिल जाए। अर्थात् मैं अपना सर्वस्व भेंट करने को राजी हूं। हे प्रभु, यदि तुम मुझे अपने पास बिठा लो तो तुम्हारी अराधना करता रहूं। तुम मुझे धक्के देकर बाहर निकालो, तो भी मैं तुम्हारा ही स्मरण करूं। यदि गुरु किसी कारणवश प्रताड़ित करें तो उनकी वह प्रताड़ना भी मुझे प्यारी लगती है। यदि गुरु मुझपर कृपादृष्टि करें, यह उनका उपकार ही है, मेरी कोई विशेषता नहीं। गुरु के सान्निाध्य में रहने वाले मनुष्य जो वचन बोलते हैं, गुरु उसकी पुष्टि करता है। स्वेच्छाचारी व्यक्तियों का वचन स्वीकृत नहीं होता। विपरीत हालात हों, भयंकर शीत हो, बर्फ हो, कुछ भी हो, गुरु का सच्चा शिष्य गुरु के दर्शन करने के लिए अवश्य आता है। मैं भी दिन–रात, प्रतिपल अपने गुरु का दर्शन करता रहता हूं, गुरु के चरणों को अपनी आंखों में बसाए रहता हूं। यदि मैं गुरु को प्रसन्न करने के लिए अनेक प्रयत्न भी करूं, तो भी वही यत्न स्वीकृत होता है जो गुरु को उपयुक्त लगता है। हे पति प्रभु, मुझ पर कृपा करो ताकि मैं प्रतिपल सदगुरु के चरणों का स्मरण करता रहूं।

नानक की आत्मा को गुरु का आश्रय है उसकी देह चरणों में अर्पित है। गुरु से भेंट करते ही तृप्ति होती है, गुरु कृपा द्वारा ही यह सूझ उत्पन्न होती है कि नानक का प्रभु, सृष्टि का मालिक सर्वव्यापक है। सभी संतों ने अपने गुरु की महिमा गाई है, भांति–भांति से, उपमाएं अलग–अलग, जीने के तरीके अलग–अलग। निश्चित रूप से उस समय में, आज से छः–सात सौ साल पहले जिस इलाके में गुरु नानक देव रहते थे, वहां जैसी भाषाएं और उपमाएं लिखी जाती थीं, वहां जैसी भाषाएं और उपमाएं बोली जाती थीं, काव्यात्मक प्रतिकात्मकताओं का उपयोग होता था, समय के संग–संग वे बातें बदल जाती हैं। हमारे देश के किसी अन्य क्षेत्र में कोई अन्य संत हुए, वे बहुत अलग प्रकार की उपमाओं से वही बात कहेंगे। मुख्य बात है गुरु के प्रति अपना समर्पण। और इसको और संक्षेप में कहना चाहें तो वह है शिष्य की निरहंकारिता की अवस्था। यह किस विधि से प्राप्त होती है? भिन्न–भिन्न लोगों को अलग–अलग ढंग से हो सकती है। कोई हो सकता है पत्थर की मूरत के आगे झुक कर निरहंकारिता की अवस्था को उपलब्ध हो जाए। हो सकता है, कोई शून्य आकाश को देखते–देखते स्वयं भी शून्यवत हो जाए। हो सकता है, कोई गुरु के चरणों में झुक कर उस अवस्था को प्राप्त कर ले।

मुख्य बात इतनी है कि हमारे भीतर जो गलत तादात्म्य है, अहंकार से, वह छूटे

ताकि सही तादात्म्य, चैतन्य से वह जुड़ सके। कुछ लोग सीधी साधना भी करते हैं, चैतन्य से तादात्म्य बनाने की, तोड़ने की फिक्र नहीं करते, उसमें भी सफलता हासिल हो जाती है। वे अहंकार की बात का ख्याल ही नहीं करते। सीधा अपने ओंकार में डुबकी लगाते हैं, अपने को चैतन्य रूप में जानते हैं। जिस दिन वह तादात्म्य फलित हो गया, अहम् का तादात्म्य अपने आप छूट जाएगा। लोगों ने उस परम मंजिल तक यात्राएं भांति-भांति तरीके से की हैं। सभी मार्ग सही हैं, क्योंकि उनसे लोग पहुंचे हैं। जो अधिकांश लोगों की पकड़ में आ सकता है, वह है शिष्य-गुरु के संबंध द्वारा। क्योंकि गुरु भी हमारे जैसा ही व्यक्ति है, देहधारी है और उसमें विदेही चैतन्य की झलक भी हैं। गुरु दोनों का संगम है, अन्य बातें जरा सूक्ष्म हैं। पत्थर की मूरत बिल्कुल ही जड़ है। उसमें चैतन्य का भाव करना... कोई अत्यंत भावप्रधान व्यक्ति ही कर सकता है। सब लोग तो यह नहीं कर पाएंगे।

आपको पता है आप भी बाजार में मूर्ति की दुकान में ऑर्डर दे कर आए थे कि फलाने-फलाने देवता की मूर्ति बना देना, ऐसी-ऐसी मूर्ति चाहिए, चार-छः मूर्तियों में से आपने एक मूर्ति पसंद की और उसके अनुसार पेमेंट किया, उसे आप अपने घर ले आए। आपको भली-भांति पता है कि यह पत्थर था पहले। मूर्तिकार को पैसे दिए, उसने छेनी-हथौड़ी चला कर सुन्दर रूप उभार दिया। आपकी खरीदी हुई चीज है, अगर आप बहुत भावप्रधान हों तो यहां भी अपना अहंकार अर्पण कर सकते हैं। मामला जरा कठिन होगा, ऐसा सर्व-सुलभ तो नहीं हो पाएगा। आप को पता है कि यह हमारा ही खरीदा हुआ खिलौना है। हम जहां चाहे वहां रख दें, दिल चाहे उठा कर फेंक दे। अगर नास्तिक विचार हुआ तो उठाकर नदी में फेंक देंगे। यह आपकी ही मूर्ति है, आप ही उसके मालिक हैं।

समर्पण करना जरा कठिन है। शास्त्रीय सिद्धांत कितने ही महान लगें, आप सुरों को कितना ही हृदयंगम कर चुके हों, आप जानते हों कि यही परम सत्य है, फिर भी कहीं न कहीं शक या संदेह बना ही रहेगा। पूरी तरह अर्पित हो नहीं सकते, विशेषकर आज के युग में। पुराने जमाने में संभव था क्योंकि यातायात के साधन नहीं थे, किताबें नहीं थीं, छापाखाना नहीं था, इंटरनेट नहीं था, जो व्यक्ति जिस गांव में पैदा हुआ है उसका निन्यानवे प्रतिशत जीवन वहीं बीतता था। उसी छोटे से गांव में, अगर हिन्दू हैं तो सभी हिन्दू हैं। उनको पता ही नहीं कि इसके अलावा भी अन्य कोई धर्म होता है। एक पंडित है वहां, वह जो बातें समझाता है वही सब समझे हुए हैं, वही उनके अवचेतन में समा गई और बहुत गहरी धारणा बैठ गई। इसके विपरीत भी धारणाएं हैं दुनिया में, इसका पता ही नहीं था। तो कोई शक, संदेह भी पैदा नहीं होता था। बड़े आराम से हम अपने अवचेतन मन का सहयोग लेकर उस धारणा के मुताबिक अपने जीवन को ढाल

सकते थे और बहुत लोगों ने ऐसा किया भी और शांति को, ध्यान को उपलब्ध भी हुए। एक ही तरह की धारणा उनको पता थी, उससे विपरीत तर्क उन्होंने पहले कभी सुना ही नहीं था, न ही ऐसा कोई अवसर था। अधिकांश लोग गैर पढ़े–लिखे थे, इतनी बड़ी–बड़ी बातें वे समझ ही नहीं सकते थे। कोई संदेह कर भी नहीं सकते थे। गांव में दो–चार लोग बड़े पढ़े–लिखे थे। ब्राह्मण परिवार के थे, वही पंडित थे, सम्मानित थे, उनके प्रति सम्मान का भाव अवचेतन मन में बैठा हुआ था कि वे जो कह रहे हैं ठीक ही कह रहे होंगे। सहज ही श्रद्धा का भाव था और उस सहज श्रद्धा के चलते बहुत कुछ हो जाता था।

कोई साधु आ गया गांव में, सारे लोग इकट्ठे हो गए उसे सुनने के लिए, दर्शन करने के लिए और उसने जो कहा, सबने हृदय से ग्रहण कर लिया और अधिकतर लोग उसका अच्छे से पालन कर पाएंगे, साधु के प्रति बहुत सम्मान था। उसने जो कहा ठीक ही कहा होगा। आज स्थिति वैसी नहीं है। आज किसी को साधु वेश में देखो, लोग कहेंगे कि अच्छा, ये हैं ढोंगी बाबा! लोग इंतजार कर रहे हैं कि कब इनका पाखण्ड उजागर हो? कब ये जेल में पहुंचें? अब धारणा बदल गई है। सहज सम्मान प्रवाहित नहीं होता, किसी के भी हृदय से प्रवाहित नहीं होता है। हमने इतनी उल्टी–सीधी बातें सुन ली हैं, जान ली हैं, बड़े–बड़े अपराधों में हमने आदरणीय लोगों को फंसा पाया है। वे लोग अपने आप को बड़ा संन्यासी कहते थे, उनपर अब हम कैसे भरोसा करें?

और अब आपके गांव में एक अकेला मंदिर ही नहीं है, चर्च भी खुल गया है, मस्जिद से भी आवाज आती है, गुरुद्वारा भी है, जैन मंदिर भी है, गुरु की किताबें भी आपने पढ़ लीं, ज्ञान का बड़ा विस्फोट हुआ है। चाहे आप नहीं हो ईसाई लेकिन फिर भी आपको ईसाई धर्म के बारे में काफी कुछ पता है। अभी जितने लोग यहां बैठे हैं इनमें से आधों के बच्चे किसी क्रिश्चियन स्कूल में पढ़े होंगे। बाहर निकलते–निकलते वे नाममात्र के ही हिन्दू रह जाएंगे। अधिकांश क्रिश्चियन धारणाएं उनके मन में प्रविष्ट हो चुकी होंगी। लम्बा समय होता है स्कूलिंग का, बहुत विपरीत बातें हमको पता हो गई हैं, इसलिए कोई भी बात हमारे भीतर गहराई में नहीं बैठती।

अब आप कृष्ण मंदिर के सामने उतनी आसानी से नहीं झुक सकते जैसा आपके पूर्वज झुकते रहे। आपको पता है, हमारे देश में जैन धर्म पैदा हुआ है और वे मानते हैं कि कृष्ण महापापी थे। इन्हीं की वजह से महाभारत का भीषण युद्ध हुआ, इतना खून–खराबा हुआ। उन्होंने कृष्ण को अंतिम नरक में डाल रखा है।

तर्क करोगे तो जैन फिलॉसफर ही जीतेंगे, याद रखना। जो बाद में आए हैं, उनके तर्क ज्यादा प्रबल होते हैं। कृष्ण के दो–ढाई हजार साल बाद आए जैन। वो ज्यादा रिफाइंड आर्गुमेण्ट लेकर आएंगे, उनसे जीत नहीं पाओगे। और बाद में जो आएंगे

फिलॉसफर्स, उनकी और तीखी धार होगी बुद्धि की। तभी वे पुराने को पराजित करके कुछ नया साबित कर पाते हैं। आप कितना ही मानो कि ईश्वर है, आपको भली–भांति पता है, आधी दुनिया नास्तिक हो चुकी है, कम्युनिस्ट होने के दौर से गुजर चुकी है। वे लोग भी मजे से जी रहे हैं। अब आपकी बात में दम नहीं हो सकता कि सब ईश्वर की कृपा से हो रहा है या आपकी प्रार्थनाओं के परिणाम हो रहे हैं। आप से ज्यादा बेहतर स्थिति में वे लोग रह रहे हैं जो कोई प्रार्थना नहीं करते, जिन्होंने चर्च और मस्जिदें गिरा दीं, जहां कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर खुल गए। आश्चर्य है! वहां कोई प्रार्थना नहीं कर रहा है, वहां उनके देश उन्नति कर रहे हैं। वे ज्यादा सुख–सुविधा में जी रहे हैं, वे सम्पन्न हो रहे हैं। जो प्रार्थना कर रहे थे हजारों–हजारों साल से, वे दीन–दरिद्रता में रह रहे हैं। अब आपकी प्रार्थना विनम्र हो नहीं सकती, आपको सारी दुनिया की खबरं है। अलग–अलग देशों में, अलग–अलग कालों में, भिन्न–भिन्न जगहों पर, अलग–अलग धारणाएं प्रचलित रही हैं।

जब आप किसी संत की वाणी सुनते हैं, याद रखिएगा इन सब बातों के शाब्दिक अर्थ नहीं पकड़ें, उपमा स्वरूप लें। जैसे कि आंखें निकाल कर रख दूंगा गुरु के चरणों में। मतलब यह है कि मैं अपनी नजरों से देखना अब बंद कर दूंगा, अब गुरु की दृष्टि से देखूंगा। उनकी समझ, वो जैसी सूझ–बूझ देंगे, वैसा जगत को देखूंगा। अपने मन से, अपने अहंकार को केन्द्र मानकर खूब देख लिया, उससे कुछ लाभ न हुआ। चाहे मूर्ति काम न करे, चाहे शास्त्र और सिद्धांत काम न करें, चाहे मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे व्यर्थ साबित हो जाएं, चाहे प्रार्थनाओं के दिन लद जाएं, गुरु के प्रति समर्पण–भाव अतीत में भी बहुत सफल था, आज भी सफल है और भविष्य में भी सफल रहेगा। क्योंकि यह सब हमारे अनुभव से भी साबित होता है कि हमें हर चीज सीखने के लिए किसी ना किसी मार्गदर्शक की जरूरत पड़ती है। बचपन में मां को बोलते हुए सुना, पिता तो अक्सर चुप रहे हैं इसलिए पिता का नाम नहीं ले रहा हूं। इसलिए 'मदर टंग' बोलते हैं, मातृभाषा। कहीं पितृभाषा सुना है क्या? बाप को बोलने का मौका ही नहीं मिलता घर में। बच्चा मां को ही सुनता है, तो मातृभाषा सीख जाता है। मां उसकी टीचर हो गई, गुरु हो गई। भाषा सिखायी, चलना–फिरना सिखाया, खाना–पीना सिखाया, स्नान करना, अपने को साफ करना सिखाया, कपड़े पहनना सिखाया। हर छोटी–छोटी चींज तो सिखाई गई है।

जरा कल्पना करो, अगर हमें कुछ ना सिखाया गया होता, जंगल में छोड़ दिया गया होता, हम बिल्कुल पशुवत रह रहे होते। हम चार हाथ–पैरों पर चल रहे होते, दो पैर पर खड़ा होना भी नहीं सीखते। किसी ने सहारा दिया है, खड़ा किया है तब चले हैं, अपने आप नहीं चल सकते थे दो पैर पर, कभी नहीं चलते, कभी ख्याल भी नहीं

आता कि ऐसा भी संभव है। जंगल में जानवरों को देखते हो, चार हाथ पैर पर चलते हैं। तो हम भी वैसे ही चलते। कई बार ऐसा हुआ है कि बच्चे को भेड़िया उठा कर ले गया। पंद्रह–बीस साल का हो गया तब वापस मिला, फिर तो उसकी कमर ही सीधी नहीं होती थी। फिर तो कोई उपाय ही नहीं था उसको खड़ा करने का, उसकी हड्डियां, मांसपेशियां दूसरे ढंग से विकसित हो चुकी थीं। और कोई उपाय नहीं था, जो भाषा हम बोलते हैं ऐसे शब्द उसके गले से निकलवाने का। वह तो बस जानवरों जैसी आवाज निकालता था। एक ही आवाज, उसका कण्ठ तो ऐसे ही था जैसा हमारा है। वह तो संयोग की बात थी कि भेड़िया उठा ले गया उसको। जैसा हम बोलते हैं वैसी आवाज उसके कण्ठ से क्यों नहीं निकलती? हमने भी नकल करके सीखा है और उसने भी नकल करके सीखा है। हर छोटी बात तो हमने दूसरों से सीखा। पढ़ना–लिखना सीखा, कि गणित सीखा, कि फिजिक्स सीखा, कि केमिस्ट्री सीखा, कि व्याकरण सीखा, हर चीज तो दूसरों से सीखा। स्कूल–कॉलेज में बीस–पच्चीस साल बिताए, तब जाकर एक 'प्रोफेशनल कैरियर डेवलप' हुआ। हर चीज तो दूसरों से सीखा और उसके बाद भी सीखते ही जाते हैं, सीखते ही जाते हैं। सीखना बंद कहां होता है? हर छोटी–छोटी चीज तो पूछनी पड़ती है। आप किसी पर्यटन स्थल पर घूमने के लिए गए, वहां पर एक गाइड ले लेते हैं साथ में, जो घुमाता है, दिखाता है। तब जाकर आप घूम पाते हैं, चीजें देख पाते हैं, समझ पाते हैं। वह समझाता है। तो अगर कोई आपको न बताए तो वहां आपको कुछ भी पल्ले नहीं पड़ेगा। आप मुश्किल से दस प्रतिशत ही ग्रहण कर पाएंगे अपने आप। एक गाइड साथ में हो तो बहुत सी चीजों का पता हो जाता है। हम ड्राइव कर रहे हैं, चौराहे पर खड़े होकर पान के ठेले पर पूछ लेते हैं, फलां–फलां रास्ता कौन सा है? वह बता देता है, आप चले जाते हैं।

तो हर पल तो हमें सीखने की जरूरत पड़ती है, पूछने की जरूरत पड़ती है। ऐसे आप रास्ता नहीं खोज सकते। खोज लेंगे लेकिन बहुत समय लगेगा। हर रास्ते पर जाना पड़ेगा फिर लौट कर आना पड़ेगा कि गलत पहुंच गए, फिर चौराहे पर वापस लौटना पड़ेगा। अपने आप भी मिल जाएगा लेकिन बहुत समय बर्बाद होगा। किसी से पूछ लेते हैं, वह बता देता है स्टेशन किस रास्ते पर है? कितनी दूर होगा? कहेगा पांच किलोमीटर, और पूछ लेते हैं तो वह कहेगा कि थोड़ी दूर जाकर वहां से बाएं मोड़ना, फिर एक किलोमीटर दूर है। आप अपने आप भी पहुंच सकते हैं लेकिन वह ट्रेन छूट जाती जो आप पकड़ने जा रहे थे, वह कभी नहीं मिलती।

छोटी–छोटी बात में हम सहयोग लेते हैं, लेना पड़ता है। आप बीमार होते हैं, डॉक्टर के पास जाते हैं, आपको उसके ज्ञान पर भरोसा है। उस क्षेत्र में आपको ज्ञान नहीं है। आपको किसी से जानना ही पड़ेगा। मकान आपको बनवाना है, आप

आर्किटेक्ट की मदद लेते हैं, इंजीनियर की मदद लेते हैं, ठेकेदार की मदद लेते हैं। वे अपने–अपने काम में एक्सपर्ट हैं, आप इतना अच्छा नक्शा नहीं बना सकते। हां आप आर्किटेक्ट को बता दें आपको क्या–क्या चाहिए? लेकिन वह जो डिजाइन बनाएगा वह लाख गुना बेहतर होगी। वह अनुभवी है उस मामले में। तो हर छोटी चीज में तो हमें सलाहकार की जरूरत है, वकील की सलाह चाहिए, इनकम टैक्स के लिए मशविरा चाहिए, सी.ए. की मदद चाहिए। हमारी हर छोटी–छोटी चीज किसी की मदद से होती है। इसलिए यह बात हजम करना बहुत आसान है कि जब हम अध्यात्म की यात्रा पर जाएंगे तो नैचुरली जहां हमें ए, बी, सी, डी का पता नहीं है और कोई नक्शा भी नहीं है, तो किसी न किसी प्रकार की मदद तो लेनी ही पड़ेगी। इसलिए गुरु शिष्य संबंध ही सर्वाधिक कारगर रहा है, मंजिल पर पहुंचाने वाला रहा है, अभी भी है, और भविष्य में भी रहेगा। इसका कोई विकल्प न हो सकेगा। यह संभव है कि आपको चौराहे पर पान वाले से न पूछना पड़े। बाहरी चीजों के ज्ञान के लिए बाहरी उपकरण बन सकते हैं। हो सकता है मेडिकल साइंस इतनी विकसित हो जाए, इंटरनेट पर सारी सुविधा उपलब्ध हो जाए, आप अपने लक्षण देखते जाओ कि यह है तकलीफ ताकि नेट पर प्रश्न आते जाएं, उसको टिक करते जाओ 'हां' या 'ना' में। और आगे यह भी आ जाए लिस्ट कि ये टेस्ट करवा लो। टेस्ट करवा लिया और रिर्पोट उसमें फीड कर दी। बस 'लाइन ऑफ ट्रीटमेंट' लिखा आ गया। यह संभव है। क्योंकि डॉक्टर भी एक कम्प्यूटर का ही काम कर रहा है, उसमें सारी सूचनाएं डाल दी गई हैं। मैं मानता हूं यह भी हो जाएगा एक दिन, डॉक्टर की जरूरत ही न पड़े। अधिकांश चीजों में न पड़े, ये सब यांत्रिक काम हैं, मशीनें भी कर सकती हैं।

लेकिन अध्यात्म की यात्रा में कोई उपकरण काम नहीं आएगा। यह कोई स्थूल बात नहीं है। अध्यात्म में तो कोई जागृत व्यक्ति ही अगर मदद करे तभी बात बन पाएगी। हर व्यक्ति के लिए अलग बात होगी। इसलिए गुरु की महिमा सभी संतों ने गायी है। इसको खूब अच्छे से समझना, इसका महत्त्व कभी भी कम नहीं होगा। और गुरु की महिमा में भी छुपा हुआ सूत्र मैं बता रहा हूं। यह उतना महत्वपूर्ण नहीं है गुरु का होना, जितना महत्त्वपूर्ण शिष्यत्व का भाव है। क्योंकि उससे निर–अहंकारिता फलित होती है। वह जो अहंकार के आवरण से तादात्म्य टूटा, अपनी परिधि से तादात्म्य टूटा, तो अपने केन्द्र का अहसास होना शुरू होता है। वरना हम परिधि को जोर से पकड़े हुए हैं। भीतर अपनी सत्ता का अहसास ही नहीं होता है कि वास्तव में मैं कौन हूं? क्योंकि हम जिस नकली 'मैं' को 'मैं' कह रहे हैं उसी में तृप्त हैं। उसी को 'मैं' मान कर तो खोजबीन भी शुरू नहीं होती।

हम गुरु चरणों में अर्पित हो जाते हैं, अपना अहम् गिरा देते हैं, अब गुरु की

आंखों से ही देखेंगे, अब उसकी आज्ञा से ही चलेंगे, अब उसकी समझ ही हमारे पथ का प्रदीप होगी। तो हमने अपना ज्ञान त्यागा, हमने अपनी बुद्धि को दरकिनार किया। पहली बार एक वैक्यूम, एक शून्यता निर्मित हुई। उस शून्यता में, अंतर आकाश में, फिर हम गति करने लगते हैं।

तो असली बात निरअहंकारिता के भाव का होना है जो किसी विरले को ही मूर्ति के द्वारा हो सकता था। किसी विरले को शास्त्रीय सिद्धान्त से भी हो सकता था। आज के युग में यह लगभग नहीं ही हो सकता, लगभग नहीं। लेकिन गुरु की मदद लेने से यह निर–अहंकारिता अपने आप आती है, हम सीखने वाले हो जाते हैं, हम झुक कर ग्रहण करने वाले हो जाते हैं। और जो असली बात घटती है वह हमारे अर्पण से घटती है। सद्‌गुरु मौजूद ही हों, चाहे गौतम बुद्ध ही बैठे हों। और कोई व्यक्ति अहंकार से भरा हुआ है और समर्पित नहीं होता है तो उसके संग कुछ भी नहीं हो सकेगा। स्वयं भगवान राम मौजूद हों, और कोई सीखने को तैयार ही नहीं है तो वह भी क्या करेंगे? कृष्ण से कोई सीखने को राजी ही न हुआ, पूर्ण अवतार थे, कोई कमी न थी। अन्य सभी अवतार अंश अवतार हैं। एक पक्ष प्रकट हुआ है प्रभु का, मगर कृष्ण में प्रभु बहुआयामी ढंग से प्रकट हुआ है। लेकिन कोई सीखने को राजी हो तब ना! असली बात क्या हो गई? असली बात शिष्यत्व हो गई, निरअहंकारिता हो गई। अब दुर्योधन जो लड़ने के लिए खड़ा है वह क्यों सीखेगा कृष्ण से? वह तो कृष्ण को दुश्मन की भांति देख रहा है। उसका कोई भला न हो सकेगा।

तो अकेले सदगुरु के हाथ में नहीं है कि वे किसी का भला कर दें। वस्तुतः यह शिष्य की ही खूबी है कि वह अपना अहंकार छोड़ने में कामयाब हो गया। गुरु की उपस्थिति में, एक कैटेलेटिक एजेंट की तरह गुरु ने कार्य किया, और वह व्यक्ति अहम् शून्य हो गया। और उस अहम् शून्यता में अपने भीतर की पूर्णता को उसने जान लिया। इस दृष्टि से देखेंगे तो गुरुओं से भी ज्यादा महत्व शिष्य का हो गया। कई बार तो ऐसा भी हुआ कि गुरु कोई वास्तव में गुरु भी न थे। किन्तु शिष्य सचमुच में शिष्य था। और उसने परम मंजिल को पा लिया। गुरु शायद नकली गुरु ही रहे हों, पर उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तब तो पत्थर की मूर्ति के आगे भी बात बन जाती है।

आओ, सद्‌गुरु के प्रति अर्पण के भाव में डुबकी मारें, इस प्यारे शबद के संग मस्ती में डोलें। श्रद्धा से भरें। जय ओशो!

गुरु से भेंट : महासौभाग्य

गुरु पूरा भेटिओ वडभागी मनहि भइया परगासा।
कोईन पहुचनहारा दूजा अपुने साहिब का भरवासा।। 1।।
अपुने सतिगुर कै बलिहारै।
आगै सुखु पाछै सुखु सहजा घरि आनंदु हमारै।। रहाउ।।
अंतरजामी करणैहारा सोई खसमु हमारा।
निरभउ भए गुरचरणी लागे इक राम नाम आधारा।। 2।।
सफल दरसनु अकाल मूरति प्रभु है भी होवनहारा।
कंठि लगाइ अपुने जन राखे अपुनी प्रीति पिआरा।। 3।।
वडी वडिआई अचरज सोभा कारजु आइआ रासे।
नानक कउ गुरु पूरा भेटिओ सगले दुख बिनासे।। 4।।

प्रिय साधक–साधिकाओं, इन छोटे–छोटे वचनों में बहुत महत्त्वपूर्ण सूत्र छुपे हुए हैं, इन्हें ठीक से हृदयंगम करना। सबसे पहली बात– बड़े भाग्य से, महासौभाग्य से गुरु से भेंट होती है।

'गुरु पूरा भेटिओ वडभागी।'

ऐसा क्यों होता है कि बहुत कोई विरला व्यक्ति ही सद्‌गुरु की शरण जा पाता है। इसके कारण को थोड़ा समझें। पहली बात, हजारों लोग संसार में हैं, उनमें से किसी, यदा–कदा किसी एक–दो के मन में धर्म की जिज्ञासा उत्पन्न होती है। अधिकांश लोग संसार की चीजों में ही व्यस्त हैं। परमात्मा की खोज करनी है, आत्मज्ञान हासिल करना है, भीतर शांति और आनन्द को पाना है, यह बात ही नहीं सूझती।

उन्हें लगता है कि बेहतर मकान मिल जाए तो शांति हो जाएगी, दुकान और थोड़ा ठीक से चलने लग जाए तो आनन्द हो जाएगा, घर परिवार और अच्छे से बस जाए, बस सुख ही सुख हो जाएगा। वे तो बड़ी माया और भ्रम में जी रहे हैं। इसलिए हजारों–हजारों में कोई एक–दो लोग होते हैं जिनके भीतर वास्तविक अध्यात्म की प्यास उत्पन्न होती है। यह है पहली कठिनाई।

दूसरी कठिनाई जब जिज्ञासा पैदा होती है, खोज शुरू होती है तो हमारे चारों तरफ जो चल रहा है, समाज में, हम उसे देखते हैं। छोटा बच्चा देख–देख कर ही सीखता है। वह अपने आसपास देखता है कि जिन्हें धर्म की जिज्ञासा है वे मंदिर जाते, मस्जिद जाते, चर्च और गुरुद्वारा जाते, तीर्थ स्थान पर जाते, गंगा स्नान करते... ये स्थूल बातें छोटे बच्चे को समझ में आती हैं। जितनी कम बुद्धि हो उतनी स्थूल बात, मोटी बात पकड़ में आती है, सूक्ष्म बात समझ में ही नहीं आती।

तो धर्म की जब जिज्ञासा उत्पन्न होती है, तो सबसे पहले यही लगता है कि चलो मंदिर–मस्जिद की तरफ चलो, तीर्थ करने चलो, हज करने, यही सबसे स्थूल उपाय नजर आता है कि शायद इस विधि परमात्मा मिल जाए। हमारे मन में धारणा है कि कहीं तीर्थ स्थान में बसता होगा, कहीं किसी मंदिर में, मठ में, आश्रम में मौजूद होगा। हम वहां खोजने पहुंच जाते हैं। निश्चित रूप से पहली सीढ़ी यही होगी।

जैसे शिक्षा प्रणाली में सीढ़ी दर सीढ़ी हम पढ़ाई–लिखाई करते हैं– पहले के.जी. स्कूल, फिर वहां से उत्तीर्ण हो गए तो प्राइमरी स्कूल, फिर वहां से निकले मिडिल स्कूल, फिर हाई स्कूल, स्वभावतः हर स्कूल में कुछ लोग छूटते जाएंगे। थोड़े से लोग आगे बढ़ेंगे। कुछ लोग हाई स्कूल से आगे जाएंगे, कॉलेज ग्रैज्युएशन करेंगे, कुछ और आगे जाएंगे, युनिवर्सिटी पोस्ट ग्रैज्युएशन करेंगे। कुछ और आगे जाएंगे, डॉक्टरेट करेंगे। गिनती कम से कम, और कम होती चली जाएगी।

अगर प्राइमरी स्कूल में दस हजार बच्चे हैं तो शायद दस बच्चे बड़े होकर डॉक्टरेट तक पहुंच पाएंगे बस। नौ हजार नब्बे कहीं रास्ते में छूट जाएंगे।

जब साधारण शिक्षा इतनी मुश्किल है तो अध्यात्म की सूक्ष्म शिक्षा तो और भी मुश्किल होगी! तो पहली क्लास के.जी.क्लास, वो है स्थूल मूर्ति पूजा, मंदिर–मस्जिद, तीर्थ स्थान, हज, गंगा स्नान इत्यादि। हर धर्म में अलग–अलग स्थूल बातें हैं। जो व्यक्ति इनको करता है, उसे लगता है कि ऐसा करके धर्म पूरा हो गया। जो थोड़ा और समझदार है, बुद्धिमान है, धीरे–धीरे उसे अनुभव में आता है कि बात कुछ बन नहीं रही। शुरुआत तो हो गई लेकिन बस अटक गए; पूरी बात हो नहीं रही। वह शांति और आनन्द का खजाना जो मिलना चाहिए, जो ब्रह्मज्ञान हासिल होना चाहिए, वह नहीं हो रहा। फिर क्या करे? तो थोड़े से बुद्धिमान लोग हैं, जो मूर्ति पूजा से और मंदिर–मस्जिद से मुक्त होकर फिर दूसरे चरण में पहुंचेंगे; ग्रंथ, शास्त्र, सिद्धांत, अध्ययन, मनन, स्वाध्याय, तर्क–वितर्क ये जरा सूक्ष्म बात है। थोड़े से ही लोग इसमें रस लेंगे। ये बुद्धिमान लोग हैं, कम से कम ये के.जी. पास हैं। प्राइमरी स्कूल में आए। जो लोग इसमें कई साल लगा देंगे, एक दिन उन्हें समझ में आएगा कि कितना ही शास्त्र पढ़ लो, चाहे ग्रंथ पूरा रट ही लो, कितनी ही फिलॉसोफिकल बातें सुन लो, समझ लो, बात कर लो, कितना ही सोच–विचार कर लो, कुछ होने वाला नहीं। गुरु नानक देव जी ने कहा ना

'सोचे सोच ना होई जे सोचे लख बार।'

इससे भी कुछ हो नहीं रहा, बात बन नहीं रही। पाक शास्त्र की किताब पढ़ कर कहीं भूख मिटती है! कुकिंग बुक में खूब अच्छी–अच्छी रेसिपी लिखी है। हम कंठस्थ भी कर लें, सब याद कर लें, फिर भी हमारी भूख तो ना मिटेगी। किसी बहुत प्रसिद्ध कलाकार ने सूरज की बहुत सुन्दर पेंटिंग बनाई, करोड़ों रुपये कीमत की सूर्योदय की पेंटिग की, लेकिन क्या उससे हमारे घर में प्रकाश हो जाएगा?

आप रात को अपने अंधेरे कमरे में करोड़ों रुपये की सूरज की पेंटिंग रख लें, घर में रोशनी नहीं होगी, जरा सी भी नहीं होगी। उससे तो अच्छा एक जुगनू भी होता तो ज्यादा चमकता। ये करोड़ों रुपये की सूरज की पेंटिंग किसी काम की नहीं। लेकिन ये भी उसी को समझ में आएगा जिसने इस दिशा में मेहनत की है।

तो हजारों में से कोई एक धर्म का जिज्ञासु। उन सैकड़ों जिज्ञासुओं में से अधिकांश तो मंदिर–मस्जिद, तीर्थ स्थान में अटक जाएंगे, वे उसी को सब कुछ समझ लेंगे। उन हजारों में से कोई एकाध शास्त्र, ग्रंथ, स्वाध्याय, चिंतन, मनन, सोच, विचार इसमें जाएगा। फिर इनमें हजारों में से किसी एक को समझ में आएगी बात कि–

'सोचे सोच ना होई जे सोचे लख बार।'

ये बात भी काम नहीं आ रही; जिसके बारे में हमें कुछ पता ही नहीं है, उस अज्ञात

प्रभु के बारे में हम क्या सोचेंगे? हमारा सोच–विचार हमें वहां तक नहीं ले जा सकता। लेकिन जब सोच–विचार करोगे तब ही ये पता चलेगा। सालों–साल गंवा कर पता चलेगा। जिसने किया ही नहीं है उसके मन तो ख्याल रहता है कि शायद ऐसा करने से हो जाएगा। जब तुम मेहनत करोगे तब पता चल जाएगा कि फल तो कुछ आया नहीं। तब अगली क्लास में व्यक्ति पहुंचता है। मूर्ति पूजा भी गई, सब शास्त्र और सिद्धान्त भी गए और अब वह और आगे बढ़ता है। वह सोचता है कि मैं स्वयं ही कुछ करूं।

अब साधना की शुरुआत होती है। एक बात तो पक्की हो गई कि ना मंदिर–मस्जिद से मिला, ना ग्रंथों से मिला, ना सिद्धान्तों से मिला। फिलॉसफि में उलझ कर दिमाग जरूर खराब हो गया और सुलझा कुछ भी नहीं। अब कुछ साधना की जाए। तब व्यक्ति खुद कुछ करने की सोचता है। लेकिन वो खुद क्या करेगा। अज्ञानी अपने अज्ञान में जो भी करेगा वो खुद भी अज्ञान पूर्ण ही होगा। उसे ज्ञान नहीं है यही तो मुश्किल है। समझ नहीं है यही तो मुसीबत है। उस नासमझी में वो जो भी करेगा, अपने आप, वह भी नासमझी भरा होगा। उससे भी कुछ हासिल होने वाला नहीं है। लेकिन इसमें बहुत समय लग जाएगा, कई लोगों का पूरा जन्म बीत सकता है इसी में।

कोई तपस्या कर रहा है, कोई आसन कर रहा है, कोई प्राणायाम साध रहा है, कोई व्रत उपवास कर रहा है, अपने आप कुछ करना शुरू कर दिया। अध्यात्म की साधना इतनी सुगम और सरल नहीं है कि हम खुद अपने आप समझ लें। जिन्दगी की छोटी–छोटी बातें तो हम अपने आप ना समझे, स्कूल में पढ़ते थे फिजिक्स और केमेस्ट्री तो एक टीचर की जरूरत पड़ी जो प्रैक्टिकली करके हमें सिखाए और बताए तब हम जाकर समझे अपने आप तो नहीं समझ गए किताब पढ़ कर।

जो व्यक्ति स्वयं अपने बल–बूते पर कुछ करने की कोशिश करता है वो भी बुरी तरह उलझता है। फिर सालों–साल लगेंगे तब जाकर ये बात एक दिन क्लिअर होगी कि मैं जो कुछ भी कर रहा हूं यह भी काम नहीं आ रहा। फिर क्या करें?

कल रात्री हम चर्चा कर रहे थे कबीर साहब के वचन की 'मेरी–मेरी करत है', जन्म गंवा रहे मेरी–मेरी करते हुए। चौथे स्टेप पर पहुंच कर साधक को लगता है जिसको मैं मेरा, मेरा कह रहा हूं, शायद इसको छोड़ दूं। इसका उल्टा–उल्टा करूं, बाहर के लोग जो कर रहे हैं ठींक उसका विपरीत करूं तब शायद परमात्मा मिल जाए। उसका अनुभव उससे कहता है कि संसार में तो मैं माया, मोह में पड़ा रहा, मेरे, मेरे की दौड़ करता रहा, ये पा लूं, वो पा लूं। चार मुख्य दिशाएं धन, पद, प्रेम और ज्ञान– इन दिशाओं में मैं लगा रहा।

अब इससे उल्टा करूं तब धर्म के चार रूप, इनके ठीक विपरीत रूप, प्रकट होते हैं। जो व्यक्ति धन का लोलुप था वह सोचता है दान कर दूं तो बात बन जाएगी क्योंकि

धन की वजह से ही मैं उलझा। वो धन का दीवाना था अब वो दान करने लगा, बांटने लगा। लेकिन ना तो धन पाने से परमात्मा मिलता है और ना धन छोड़ने से परमात्मा मिलता है।

परमात्मा के साथ कोई सौदेबाजी थोड़े ही हो सकती है कि मैंने इतने लाख रुपये दान कर दिए, परमात्मा को मिलना ही पड़ेगा। वो किसी व्यापार या बाजार का हिस्सा नहीं है। दानी आदमी कहीं ना कहीं ईश्वर को ही खरीदने चला। संसार में उसने धन के द्वारा अन्य वस्तुएं खरीदी थीं। अब उसे लगता है कि धन ही छोड़ दूं। सब त्याग दो। शायद परमात्मा मिल जाए।

ऐसा करके ही पता चलेगा इससे भी प्रभु के दर्शन नहीं होते। धन से कोई संबंध ही नहीं है परमात्मा का। वो जो व्यक्ति शक्ति का दीवाना था, पद का लोलुप था वो अपनी शक्ति अपने ऊपर ही आजमाना शुरू का देता है। पहले वो अपनी शक्ति के द्वारा दूसरों को दबाता था, दूसरों का शोषण करता था, दूसरों को परेशान करता था, दूसरों के ऊपर शासन करने की कोशिश करता था; अब वो पलट कर अपनी ताकत अपने ही ऊपर इस्तेमाल करने लगता है। वो स्वयं के प्रति बहुत कठोर हो गया, काया क्लेश करने लगा, अपने को कष्ट देने लगा।

दुनिया में भांति-भांति के साधु संन्यासी मिल जाएंगे अपने आप को तकलीफ देते हुए। कोई कांटों की सेज पर लेटा है, कुंभ के मेले में जाना, पूरा सर्कस वहां संन्यासियों का नजर आएगा। कोई शीर्षासन कर रहा है, कोई उल्टा खड़ा है सिर के बल, कोई खड़े श्री बाबा है, पता चला पिछले पंद्रह साल से खड़े ही हुए हैं। बैठते नहीं, लेटते नहीं, सिर्फ खड़े हैं। अपने आप को सताना शुरू कर दिया।

ये वही आदमी है, शक्ति का लोलुप; पहले दूसरों के ऊपर शक्ति का इस्तेमाल करता था, अब पलट कर अपने ही ऊपर कर रहा है। हम इसको कहते हैं तपस्वी। कोई उपवास कर रहा है, लंबे समय तक भूखा और प्यासा रहकर अपने आप को सता रहा है। ये है वही सताऊ आदमी, पहले दूसरों को सताता था अब इसने अपने आप को सताना शुरू कर दिया। इसकी हिंसा में कमी नहीं हुई। ये पहले परपीड़क था अब आत्मपीड़क बन गया। इसकी वृत्ति वही की वही है, पीड़ा वाली।

तीसरी दिशा थी प्रेम की, यश की, नाम की, प्रतिष्ठा की, अपनत्व की। वे जो लोग व्यक्तियों के पीछे भाग रहे थे, लोगों से संबंध बनाना है, घर गृहस्थी को बढ़ाना है, मित्र, परिवार, संपर्क फैलाने हैं ताकि मेरा नाम हो, यश हो, प्रतिष्ठा हो, वे लोग क्या करेंगे? अब धर्म की सोच कर उल्टी दिशा में कि सबको छोड़ के ही भाग जाओ। समाज, परिवार, कुटुंब सब छोड़ दो; दूर चले जाओ कहीं एकान्त में, किसी से कोई सम्पर्क ना रखो। पहले कह रहे थे मेरी-मेरी, अब ठीक उल्टा करने लगे। जिस-जिस

चीज को मेरा कह रहे थे उससे दूर भागने लगे लेकिन याद रखना वो जो दूर भाग रहा है त्यागी–तपस्वी उसकी नजर भी है 'मेरे' पर।

स्वामी राम हुए, एक अद्‌भुत संन्यासी पिछली सदी में, सारे विश्व में उन्होनें भ्रमण किया। अमेरिका में उनको बहुत सम्मान मिला। वेदान्त के अद्‌भुत ज्ञानी थे, बहुत सुन्दर व्यख्यान करते थे। अमेरिका में बहुत उनका प्रभाव पड़ा। जब वे वापिस भारत लौटे हिमालय में कहीं छोटी झोपड़ी में रह रहे थे। उनके साथ उनके प्रिय मित्र सरदार पूर्ण सिंह थे वे रहा करते थे। अमेरिका यात्रा में भी वे उनके संग थें। बीस साल पहले अपना घर परिवार छोड़ के चले गए थे स्वामीराम और संन्यासी हो गए थे।

बीस साल के बाद हिमालय में जब वे रह रहे थे तब एक दिन खबर आयी कि उनकी पत्नी पंजाब से दूर गांव से मिलने आयी है। बीस साल के बाद तलाश में शायद पति समझ कर नहीं, महात्मा समझ के ही आ रही हो दर्शन करने, कुछ सीखने ही आ रही हो। ये भी नहीं पता था कि किस उद्देश्य से आ रही है? खबर आयी कि पत्नी आने वाली है और फिर एक दिन उन्होंने देखा खिड़की से दूर पहाड़ी पर चढ़ती हुई पत्नी दिखाई दी।

उन्होंने सरदार पूर्ण सिंह से कहा कि तुम खिड़की बंद कर दो, द्वार बंद कर दो और बाहर बैठ जाओ और पत्नी को मना कर देना मैं नहीं मिलूंगा। सरदार पूर्ण सिंह बहुत हैरान हुए, इस व्यक्ति के साथ कई सालों से थे। उन्होंने कहा, आप कैसी बात कर रहे हैं। हजारों नर–नारी आपसे मिलने आते हैं, सारी दुनिया में आप घूमे हैं, मैं आपके संग रहा हूं, लाखों लोगों से आप मिले हैं। लाखों स्त्रियों से आप मिले है। आपने कभी किसी को इंकार नहीं किया। इस बेचारी स्त्री ने क्या बिगाड़ा है आपका कि इसके लिए आप कह रहे हो द्वार बंद कर दो, मिलोगे नहीं।

सरदार पूर्ण सिंह ने कहा अगर आप अपनी पत्नी के लिए द्वार नहीं खोलोगे और उससे नहीं मिलोगे तो क्षमा करना आज से मैं भी आप को छोड़ कर चला। क्योंकि इससे सिद्ध हाता है कि आपके मन में अभी भी मेरेपन का भाव है। बीस साल हो गए पत्नी को छोड़े, अभी आप को ऐसा क्यों लगता है कि मेरी पत्नी? इसका मतलब मेरेपन का भाव अभी भी मौजूद है। फिर मैं छोड़कर चला। आप के भीतर अभी भी मोह, अटैचमेंट है। ऊपर–ऊपर से तो लगता है कि बीस साल हो गए परिवार को त्यागे भीतर से आपने अभी भी नहीं त्यागा। अन्य स्त्रियों से आप इसके साथ अलग ट्रीटमेंट कर रहे हैं, भिन्न व्यवहार कर रहे हैं इसका मतलब अभी आप मानते हैं मेरी।

स्वामी राम चौंके। उन्होंने धन्यवाद दिया पूर्ण सिंह को और कहा कि तुमने मुझे खूब चौंकाया, जगाया आज मेरे भीतर से जो आखिरी माया का बंधन था। निश्चित रूप से तुम्हारी बात सच है। कहीं ना कहीं भीतर मैं मान रहा था कि मेरी पत्नी है।

अन्यथा इस महिला के साथ भिन्न व्यवहार क्यों? जैसा मैं सबके साथ मिलता हूं, वैसा ही इसके साथ क्यों नहीं मिल सकता? उन्होंने पूर्ण सिंह को धन्यवाद दिया कि आज तुमने मुझे झकझोरा, आज शायद तुम ना होते तो मैं चूक जाता। बड़ी गलती हो जाती। द्वार खोलो, जैसा सबका स्वागत करते हो वैसा ही उसका भी स्वागत करो। मैं मिलूंगा, जरूर मिलूंगा।

तो सामान्यतः हम जहां–जहां मेरापन का भाव लगाए बैठे थे, जब धर्म की जिज्ञासा उत्पन्न होती है, तो हम उसको छोड़ के भागना शुरू कर देते हैं। तो धनवाला दानी हो जाएगा, वो समझेगा दान ही धर्म है। शक्ति का आकांक्षी तपस्वी बन जाएगा वो समझेगा तपस्या करना धर्म है। और ये जो व्यक्तियों से मोह लगा बैठा था, प्रेम के बंधन बांध बैठा था, ये व्यक्तियों को छोड़ कर भाग जाएगा और सोचेगा यह वैराग्य ही धर्म है। यह विरक्ति ही धर्म है। इसको पहले आसक्ति थी व्यक्तियों से, अब विरक्ति हो गई। ये सोचेगा यही धर्म है। नहीं! यह भी धर्म नहीं है। और वो जो ज्ञान का आकांक्षी था, विचारों को दीवाना, सिद्धान्तों के पीछे पागल, जब वो धर्म में उत्सुक होगा तो बुद्धि विरोधी हो जाएगा, वो मूर्खता पूर्ण हरकतें करने लगेगा। ऐसे काम जो तार्किक नहीं हैं.. . वो समझेगा कि यही बुद्धिमानी का काम, यही असली काम हुआ। बुद्धि को उसने छोड़ दिया, अब तर्क वितर्क उसने छोड़ दिए। छोड़े नहीं हैं!

हम जिस चीज को छोड़ के भागते है हम उससे बंधे होते हैं, इस बात को स्मरण रखना। जो व्यक्ति पत्नी को छोड़के भागेगा वो पत्नी से बंधा ही रहेगा। एक सूक्ष्म धागा बंधा हुआ है। जो धन को छोड़कर भागा है, उसकी नजर धन पर ही रहेगी। पाने वाले और भागने वाले, दोनों की नजर उसी चीज पर होती है। जो धन के पीछे दीवाना है वो धन की तरफ दौड़ रहा है। और जो धन का विरोधी हो गया, वो धन की विपरीत दिशा में दौड़ रहा है। लेकिन केन्द्र बिन्दु धन ही है। इस बात को समझना, केन्द्र बिन्दु अभी भी धन ही है। जो स्त्री का दिवाना था वो स्त्री को छोड़ के भाग रहा है। केन्द्र बिन्दु अभी भी स्त्री ही है।

तो ये चार आयाम हैं जहां हम कहते हैं 'मेरा, मेरा' उसी में जीवन गंवाते हैं। फिर धर्म की जिज्ञासा जब उत्पन्न होती है, हम इस 'मेरे, मेरे' के विरोधी हो जाते हैं और इसे छोड़ के भागने की कोशिश करते हैं। तब भी हम इसी से बंधे रहते हैं। छूट तब भी नहीं पाते, लेकिन ऐसा करके ही पता चलता है कि अभी भी परमात्मा ना मिला। ना तो किसी स्त्री से विवाह करने से परमात्मा मिलता है और ना किसी पत्नी को छोड़ के जाने से परमात्मा मिलता है।

परमात्मा का इससे कोई संबंध ही नहीं है। ये धन भी बाहर है, ये शक्ति और पद भी बाहर हैं। पति–पत्नी, पुत्र–पिता का संबंध भी बाहर है और यह ज्ञान, विचार,

सिद्धांत, ग्रंथ, शास्त्र ये सब भी बाहर हैं। और अगर हम बुद्धि के खिलाफ हो गए, मूढ़तापूर्ण हरकतें करने लगे और उसको भी धर्म समझने लगे... याद रखना वो भी धर्म की क्रियाएं हैं। और परमात्मा है हमारे भीतर।

आगे की पंक्तियों में गुरु अर्जुन देव जी उस बात को स्पष्ट करेंगे कि किस परमात्मा की वे बात कर रहे हैं? तो जब धर्म की जिज्ञासा उत्पन्न होती है तो हम इन स्टेजेस से गुजरते हैं। पहला मंदिर–मस्जिद, मूर्ति पूजा। दूसरा ग्रंथ, शास्त्र, सिद्धांत, फिलॉसफी, चिंतन, मनन। तीसरा स्वयं अपनी बुद्धि से कुछ धार्मिक क्रिया–काण्ड करने लगे।

फिर इन सब से असफलता पाकर हम जो संसार में कर रहे थे उसका उल्टा करने की कोशिश करते हैं। वो जो धन, पद, ज्ञान, प्रेम के पीछे दिवाने थे, इनके ठीक विपरीत दिशा में भागना शुरू कर देते हैं, इनको छोड़ना शुरू कर देते हैं और हम समझते हैं दान ही धर्म है। तपस्या धर्म है। त्याग धर्म है। इसके आगे हमारी बुद्धि नहीं चलती। और यह सब करके ही पता चलता है कि परमात्मा नहीं मिला।

अब सवाल उठता है कि क्या करें? जो–जो हम समझ सकते थे, जितनी हमारी औकात थी हम वो सब कर चुके और असफल हो गए। जिस खोज में निकले थे उसके दर्शन ना हुए। अब एक ही बात करने जैसी बचती है कि हम किसी ऐसे व्यक्ति को खोजें, साधु–संगत में जाएं जिससे कोई मिल जाए जिसने प्रभु को जाना हो। अब उससे पूछें, उसका मार्गदर्शन लें। अपने बल–बूते पर जो हम कर सकते थे कर चुके। समाज में जो चल रहा है, प्रचलन में है, वो हम कर चुके।

ना हमें उससे मिला, ना समाज में किसी अन्य को उससे कुछ मिला था। बस ऊपर–ऊपर से ढकोसला था। अब तो सारी बात समझ में आ गई। अब एक ही उपाय बचता है कि कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाए। अब ऐसे व्यक्ति को कहां खोजें? शुरुआत हो सकती है साधु–संगत से। इसलिए साधु–संगत की बड़ी महिमा है, सत्संग की बड़ी महिमा है। वहां चलो जहां सत्संग की चर्चा हो रही है। शायद, शायद ही कह सकते हैं पक्का तो नहीं कह सकते, कि शायद वहां कोई गुरु हो, वहां कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसने जाना है, प्रभु को पहचाना है।

अब उसी से पूछें। वो कुछ मार्गदर्शन करे तो बात बने। फिर यहां भी भटकाव की संभावना है। दुनिया में हजारों–हजारों जगह सत्संग चल रहे हैं। लेकिन वास्तव में सत्य की चर्चा नहीं, वहां भी असत्य की ही चर्चा हो रही है। झूठे कहानी–किस्से, माना की बड़े मनोरंजक हैं, रूढ़ियों के समर्थन में हमारे अहंकार को पुष्ट करने वाले, किन्तु सत्य वहां भी नहीं है। तो कई–कई सत्संगो में जाकर, वहां पर बहुत–बहुत समय लगाकार बा–मुश्किल हम किसी गुरु को खोज पाएंगे, जो स्वयं अपने अनुभव के

आधार पर कहता हो।

शास्त्र की दुहाई देने वाले तो बहुत मिल जाएंगे कि फलाने किताब में ऐसा–ऐसा लिखा है। अब हमें ऐसे व्यक्ति की तलाश है जो कहता हो के मैंने ऐसा जाना है। शास्त्र में क्या लिखा है इससे मतलब नहीं। जो खुद अपने बल–बूते पर कहता हो, जो अपने अनुभव से कहता हो कि मैंने ऐसा स्वयं जाना है और आओ तुम्हें भी जानना है तो तुम्हें भी बता सकता हूं। वह रास्ता दिखा सकता हूं। अब ऐसे व्यक्ति की तलाश करनी होगी।

तो सत्संगों में जाते–जाते, साधुओं के संग उठते–बैठते, धीरे–धीरे कहीं न कहीं बात बननी शुरू होगी। अब कुछ रास्ता पकड़ में आएगा। यहां भी धोखाधड़ी की संभावना है, हजारों झूठे दावे करने वाले लोग भी हैं, सदा–सदा रहे हैं। जहां असली सिक्के चलते हैं वहां नकली सिक्के भी चलते हैं, चलेंगे ही।

जहां एक सद्गुरु है वहां सौ असद्गुरु है। झूठे दावे करने वाले लोग हैं। उनकी कोई कमी नहीं, उनकी गिनती कुछ ज्यादा ही होती है। बाजार में सब कुछ चलता है। इस बड़ी भीड़ में से सद्गुरु को छांटना... उसमें भी बड़ा वक्त लगेगा। देखते हैं कितना कठिन है सद्गुरु तक पहुंचना! पहले तो वो चार स्टेजेस जिनमें दुनिया भटक रही है, पहले उनमें भटकना होगा, खूब–खूब समय गंवाना होगा, अपने अनुभव से सीखना होगा कि ये काम नहीं आते। उसके बाद ही अगला कदम उठता है, साधु–संगत।

अब साधुओं की संगत में तलाशो, शायद कहीं कोई गुरु मिल जाए। फिर उन गुरुओं में खोजो कि सच्चा सद्गुरु कौन है? और उसकी पहचान का उपाय ये है कि सच्चा सद्गुरु जो करने के लिए कह रहा है उसको निष्ठापूर्वक करो, करने के बाद ही पता चलेगा उसने जो कहा वो ठीक कहा कि नहीं कहा।

अगर मैं आप से कहता हूं, कल्याण जाने का रास्ता ऐसा–ऐसा है कि यहां से वहां जाना, फिर दाहिनी तरफ मुड़ना, फिर वहां एक बिल्डिंग पड़ेगी, फिर वहां से बाएं मुड़ जाना। आधा फर्लांग बाद एक चौराहा आएगा, वहां एक कुंआ दिखाई देगा। वहां एक बरगद का वृक्ष है वहां से दाहिने मुड़ जाना।

मैं आपको एक नक्शा बनाकर देता हूं कि कल्याण पहुंचने का रास्ता ये है और आप उस नक्शे को लेकर चलते हैं। अगर वही–वही चिन्ह मिलते हैं जो मैंने बताए थे, तो आप आश्वस्त हो जाएंगे कि नक्शा ठीक है। और अगर थोड़ा बहुत चल कर ही आपको पता चला कि अरे! नक्शे में जैसा लिखा था वैसा तो कुछ मिला ही नहीं... कहा था कि एक स्कूल की बिल्डिंग मिलेगी उसका तो कहीं अता–पता नहीं और फिर कहा था कि बाएं मुड़ने पर एक कुंआ होगा, एक वृक्ष होगा, वो भी कहीं नहीं दिख रहा। इसका मतलब वो नक्शा ही झूठा था और शक पैदा होगा कि जिससे हमने नक्शा पूछा

था, वो भी कल्याण के मार्ग पर अभी तक चला है कि नहीं, ये भी शंकास्पद है। हो सकता है वो खुद ही ना गया हो। उसकी बात झूठ निकली।

लेकिन यह भी आपको चलकर ही पता चलेगा। घर बैठे–बैठे नहीं पता चलेगा। घर बैठ कर आप नक्शे की पूजा करने लगो इससे आपको कुछ अंदाज ही नहीं लगेगा कि नक्शा सही है कि गलत। तो सद्‌गुरु की खोज में शिष्य को यह करना होगा। ईमानदारी से वह करो, पूर्णता से, जो गुरु कह रहा है। पूरे समर्पण भाव से करो। करने के बाद ही सिद्ध होगा, जो परिणाम आए उससे पता चलेगा कि गुरु ने जो कहा था ठीक कहा था कि गलत कहा था।

तो सद्‌गुरु की पहचान कठिन क्रिया है। इतनी आसान बात नहीं है जितना हम समझते हैं। कोई घर–घर, गली–गली और मोहल्ले–मोहल्ले में और हर गांव, कस्बे में सद्‌गुरु बैठे भी नहीं हैं! सब जगह झूठ का जाल फैला ही हुआ है। तलाशना होगा, मेहनत करनी होगी। और मैं आपको गुरु का लक्षण नहीं बता रहा हूं कि गुरु कैसा होता है? क्योंकि हर गुरु अपने ढंग का नया होता है। वो पुराने किसी से मिलता–जुलता नहीं। इसलिए गुरु की परिभाषा नहीं बता रहा कि गुरु कैसा होता है? मैं आपको बता रहा हूं कि आपको शिष्य कैसे होना है? शिष्य होना है पूर्ण समर्पण भाव वाला, पूरे निष्ठापूर्वक, ईमानदारी से श्रम करने वाला, साधना करने वाला, गुरु के कहे पर चलने वाला। ये कसौटी बनेगी गुरु के पहचान की।

तो निश्चित ही सद्‌गुरु के पहचान में कुछ भटकाव भी होंगे, कुछ उलझाव भी होंगे, कुछ मिथ्या और झूठे गुरुओं से मुलाकात भी होगी। कुछ साल इसमें भी बर्बाद होंगे। लेकिन जैसे–जैसे समय बीतेगा, धीरे–धीरे आपकी बुद्धिमत्ता भी बढ़ेगी, आपके भीतर विवेक और प्रज्ञा भी विकसित होगी। और एक दिन आएगा जब गुरु और शिष्य का मिलन होता है। सचमुच में होता है। ये कठिनाई तो शिष्य के तरफ से हुई, अब दूसरी कठिनाई आपको बताता हूं गुरु की तरफ से। वे लोग जिन्होंने परमात्मा को जान लिया उनकी गिनती ही बहुत कम है, यदा–कदा कभी होते हैं। अंगुलियों पर उनकी नाम गिने जा सकते हैं कि इतिहास में कुल इतने हुए हैं।

उन परमात्मा को जानने वाले फिर दो प्रकार के हैं। भगवान बुद्ध कहा करते थे कुछ ज्ञानी 'अर्हत' किस्म के हैं, कुछ ज्ञानी 'बोधीसत्व' किस्म के हैं। अर्हत अर्थात् वे जिन्होंने भगवान को पा तो लिया किंतु वे उस परम आनंद में ऐसे लीन हो गए कि उन्हें संसार की सुध–बुध ही न रही। वे अपने भीतर लवलीन हो गए। उन्हें फिर याद ही न आयी कि दुनिया में और लाखों लोग हैं जो दुख में और कष्ट में भटकते हैं और उनकी मदद करनी है। बा–मुश्किल तो परमानंद मिला। सैकड़ों–सैकड़ों जन्मों की खोज के बाद। उस खोज के बाद किसको याद आएगी दूसरों की!

तो एक बड़ा वर्ग परमात्म ज्ञानी का वो है जो भीतर के ब्रह्मज्ञान में, उस परम आनंद में लवलीन हो गया। फिर उन्हें कुछ सुध–बुध न रही संसार की, अन्य लोगों की याद ही न आयी। भगवान बुद्ध उन्हें कहा करते थे 'अर्हत'। 'हत' का मतलब होता है हत्यारा। 'अरि' का मतलब होता है शत्रु; जिसने अपने भीतर के शत्रुओं का नाश कर दिया। अज्ञान का, मूर्छा का, अहंकार का, काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष इत्यादी ये जो हमारे आंतरिक शत्रु है, षटरिपु, इनकी जिसने हत्या कर दी उसे कहते हैं अर्हत। जैन टर्मिनोलॉजी में अरिहंत कहते हैं। शत्रुओं का हंता, हत्यारा। बौद्ध शब्दावली में अर्हत कहते हैं।

तो ब्रह्मज्ञानियों का एक बड़ा वर्ग तो ऐसा होता है जिनके बारे में हमें कभी खबर ही नहीं मिलेगी क्योंकि वे कभी कुछ बोलेंगे ही नहीं। मौन में डूबकर उन्होंने वह नाम ज्ञान पाया है। अब उस ओंकार में वो ऐसे लवलीन हो गए, उस संगीत में ऐसे खो गए अब कौन बोले? कौन लोगों से जाकर मिले? कौन उन्हें समझाए? वे चुप ही रह जाते हैं, उनका कभी पता ही नहीं चलता।

दूसरा छोटा सा वर्ग है ब्रह्मज्ञानियों का जिन्हें बुद्ध की भाषा में 'बोधीसत्व' कहा जाता है। बोधी शब्द का अर्थ है जिन्होंने परम बोध को पाया और बड़ी करुणा से ओत–प्रोत हुए लोग। इन्होंने आकर संसार के लोगों को अपना ज्ञान बांटा, समझाया, समझाने की कोशिश की, बताने की कोशिश की कि मुझे कैसे मिला? अब इनके साथ एक मुश्किल खड़ी होती है। जब वे बताने जाते हैं कि मुझे कैसे मिला, अन्य लोगों को ऐसा लगता है कि परम्परा के खिलाफ क्रांतिकारी बातें कर रहे हैं। ये रूढ़ियों के खिलाफ हैं। और समाज इनको विद्रोही और दुश्मन की भांति देखता है।

वो जो तथाकथित धर्मगुरु बनकर बैठे हैं मठों में, आश्रमों में, वे नाराज हो जाते हैं। उनको लगता है कि जैसे उनके व्यवसाय के साथ प्रतियोगिता करने आ गया। सत्य बात बोलने वाले व्यक्ति को हजम करना बहुत मुश्किल है। हमारा पूरा समाज झूठा है और हम झूठे लोगों का ही सम्मान कर पाते हैं। जो हमारे जैसे झूठे, हमसे भी बड़े झूठे हैं। इसलिए साधु संन्यासियों में जितने पाखण्डी मिलेंगे इतने झूठे आदमी और कहीं खोजना मुश्किल है। क्योंकि समाज सम्मान ही उन्हीं को देता है जो बिल्कुल झूठे हैं। सच्चे आदमी को सम्मान मिल जाए तो एक चमत्कार ही है। बहुत मुश्किल है।

संत थाहरिया जी जहां–जहां गए, जहां शिष्यगण आने लगे उनसे सीखने, भीड़ इकट्ठी होने लगी, वहीं–वहीं उनके शक्त विरोधी खड़े हो गए। हर जगह दुश्मन निर्मित हो गए और कारण? ... कारण यह है कि उन लोगों को, जो झूठ का व्यवसाय कर रहे थे, उन्हें लगा कि हमारा तो धंधा ही चौपट हो जाएगा। उस जमाने में सिंध प्रदेश में भूत–प्रेत से बहुत डर लगता था। यही पंडित पुरोहितों ने फैला रखा था। मौलवियों ने,

मुल्लाओं ने फैला रखा था भूत–प्रेत के बारे में।

ऐसा डरा रखा था कि शाम होने के बाद, छः बजे के बाद किसी की हिम्मत नहीं थीं कि घर से बाहर निकले। क्योंकि जब भूत–प्रेत से डरोगे तो गंडा ताबीज बंधवाने इन्हीं के पास आओगे। फिर पीर साहब के मजार पर जाओगे, फिर ये आपको मंत्र सिखाएंगे, फिर ये आपको ताबीज देंगे। इनका पूरा धंधा भूत–प्रेतों पर आधारित था। फिर इनके देवीं–देवताओं की उपासना करोगे।

संत थाहरिया समझाते हैं लोगों को कि यह सब झूठ है, कहीं कोई भूत–प्रेत नहीं है। और ये देवीं–देवताओं की उपासना का भी कोई अर्थ नहीं है। इन मंत्रों में कुछ नहीं रखा, ये ताबीज किसी काम के नहीं, तुम व्यर्थ ही डर रहे हो। थाहरिया साहब की यह बात अन्य धर्म के ठेकेदार कैसे हजम करें? जहां–जहां थाहरिया जीं गए, वहीं–वहीं उनके विरोधी, उनके शत्रु निर्मित हो गए।

सारे कट्टरपंथी लोग जो पुरानी परम्पराओं को मान रहे हैं, सालों साल से उनके पूर्वज मानते चले आए हैं, आज अचानक इस सत्य को कैसे स्वीकार करें कि जिस मजार की पूजा कर रहे हैं वो बकवास है। इससे कुछ न होगा। जिन मजारों पर मेले लग रहे हैं, उस मेले में जो दुकानें चल रहीं हैं, क्या उन दुकानदारों को ये बात अच्छीं लगेगीं? कभी नहीं लगेगीं।

थाहरिया साहब के विरोध में भांति–भांति की अफवाहें उड़ाई गयीं, कई झूठे आरोप लगाए गए, बिल्कुल मनगढ़ंत अरोप। ऐसा ही सदा–सदा से होता रहा है। जो भी व्यक्ति सत्य की बात करेगा, सच्चीं बात लोगों को बताएगा तो जहां चार उसके चाहने वाले होंगे चार उसके दुश्मन खड़े होंगे। शायद चार की जगह आठ दुश्मन बन जाएंगे। ऐसा ही सदा–सदा से होता आया है। संतो की किस्मत में यही लिखा है। विरोध, अपमान, झूठीं अफवाहें, झूठे आरोप, यहीं उनकी किस्मत में लिखा है।

तो वो जो बोधीसत्व वर्ग है ज्ञानियों का, जब वह लोगों को समझाने आता है, बताने आता है सच्चा मार्ग तो उसको इन सारीं मुसीबतों से गुजरना है। कुछ लोग ही इनके पास आएंगे। बहुत बड़ी भीड़ कभी भी न आएगी। बड़ी भीड़ तो वहां मंदिर–मस्जिद में, चर्च में, तीर्थस्थानों में, मेला लगाए हुए है। भीड़ को सत्य चाहिए भी नहीं, उनको तो झूठी सांत्वनाएं चाहिए, उनकी बीमारी झूठी है, उनका इलाज भी झूठा ही चलेगा। इसलिए गुरुओं की तरफ से मुश्किल समझना।

समझ लो नब्बे प्रतिशत ब्रह्मज्ञानी तो अर्हत हैं। वे तो कभी कुछ बोलते ही नहीं, उनका तो हमें पता ही नहीं चलता। वे दस प्रतिशत जिन्होंने कोशिश की बताने की, उनके लिए समाज ऐसा वातावरण निर्मित कर देगा, ऐसी आबोहवा कि उनकी इतनी बदनामी हो जाए कि लोगों तक उनकी सच्चीं बात पहुंच ही ना पाए। बीच में इतना भ्रम

खड़ा कर दो। और समाज बहुत मजबूत है। इतनी बड़ी भीड़ करेगी, उसका असर निश्चित रूप से होता है।

एक अकेला आदमी भला क्या करेगा? समाज की भीड़ है, उसके पास शक्ति है। वह जो चाहे सो कर सकता है। वो जो सच्चा ब्रह्मज्ञानी है वो बड़ा अकेला पड़ जाता है। कुछ थोड़े बहुत हिम्मतवर लोग ही उसके शिष्य बन पाएंगे। बहुत हिम्मतवर, बड़े साहसी, बड़े विद्रोही किस्म के। उनको भी समाज का विरोध सहना पड़ेगा। जो उसके लिए तैयार हैं, जो परम्परा से हटकर, कट्टरपंथी भीड़ से हटने को तैयार हैं, वे ही साहस कर पाएंगे सद्‌गुरु से जुड़ने का। सामान्य आदमी बड़ा कायर आदमी है, डरपोक है, वो भीड़ के संग भेड़चाल में चलता है।

इसलिए जब भी कोई नया जीवंत सद्‌गुरु आता है, भीड़ कभी भी उसके पास इकट्ठी नहीं होती। कुछ थोड़े बहुत जो बड़े गहन जिज्ञासु हैं, जो सद्‌गुरु की खोज में हैं, उन्हीं में से कोई पहुंच पाएगा, उसी को बात जमेगी। वो जो कई प्रकार के झूठ परख चुका है उसी को सत्य की बात सत्य जैसी दिखाई देगी। इसलिए सद्‌गुरु बहुत कम होते हैं। होते भी हैं तो हमें पता नहीं चल पाता। क्योंकि समाज उनकी इतनी बदनामी फैला देता है, इतने झूठे आरोप उन पर लगा देता है, ऐसा धुआं खड़ा कर देता है कि अधिकांश लोग फिर देख ही नहीं सकते।

तो शिष्य की तरफ से मैंने आपको कठिनाई गिनायी, गुरुओं की तरफ से कठिनाई गिनायी। इसलिए शिष्य गुरु का मिलन बड़ी विरल घटना है। अब इस पृष्ठभूमि में आप समझ सकते हैं गुरु अर्जुन देव जी का यह कथन–

'गुरु पूरा भेटियो वडभागी।'

कि मैं बड़ा सौभाग्यशाली हूं कि पूर्ण गुरु से मेरी मुलाकात हो गयी। ये तो जन्मों–जन्मों के पुण्यों का फल हो सकता है। इतनी कठिन बात। 'मन ही भयो परगासा।' और मेरे भीतर, मेरे मन में ही प्रकाश हो गया। बड़ी सूझ–बूझ और विवेक की ज्योति जल गयी। इसके पहले मैं अंधकार में ही भटक रहा था। जब मंदिर–मस्जिद में उलझा था तब भी, जब ग्रंथों और सिद्धांतों में उलझा था, चिंतन मनन में तब भी, जब त्याग, तपस्या, दान इत्यादि में लगा था तब भी, जब संसार विरोधी चार प्रकार के धर्मों में उलझ गया था तब भी मैं भटक ही रहा था अंधेरे में। यह तो प्रभु की अद्‌भुत अनुकंपा हुई।

**'गुरु पूरा भेटियो वडभागी।
मन ही भया परगासा।।'**

अब भीतर प्रकाश उत्पन्न हुआ, अब मेरे भीतर सूझ–बूझ, जिसे हम कहते हैं विज्डम, विवेक का जन्म हुआ।

'कोईन पहुचनहारा दूजा।
अपुने साहिब का भरवासा।।'

उस परम साहिब को जान लिया, भीतर के मालिक को पहचान लिया। जहां तक 'कोई न पहुंचन हारा।' जहां कोई पहुंच नहीं सकता। क्योंकि परमात्मा अगर कहीं बाहर होता तब तो हम पहुंच गए होते। परमात्मा स्वयं हमारे भीतर है और सद्गुरु ने यही बताया कि तुम्हारे भीतर है पागल! तुम कहां खोजते फिर रहे? अपने भीतर ध्यान में डूबो, समाधिस्थ हो जाओ और तुम उसे जान लोगे। सच पूछो तो अंतर्यात्रा कोई यात्रा थोड़ी है! अपने भीतर स्थिर हो जाना है। यात्राएं तो सारी बाहर होती हैं। अर्जुनदेव जी का यह कहना–

'कोईन पहुचनहारा दूजा।
अपुने साहिब का भरवासा।।'

उस साहेब के निवास स्थान तक कोई पहुंच नहीं सकता। क्यों? क्योंकि जो चलता है वो भटक जाता है। एक बड़ी प्यारी गजल, गुलाम अली साहब ने गाया है, उसकी कुछ पंक्तियां मैं आपसे कहूं, ठीक इसी बात की तरफ इशारा करती हैं।

दरिचाबे सदा कोई नहीं है, अगर चे बोलता कोई नहीं है।
मैं ऐसे जमघटे में खो गया हूं, जहां मेरे सिवा कोई नहीं है।।
रुकूं तो मंजिलें ही मंजिलें हैं, चलूं तो रास्ता कोई नहीं है। 2

साधारणतः हम सोचते हैं कि चल कर मंजिल को पाएंगे। बात बिल्कुल उल्टी है, परमात्मा को पाना हो तो ठहरना पड़ता है। बिल्कुल रुक जाओ, उसी का नाम है ध्यान। पूर्ण स्थिरता का नाम है समाधि। बिल्कुल हलन–चलन नहीं, न तन की, न मन की। कहीं जाना नहीं, कहीं आना नहीं। उस पूर्ण विराम की अवस्था में हम पाते हैं कि अरे! वो ठिकाना, वो मंजिल जिसे हम खोज रहे थे, वह सच्चिदानंद, वह परमात्मा तो भीतर है। और इसलिए बाहर की किसी भी क्रिया के द्वारा उसे नहीं पाया जा सकता था।

न भोजन कर के, न उपवास कर के। भोजन भी बाहर की चीज थी, उपवास भी बाहर की चीज थी। न सुख–सुविधा में रहकर, न त्याग तपस्या कर के। सुख–सुविधा भी बाहर की चीज थी और त्याग तपस्या भी बाहर की चीज और आत्मा है भीतर। न भोग में, न योग में, भोग की क्रियाएं भी बाहर हैं और योग की क्रियाएं भी बाहर हैं और वह परम तत्व है भीतर। इसलिए बाहर की क्रिया से उसे कैसे पाते?

'रुकूं तो मंजिलें ही मंजिलें हैं, चलूं तो रास्ता कोई नहीं है।
मैं ऐसे जमघटे में खो गया हूं, जहां मेरे सिवा कोई नहीं है।।'

हम उस जगह पहुंच जाते हैं, जहां अपने अतिरिक्त और कोई भी नहीं। याद रखना परमात्मा शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है, परम और आत्मा, आत्मा यानी सेल्फ, स्वयं

का होना और परम यानी अल्टीमेट, चरम अवस्था। तो परमात्मा का अर्थ हुआ स्वयं के होने का चरम उत्कर्ष। स्वयं के होने की शुद्धतम दशा। उसका नाम है परम आत्मा। तो आत्मा बाहर कैसे मिलती? तीर्थ स्थान में, मंदिर में भी कैसे मिलती?

वो तो भीतर है, बाहर से कोई संबंध ही नहीं। न घर में मिलती, न जंगल की गुफा में मिलती क्योंकि गुफा भी बाहर है और अपना मकान भी बाहर है। शहर भी बाहर है और जंगल भी बाहर है। इसलिए न शहर में मिलेगा न जंगल में मिलेगा। इसलिए हमने जो कुछ भी किया सब व्यर्थ गया। सद्‌गुरु ने कृपा की, उसने इशारा किया कि पागल! अपने भीतर जा और जहां कोई नहीं पहुंच सकता हम वहां पहुंच गए।

'कोईन पहुचनहारा दूजा।
अपुने साहिब का भरवासा।।
अपुने सतिगुर कै बलिहारै।'

और इसलिए अब बलिहारी जाता हूं अपने सद्‌गुरु की जिन्होंने ऐसी सूझ-बूझ का प्रकाश उत्पन्न किया। मन में अपने भीतर ये सूझ-बूझ हमें नहीं मिल सकती थी। इसलिए गुरु की कृपा, गुरु की बलिहारी। हम अपने बल-बूते पर जो कर सकते थे वो शुरुआत की चार बातें थीं, वो हम कर सकते हैं। लेकिन वो तो भटकाव है, अटकाव है, उससे तो कभी मंजिल हासिल होती नहीं। इसलिए बिना सद्‌गुरु के कोई धर्म नहीं चलता।

आश्चर्य की बात है, अगर हम गुरुग्रंथ साहब के सारे वचनों का सार निचोड़ निकालें तो कुल मिलाकर तीन ही बातें मिलेंगी। एक सद्‌गुरु की महिमा, दूसरी ओंकार सत्‌नाम की महिमा और तीसरी परमात्मा की महिमा। कुल मिलाकर बस तीन ही बातें हैं। सद्‌गुरु की कृपा होगी वो ओंकार ज्ञान के बारे में बताएगा। ओंकार है चाबी परमात्मा के खजाने की जो अपने भीतर है।

आप सभी गुरु साहिबानों के सारे शब्दों को टटोल लो और देखो उनका निष्कर्ष क्या है? मक्खन निकालना चाहो तो कुल तीन ही बातें निकलेंगी- एक तो सद्‌गुरु से मिलन बहुत अनिवार्य है। दूसरा गुरु के द्वारा फिर बतायी गई साधना, ओंकार ज्ञान अनिवार्य है और फिर तीसरी चीज ओंकार में डुबकी, उसमें लवलीन होना। इस ताले से उस भीतर के खजाने को खोलना। बस इतना ही है सारे धर्म का सार। इन तीन बातों में आ जाता है और ये किसी एक धर्म में नहीं कह रहा हूं दुनिया के जितने धर्मशास्त्र है सब का सार सूत्र बस इतना ही है। विस्तार में बातें अलग-अलग होंगी, समझाने का तरीका अलग-अलग होगा, उपमाएं अलग होंगी, कथानक अलग-अलग होंगे, सार बात बस इतनी सी है। गुरु को खोज लो फिर निष्ठापूर्वक उसके द्वारा बतायी ओंकार की साधना करो और जब ओंकार ज्ञान मिल जाए, उस कुंजी से, फिर

भीतर के खजाने को खोल लो। और तुम भी कहोगे कि पहुंच गए उस जगह जो हमारे जीवन का लक्ष्य था, मंजिल थी।

‘ कोईन पहुचनहारा दूजा।
अपुने साहिब का भरवासा।।
अपुने सतिगुर कै बलिहारै।
आगै सुखु पाछे सुखु सहजा घरि आनंदु हमारे।।’

जो मैं कह रहा था ना कि परमात्मा भीतर है, देखो फिर अर्जुनदेव जी इशारा कर रहे हैं, घर आनंद हमारे। जो हमारा घर, हमारा भवन, हमारी काया है, इसके भीतर मन ही भया परगासा। अपने भीतर मन में ही प्रगास हुआ और उस प्रकाश में अपने ही भीतर घर आनंद, हमारे भीतर वह परम आनंद मिल गया। इन्होंने कहीं बाहर नहीं खोजा है कि हिमालय पर जाकर मिल गया, कि किसी गुफा में, कंदरा में मिल गया, कि किसी तीर्थ स्थान में मिल गया, कि किसी शास्त्र के अध्ययन से मिल गया।

किसी गुरु साहिबान ने ऐसा कहा क्या आज तक? जिसने कहा उसने यही कहा कि स्वयं के भीतर मिला ‘घर आनंद हमारे।’ और इस आनंद की परिभाषा क्या है? हम जिसे साधारण सुख कहते हैं, उसमें और आनंद में क्या भेद है? वह भेद स्पष्ट है।

‘ आगै सुखु पाछे सुखु सहजा घरि आनंदु हमारे।।’

इसके आगे भी सुख है और पीछे भी सुख है और बीच में भी सुख है, इसका नाम है आनंद। हम दुनियादारी में जिसे सुख कहते हैं, याद रखना उसके आगे दुख है और उसके पीछे फिर दुख है। जैसे सागर में लहरे ऊपर–नीचे होती हैं न, हर उतार के बाद चढ़ाव है, चढ़ाव के बाद फिर उतार है। अर्थात् हर उठी हुई लहर के आगे भी गड्ढा है, पीछे भी गड्ढा है। ठीक ऐसे ही हमारे संसार के सुख हैं, उसके पहले भी दुख है, उसके बाद में भी दुख है।

क्या आप ऐसा कोई सुख खोज सकते हैं जिसके बाद में दुख न होता हो? बुद्ध ने कहा है किसी प्रिय व्यक्ति से मिलने में सुख है तो फिर प्रिय व्यक्ति से बिछुड़ने में दुख है और इसका ठीक उल्टा अप्रिय व्यक्ति के मिलने में दुख है। तो फिर अप्रिय व्यक्ति के बिछुड़ने में सुख है।

अभी थोड़े दिन पहले मैं कॉमेडी फिल्म देख रहा था ‘अतिथि कब घर जाओगे’; अब अप्रिय व्यक्ति आ गया तो कष्ट है, ये जाएगा उस दिन तुम उत्सव मनाओगे। हिटलर के बारे में मैंने सुना है, जिसने साठ लाख यहूदियों की हत्याएं करवाईं। एक बहुत प्रसिद्ध यहूदी ज्योतिषी के बारे में उसे पता चला तो उसने उस ज्योतिषी को बुलवाया। हिटलर के मन में योजना थी कि इसको भी मरवाना है, लेकिन इसका इतना नाम सुना है कि महान् ज्योतिषी है, तो इससे कुछ पूछ तो लें, कुछ इसके ज्ञान

का उपयोग कर लें।

तो उसने ज्योतिषी को बुलवाया और कहा कि मेरी हस्त रेखाएं देखकर, मेरी जन्म कुण्डली देखकर बताओ मेरी मृत्यु कब होगी? उस यहूदी ज्योतिषी ने कहा कि मैं बिना कुण्डली देखे ही बता दे रहा हूं, बिना हस्त रेखा देखे ही बता रहा हूं, आपके बारे में मुझे पहले से ही काफी नॉलेज है। आपकी मृत्यु किसी यहूदी त्योहार के दिन होगी, किसी पर्व के दिन होगी। हिटलर ने कहा अच्छा! खुश हुआ, त्योहार के दिन, किसी उत्सव के दिन होगी! फिर उसने कहा कि यहूदियों के तो कई त्योहार हैं, साल में पांच–सात त्योहार पड़ते हैं, कौन सा त्योहार? उस ज्योतिषी ने कहा श्रीमान् आप इसकी चिंता न करें कौन सा त्योहार? जिस दिन आप मरेंगे वही दिन हमारे लिए त्योहार हो जाएगा। एक नया त्योहार हो जाएगा।

कोई अप्रिय व्यक्ति है, उसके मृत्यु से भी हमें खुशी होती है। कोई प्रिय व्यक्ति बिछुड़ जाए तो हमें दुख होता है। तो कुल मिलाकर प्रिय व्यक्ति ने भी उतना ही दुख दिया जितना अप्रिय व्यक्ति ने दिया था। फर्क कहां रहा? हम सोचते हैं दोस्त से हमें खुशी मिलती है, दुश्मन से दुख मिलता ह।ै ऐसा नहीं है। दोनों से सुख–दुख हमेशा बराबर मिलता है।

समझो अगर आपकी पत्नी बहुत झगड़ालु है, दिन–रात झगड़ा करती है और किसी दुर्घटना में, ऐक्सिडेंट में उसकी मृत्यु हो जाए तो आपको क्या मिलेगा? काफी खुशी मिल जाएगी, बैलेंस हो जाएगा। जिंदगी भर उसने जितना दुख दिया है, उतना ही सुख मिल जाएगा उसके विदा होने से। इसका ठीक उल्टा समझो आपकी पत्नी बहुत प्रिय है, बहुत मीठे वचन बोलती है, आपकी सेवा करती है, सत्कार करती है। अगर वह समाप्त हो जाए तो उतना दुख मिल जाएगा। जितना सुख मिला था ठीक बैलेंस करता हुआ उतना ही दुख मिलेगा।

तो कुल मिलाकर फर्क क्या पड़ा? अच्छी पत्नी है कि कर्कशा पत्नी है, कुल मिलाकर तो दोनों ने बराबर सुख और दुख दिया। बैलेंस जीरो, प्लस माइनस जीरो, हम जिसे सुख कहते हैं उसके आगे दुख है। अगर वो दुष्ट पत्नी मर गयी तो उससे जो सुख मिलेगा याद रखना वह उसी कॉन्ट्रास्ट में मिल रहा है। पहले आप काफी दुख झेल चुके हैं, इसलिए अब सुख मिल रहा है। हर सुख के आगे दुख है और पीछे भी दुख है।

ये जो अभी आप इतने सुखी हो रहे हैं बस आप अगले दुख की तैयारी कर रहे हैं। जो लहर ऊपर उठी है वो नीचे गिरेगी ही गिरेगी। और हर नीचे गयी लहर फिर ऊपर उठेगी; यही प्रकृति का नियम है और जितनी ऊपर उठेगी उतना ही उसको नीचे जाना पड़ेगा। परफेक्ट बैलेंस, पूर्ण संतुलन रहेगा, हमेशा संतुलन रहेगा।

तो हम जिसे सुख कहते हैं और संत जिसे आनंद कहते हैं उसमें यह फर्क है। वे

जिस आनंद की बात करते हैं उसमें सुख ही सुख है। आगे सुख पाछे सुख सहजा घर आनंद हमारे। दूसरा फर्क क्या है? हम जिसको सुख–दुख कहते हैं वे बाहर की किसी घटना की वजह से घटते हैं और संत जिस आनंद की, महासुख की बात कर रहे हैं वो उनके अपने घट के भीतर ही है। घर आनंद हमारे।

ये बाहर की किसी परिस्थिति से संबंधित नहीं है, ये किसी और पर निर्भर नहीं करता। हमारा सुख भी दूसरों पर निर्भर करता है, हमारा दुख भी दूसरों पर निर्भर करता है। संत शांति की अवस्था में, आनंद की अवस्था में रहता है जो सदा एक सी है, समतल, कोई लहरें उठती–गिरती नहीं। वह निष्कंप, अकंप कभी डांवाडोल नहीं होता। चाहे अपमान मिले, चाहे सम्मान मिले। चाहे यश–कीर्ति फैले, चाहे बदनामी फैले उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि उसका आनंद कैसा है? अपने भीतर– 'घर आनंद हमारे'। वो सदा एक सा रहता है। आगे कहते हैं अर्जुनदेव जी–

' अंतरजामी करणैहारा सोई खसमु हमारा।'

वो जो हमारा मालिक है, साहेब है, वो कहां है? अपने भीतर अंतर्जामि। साधारणतः लोग अंतर्यामी का गलत अर्थ निकालते हैं। वो समझते हैं दूसरों के भीतर की बात जानने वाला। नहीं, ऐसा मतलब नहीं है। मतलब बिल्कुल स्पष्ट है। अंतर यानी भीतर और जामि यानी जानने वाला। हमारे भीतर जो जानने की क्षमता है, हमारी चेतना, हमारी कॉन्शसनेस वह। वही सब कुछ करने–धरने वाली है।

' अंतरजामी करणैहारा सोई खसमु हमारा।'

तो यहां किस परमात्मा की, किस साहिब की, किस मालिक की बात कर रहे हैं? जो हमारे भीतर मौजूद है। किस रूप में? चैतन्य रूप में। जो हमारा सच्चा स्वरूप है, जो अंतर्यामी है। कई लोग मेरे पास आ जाते हैं, कहते हैं स्वामी जी आप तो अंतर्यामी हैं, बताइये हमारे भीतर कौन सा सवाल चल रहा है? हम कौन सा सवाल पूछने आए हैं? मैं कहता हूं, तुम अंतर्यामी का अर्थ ही नहीं समझे।

तुम्हारे खोपड़ी के भीतर क्या विचार चल रहे हैं, कौन सा सवाल चल रहा है वो जानना तो उचित नहीं। एक उदाहरण से समझिए– मैंने आपको एक लिफाफा बंद कर के पत्र दिया कि आप फलां–फलां जगह जा रहे हैं कृपया उन सज्जन को मेरा यह पत्र दे दीजिएगा। और आपने रास्ते में वह पत्र खोलकर पढ़ लिया। क्या इसको उचित बात मानेंगे? कोई भी इसको उचित नहीं मानेगा। वो गोपनीय था, आपने क्यों खोलकर पढ़ा? दुनिया में कोई भी व्यक्ति यही कहेगा कि यह तो अनुचित है। जिसके नाम पत्र था उसको देना था। बीच में खोलने की जरूरत नहीं थी। जब पत्र खोलकर पढ़ना तक हम उचित नहीं मानते, असामाजिक और अनैतिक मानते हैं, तो फिर किसी के मन की बात जानना क्या नीतिपूर्ण है? क्या इसको उचित कहा जाएगा?

कोई व्यक्ति अपने दिल में कुछ छिपा रहा है, वो नहीं बताना चाह रहा और हमारे पास कोई ऐसी विधि आ गयी कि उसके भीतर की बात हम जान सकते हैं, क्या यह जानना उचित है? क्या यह उस व्यक्ति की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप नहीं हो गया? हम इंटरफेयर नहीं कर रहे? उसने अपने घर के बाहर प्लेट लगा रखी है, प्रवेश निषेध बिना अनुमति। नो एडमिशन विदाउट परमिशन और हम बिना फिकर किए धड़ल्ले से भीतर घुस गए घर में, क्या यह उचित है?

जब हम किसी के घर में अनुचित रूप से घुसना ठीक नहीं मानते तो किसी के दिल में चल रही बात, किसी के मन के ख्याल पढ़ना कैसे उचित हो सकता है? जिस बात को वह व्यक्ति छिपाना चाहता है उसको छिपाने का पूरा हक है। ये उसका व्यक्तिगत मामला है, उसका निजी मामला है, ये उसकी स्वतंत्रता है। अंतर्यामी का अर्थ नहीं होता दूसरे की बात को जानना। अंतर्यामी का अर्थ होता है अपने अंदर में जो जानने वाला तत्व है– अवेयरनेस, कॉन्शसनेस, चैतन्यता– वह, वही हमारा साहिब है।

'निरभउ भए गुरुचरणी लागे इक राम नाम आधारा।'

कहते हैं अब मैं पूरी तरह निर्भय हो गया। गुरु के चरणों में आकर उनके द्वारा बताये मार्ग पर चलकर, ध्यान की विधि में, समाधि विधि में डूबकर मैंने पा लिया 'एक राम नाम अधारा'। वो जो भीतर ओम् की ध्वनि गूंज रही है, अगर कोई चाहे तो उसको राम जैसी भी सुनाई पड़ सकती है। ध्वनि के संबंध में एक खूबी है– हम उस पर अपनी धारणा के अनुसार कुछ थोप सकते हैं, सुन सकते हैं। कोई आपसे पूछे कि ट्रेन की आवाज कैसी होती है, चाक की? आप कहते हैं छक, छक, छक, छक, छक, छक आप ठीक ही कह रहे हैं। किसी दूसरे से यही सवाल पूछे तो वो कह सकता है भक, भक, भक, भक, भक, भक वो भी ठीक ही कह रहा है। कोई राम का भक्त हो तो उसे ट्रेन के चलने में सुनाई दे सकता है राम, राम, राम, राम, राम, राम; कोई वाहे गुरु का जाप करने वाला हो, सुमिरन करने वाला, उसको ऐसा लग सकता है कि चक्कों से आवाज आ रही है वाहे गुरु, वाहे गुरु, वाहे गुरु, वाहे गुरु, वाहे गुरु, वाहे गुरु यह संभव है। ध्वनि अपनी तरफ से ना तो राम है, ना तो ओम् है, न सत्नाम है, न वाहे गुरु है। लेकिन अगर हमारे भीतर कोई धारणा है तो हमें वैसी प्रतीति हो सकती है। एक्जैक्टली तो वैसी नहीं है। इसीलिए भीतर की उस ध्वनि को बहुत संतो ने राम नाम भी कहा है, ओम् भी कहा है, ओमीन और आमीन भी कहा है। अर्जुन देव जी कहते हैं–

' निरभउ भए गुरुचरणी लागे इक राम नाम आधारा।'

अब आधार मिल गया, पक्का आधार। इसके पहले हम बे–बुनियाद थे। हम निराधार थे। कोई सहारा न था। हम जिन चीजों को सहारा समझ रहे थे 'मेरी–मेरी' कर के जिनके पीछे दौड़ रहे थे, वे खुद ही टिकाउ नहीं थीं। हम उनपर क्या टिकते?

आधार मजबूत तो होना चाहिए न, जिस पर हम खड़े हो सकें। वो राम नाम का आधार ही असली मजबूत आधार है।

'सफल दरसनु अकाल मूरति प्रभु है भी होवनहारा।'

और कहते हैं, उस अकाल मूरत के दर्शन कर के अब जीवन सफल हुआ। वह ओम् की ध्वनि अकाल मूरत है। वह कालातीत है, समय के पार। न उसका कोई अतीत है, न उसका कोई भविष्य है। वो सदा-सदा वर्तमान के क्षण में है। इसलिए कहते हैं 'प्रभु है भी होवन हारा' वो अभी है। ओशो ने अपने एक प्रवचन में परमात्मा की बड़ी संक्षिप्त परिभाषा की है 'गॉड इज दैट व्हीच इज' परमात्मा वह है जो है। दैट व्हीच इज, जो है। वहीं अर्जुन देव जी कह रहे हैं 'प्रभु है भी होवन हारा।' वह है भी और होवन हारा भी है।

'कंठि लगाइ अपुने जन राखे अपुनी प्रिति पिआरा।'

और वह अपने प्यारों को अपने कंठ से लगाकर रखता है। उसके हृदय में उन्हें स्थान मिलता है।

'वडी वडिआइ अचरज सोभा कारजु आइआ रासे।'

कहते हैं, उसकी वडिआइ को, उसके बड़प्पन को मैं कैसे बखान करूं? 'वडी वडिआइ अचरज सोभा।' उसकी शोभा, उसकी महिमा अकथनीय है, आश्चर्यजनक है। परमात्मा का अनुभव रहस्यमय अनुभव है। हम जान-जान कर भी उसको जना नहीं सकते, बखान नहीं सकते। हम उसके बारे में जो भी कहेंगे वो गलत हो जाएगा। हमारे कोई शब्द उसे अभिव्यक्त करने में सक्षम नहीं हैं। उसकी अनुभूति तो की जा सकती है किंतु अभिव्यक्ति नहीं की जा सकती।

आश्चर्य चकित करने वाला है यह अनुभव। अचरज सोभा। वह रहस्य सदा-सदा रहस्य ही रहता है। जान-जान कर भी वह अंजाना ही बना रहता है। यह है रहस्य का मतलब। हम कभी यह नहीं कह सकते कि हमने पूरा जान लिया। इसलिए संत बार-बार कहते हैं अपरम्पारा, उसका पार नहीं है। हमने जहां तक जाना उसकी तो सीमा है, लेकिन उसकी कोई सीमा नहीं है। हमने थोड़ा सा जाना और अनंत-अनंत छूट गया।

' वडी वडिआई अचरज सोभा कारजु आइआ रासे।
नानक कउ गुरु पूरा भेटिओ सगले दुख बिनासे।।'

अंतिम बात अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। कहते हैं गुरु की कृपा से जब उस राम नाम के आधार में, उस सहारे में पहुंच गए, भीतर के साक्षी चैतन्य को जान लिया तब सगले दुख विनाशे। सारे दुख समाप्त हो गए। दुख यानी परमात्मा से विरह, वियोग,

परमात्मा का विस्मरण और आनंद यानी परमात्मा का स्मरण, सुमिरन, सुरति, परमात्मा से योग... बस यहीं सुख और दुख है। हम जो समझते हैं वो नहीं।

हम समझते हैं गरीबी है इसलिए दुख है, बीमारी है इसलिए दुख है, पति अच्छा नहीं मिला इसलिए दुख है, कि बेटा आज्ञाकारी नहीं है इसलिए दुख है, कि कार छोटी है इसलिए दुख है, कि वो पढ़ाई नहीं कर पाए जो चाहते थे इसलिए दुख है, कि प्रमोशन नहीं हुआ नौकरी में इसलिए दुख है। हमारी सारी बातें गलत। कुल बात एक है– हमें अपने भीतर निवास करने वाले उस प्रभु का ज्ञान नहीं है इसलिए हम दुखी हैं। और इसलिए परम सुख का, परम आनंद का एक ही सूत्र है, भीतर के उस प्रभु को जान लें।

आओ, इस प्यारे शबद के साथ हम उत्सव मनाएं। परम सुख में डूबें, नाचें, झूमें, गाएं। जय ओशो!

गुरु प्रसाद से प्रभु-प्राप्ति

एक ओंकार सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु,
अकाल मूरित अजूनी सैभं गुर प्रसादि।। जपु।।
आदि सचु जुगादि सचु।
है भी सचु नानक होसी भी सचु।। 1।।
सोचै सोचि न होवई जे सोची लखवार।
चुपै चुप न होवई जे लाइ रहा लिवतार।
भुखिआ भुख न उतरी जे बंना पुरीआ भार।
सहस सिआणपा लख होहि त इक न चलै नालि।
किव सचिआरा होईए किव कूड़ै तुटै पालि।
हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि।। 1।।

सभी मित्रों को नमस्कार! स्वागत है आप सबका, इस प्यारे शबद के भावार्थ को हृदयंगम करने के लिए। ताकि मार्ग को समझकर, एक दिन मंजिल तक पहुंच सकें।

गुरु नानक देव जी की अमृत वाणी का एक–एक वचन, एक–एक शब्द समझने जैसा है। परमात्मा को जानकर गुरु नानक देव जी ने जो प्रथम वक्तव्य दिए वे 'जपुजी साहब' में संकलित हैं। मधुर शुरुआत होती है– 'एक ओंकार सतनाम' जैसे कोई ताजा–ताजा फूल खिला हो और उसकी ताजी–ताजी खुशबू उड़ी हो, ऐसे हैं ये शब्द। समाधि के अनुभव के बाद प्रथम उच्चार 'एक ओंकार सतनाम' है। इन तीन शब्दों में समझो सारे धर्म का सार सूत्र समाया हुआ है। न केवल सिक्ख धर्म का, दुनिया के सारे धर्मों का सार सूत्र इन तीन शब्दों में समाया है। एक–एक शब्द को गौर से समझना।

सबसे पहले कहते हैं 'एक'... जब भीतर का अनुभव होता है समाधि में डूबकर प्रभु को जाना जाता है, तो पहली बात समझ में आती है कि वह केवल 'एक' है। वहां कोई दुई नहीं, अद्वैत, नॉन ड्युअलिटी। बाहर दुनिया में हमने जो भी जाना, वहां अनेक–अनेक हैं, अनंत–अनंत। सात अरब लोग हैं, ना जाने कितने खरब अन्य पशु–पंछी हैं, प्राणी हैं, पेड़–पौधे हैं, वनस्पतियां हैं, सामान हैं, हजारों–हजारों ग्रह नक्षत्र हैं, हजारों गैलेक्सियां हैं। बाहर की दुनिया में हमने जो भी जाना, वहां अनेक–अनेक हैं।

जब अपने भीतर ध्यान में मग्न होते हैं, समाधि लग जाती है, ब्रह्म का अनुभव होता है, तब पता चलता है एक का। शायद आप में से कुछ मित्र जो आधुनिक विज्ञान की खोजों से परिचित हैं, उन्हें यह बात पता होगी कि धीरे–धीरे विज्ञान भी इस बात से राजी हो रहा है कि एक ही सच है। अनेक केवल ऊपर से आभासित होते हैं, दिखाई देते हैं वास्तव में केवल एक की सत्ता है।

जब विज्ञान शुरू हुआ था, विशेषकर रसायन शास्त्र, केमिस्ट्री, लाखों–लाखों यौगिकों का पता चला। फिर ऑरगैनिक केमिस्ट्री आयी, करोड़ों–करोड़ों पदार्थों का पता चला, अनंत प्रकार के पदार्थों का ज्ञान घटित हुआ। फिर आगे विज्ञान की खोज चली तो पता चला, तत्व, एलिमेन्टस् की गिनती ज्यादा नहीं है, लगभग सौ।

अब गिनती छोटी होनी शुरू हुई, फिर एलिमेन्टस्, ऐटम्स की और गहरी खोज की तो पता चला कि मुख्य रूप से तीन ही सब–ऐटॉमिक पार्टिकल्स हैं– इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन। तो कहां करोड़ों–करोड़ों चीजें, फिर उनसे घट कर सौ तत्व पर आए, फिर उनसे घट कर तीन पर आए इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन। इन्हीं से सब कुछ बना है। सोना भी उसी से बना है, लोहा भी उसी से बना है, ऑक्सीजन भी उसी से बनी है, हाइड्रोजन भी उसी से बनी है। सब कुछ उन्हीं से बना है।

फिर पिछले पच्चीस–तीस सालों में भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान और आगे बढ़ा सब–एटॉमिक पार्टिकल्स के बाद उन्होंने खोजा कि ये जो कण हैं, ये ऊर्जा से बने हैं, विद्युत ऊर्जा से और वह ऊर्जा एक ही है, वह अलग–अलग नहीं है। उसी के ये तीन रूप हैं, उस ऊर्जा के प्रगट होने के और पिछले चार–पांच साल में जो नयी–नयी खोज हुई है, उससे पता चला है कि पूरे अस्तित्व में एक ध्वनि गूंज रही है जो ओम् की ध्वनि से मिलती–जुलती है। जैसे भौंरे का गुंजार, फूलों के आस–पास भौंरा मंडराता है। अब उस ध्वनि को रिकॉर्ड भी कर लिया गया है। पता चला है कि जो विद्युत ऊर्जा थी, उसकी जो तरंगे हैं, वे ध्वनि की तरंगों से मिलती–जुलती हैं। आप चाहें तो इंटरनेट पर उस ध्वनि को सुन भी सकते हैं, वैज्ञानिकों ने उसका नाम रखा है यूनिवर्सल साउंड, पूरे ब्रह्माण्ड की ध्वनि।

भारत के संतो ने उसी को ब्रह्मनाद कहा था, ब्रह्म की आवाज। वह लगभग ओम् से मिलती–जुलती है। और वह एक ही है उसके अलावा कुछ भी नहीं। उसी से इस अस्तित्व की शुरुआत हुई। अगर कभी शुरुआत हुई है तो उसी में अंत होगा। अगर कभी अंत होगा तो, जो आदि में था वही अंत में होगा। आदि के पूर्व भी वही ध्वनि थी। एक ध्वनि, उसी से फिर सब कुछ जन्मा, अनेक–अनेक रूप, अनेक–अनेक आकृतियां, अनेक–अनेक रंग–ढंग, लेकिन मूल तत्व एक ही है।

तो संतो ने जो बात अपने भीतर डूब कर खोजी थी कि एक ही है सत्य, अलग–अलग नहीं। विज्ञान भी करीब–करीब उसी के निकट पहुंच रहा है कि एक ही है सत्य। अब इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन, सब इन्हीं से बने हैं। और फिर उनसे दुनिया के सारे पदार्थ, सारी गैलेक्सियां, सारी सृष्टि का निर्माण हुआ। तो पहले विज्ञान में और धर्म में बड़ा भेद था। दोनों अलग–अलग बातें कहा करते थे। जैसे–जैसे समय गुजरता जा रहा है, पता चल रहा है कि संतों ने जो बात कही थी वही है सत्य।

विज्ञान भी अब प्रमाण जुटाने लगा कि एक ही है सत्य। उसी एक के अनेक–अनेक रूप जैसे कि हम उदाहरण के लिए लें पानी, तरल पदार्थ... कितने रूप हैं उसके। हिमालय पर बर्फ के रूप में जमा है, ठोस पत्थर की तरह, करोड़ों साल से जमा हुआ है आज तक कभी पिघला नहीं। ग्लेसियर्स, झरने, नदियां, तालाब, कुंआ, समुंदर, जल–प्रपात, ओस की बूंदें, कोहरा, इन्द्रधनुष, मानसून, बादल, वर्षा, ओले... कितने–कितने रूप हैं पानी के, लेकिन मूल चीज एक ही है, एच टू ओ, ये सब बस उसी के रूप हैं।

ठोस रूप में भी, वही है बर्फ में। तरल रूप में, जल में भी वही है और वाष्प रूप में, गैस रूप में भी वही है। भाप बनकर एक के अनेक रूप ठीक ऐसे ही एक है परमात्मा, एक है ब्रह्म। ओम् उसकी ध्वनि है और फिर इसी ओंकार ने भिन्न–भिन्न रूप लिए। सारी

सृष्टि का सृजन उसी से हुआ।

वैज्ञानिकों की एक और खोज है पिछले पचास–साठ साल में हुई है वो है 'बिग–बैंग थ्योरी', कहते हैं कि सबसे पहले बिग–बैंग, एक जोर की आवाज हुई और उसी आवाज के संग सारी सृष्टि का निर्माण हुआ। यह बात भी संतों की खोज से मिलती–जुलती है कि ध्वनि से ही उत्पत्ति हुई है, ध्वनि में ही समापन होगा। एक ओंकार सतनाम। वह ओम् की ध्वनि, वह एक ध्वनि ही सच्ची है और वही उसका सच्चा नाम है। हम अन्य अनंत–अनंत नामों को जानते हैं। मेरा नाम कुछ है, इन भाईसाहब का नाम कुछ और है, आप का नाम कुछ और है।

दुनिया में सात अरब लोग बैठे हैं, सात अरब नाम हैं उनके। कितने पदार्थ हैं, सबके अलग–अलग नाम हैं लेकिन सच्चा नाम कौन सा है? ये हमारा सच्चा नाम नहीं है। मेरे माता–पिता ने मेरा एक नाम रख दिया, यह संयोग की बात है। मेरा नाम कुछ भी हो सकता था। ए, बी, सी... आपके माता–पिता को जो अच्छा लगा वो नाम रख दिया। जब आप जन्में थे आपका कोई भी नाम नहीं था। आप बिना नाम के थे। फिर एक नाम दे दिया गया, कामचलाऊ नाम, वह सच्चा नाम नहीं है। उसको बदला भी जा सकता है।

गुरु जब दीक्षा देते हैं अपने शिष्य को, नाम बदल देते हैं, नाम बदला जा सकता है क्योंकि नाम में कोई सच्चाई नहीं है। हां सामाजिक रूप से जरूरी है, हमारा कोई ना कोई नाम होना चाहिए नहीं तो हम किसी को पुकारेंगे कैसे? कुछ तो नाम रखना होगा। चीजों का हमें नाम रखना होगा कि यह हारमोनियम है, यह माईक है, यह स्पीकर है, ये तबले हैं, यह चादर बिछी हुई है, कुछ तो नाम रखना होगा। हम कुछ और भी रख सकते थे इसका नाम लेकिन कुछ न कुछ नाम रखना होगा ताकि हम रिकॉग्नाइज़ कर लें, हम आपस में बातचीत कर सकें।

जब हम किसी वस्तु का नाम लेंगे तो आप समझ जाएंगे कि हम क्या चाह रहे हैं? अगर मैं कहूं कि भूख लगी है, मुझे रोटी, चावल दे दीजिए तो एक नाम हो गया किसी चीज का। आपको पता है कि रोटी किसे कहते हैं? चावल किसे कहते हैं? आप वह चीज मुझे ला देंगे। मैं कहूंगा, प्यास लगी है पानी दे दीजिए। अब दुनिया में तीन हजार से ज्यादा भाषाएं हैं और पानी के तीन हजार से ज्यादा नाम है और सब का काम चल जाता है। नाम कामचलाऊ है, अब पानी कहो, कि वॅाटर कहो, कि जल कहो या कुछ भी कहो। एक बात जरूरी है कि हमें कुछ न कुछ नाम रखना पड़ेगा। नहीं तो फिर हम आपस में बातचीत कैसे करेंगे?

तो संवाद के लिए नाम जरूरी है लेकिन यह नाम सचमुच का नहीं है। पानी को तो पता भी नहीं कि उसे हम पानी कहते हैं, कि वॅाटर कहते हैं, कि जल कहते हैं कि

एच.टू.ओ. कहते हैं। सूरज को हम सूरज कहते हैं, फ्रांस में कुछ और कहते हैं, जर्मनी में कुछ और कहते हैं, अंग्रेजी में कुछ और कहते हैं। हमारे देश में तीस–चालीस भाषाएं हैं। सब सूरज को अलग–अलग नाम से पुकारते हैं। तो वास्तव में सूरज का क्या नाम है? सूरज है यह तो सच है, किन्तु उसके नाम जो हमने दिए हैं, सूरज को तो उसके बारे में पता तक नहीं है। ये सब नाम झूठे हैं, सच्चे नाम नहीं हैं। ये बदले जा सकते हैं।

भाषा धीरे–धीरे बदलती है। आज से चार–पांच हजार साल पहले जो भाषा थी और आज की जो भाषा है उस भाषा में काफी फर्क पड़ गया। मैं आपको एक–दो उदाहरण से समझाऊं। समझो पुराने शास्त्रों में जहां 'मृग' शब्द आता है; उसका मतलब होता है जानवर, पशु, कोई भी पशु, सभी मृग कहलाते थे। आज की भाषा में 'मृग' यानी 'हिरण'। अर्थ बदल गया। बहुत चीजों के नाम बदल गए। समय के साथ–साथ नाम परिवर्तित हो जाते हैं। एक बात तो पक्की है कि इन नामों में कोई सच्चाई नहीं है। ये नाम झूठे नाम हैं।

इस बात को अपने मन में स्पष्ट कर लें, तब हम गुरु नानक देव जी का यह वचन समझ पांएगे कि ओंकार को सतनाम क्यों कह रहे हैं? यह है सच्चा नाम, यह किसी के द्वारा दिया गया नहीं है। जो भी व्यक्ति अपने भीतर ध्यान में, समाधि में डूबता है, जिसका चित्त शांत और निर्मल हो जाता है, भीतर विचारों का शोरगुल बंद हो जाता है, मन बिल्कुल चुप हो जाता है, तब अचानक एक ध्वनि वहां सुनाई देती है। वह ध्वनि करीब–करीब ओम् से मिलती जुलती है, एक्जैक्ट्ली 'ओम्' तो नहीं है। कोई चाहे तो उसे 'राम' भी कह सकता है। कोई चाहे तो उसे 'नाम' कह सकता है। सतनाम कह सकता है। मुसलमान और यहूदी उसे 'ओमीन' और 'आमीन' कहते हैं। अंग्रेजी भाषा में परमात्मा के लिए तीन शब्द है ओम्नीप्रेजेंट, ओम्नीपोटेंट, ओम्नीसिएंट उसमें ओम् आता है। ओम्नीसीएंट यानी सर्वद्रष्टा, सबका साक्षी। ओम्नीपोटेंट यानी सर्वशक्तिमान और ओमनी प्रेजेंट यानी सर्वव्यापी। ओम् की तरह सर्वव्यापी, सब जगह मौजूद ये ओम् क्या है? मुसलमान और यहूदी अपनी प्रार्थना का अंत और शुरुआत आमीन या ओमीन से करते हैं।

जब हम भीतर ध्यान में डूबते हैं, हमें एक ध्वनि सुनाई देती है। उस ध्वनि को हम क्या नाम देंगे अपनी भाषा में? हम कण्ठ से उसको बोल नहीं सकते ठीक–ठीक। जैसे ओमीन भी ठीक है, अमीन भी ठीक है। ये मिलते–जुलते शब्द हैं। एक उदाहरण से समझो कि हम ट्रेन में यात्रा की बात कर रहे हैं कि ट्रेन में यात्रा कर रहे हैं और फिर हमसे कोई पूछे जो आज तक ट्रेन में नहीं गया कि ट्रेन की आवाज कैसी होती है? तो हो सकता है हम कहें कि उसकी आवाज हो सकती है छक–छक, छक–छक, छक–छक, छक–छक। कोई दूसरे व्यक्ति से पूछे कि कैसी आवाज थी ट्रेन की? वो कहेगा

भक–भक, भक–भक, भक–भक, भक–भक। ऐसा नहीं है कि इसमें कोई गलत या सही है। हम भी ठीक कह रहे हैं, वह भी ठीक कह रहा है। हो सकता है कोई राम का भक्त हो उसको सुनाई पड़े ट्रेन के पहियों की आवाज राम–राम, राम–राम, राम–राम, राम–राम। हो सकता है कोई मुसलमान हो वो कहे मुझे तो ऐसा लग रहा था अल्लाह, अल्लाह, अल्लाह, अल्लाह। ध्वनि के ऊपर हम कुछ प्रोजेक्ट कर सकते हैं। वह ध्वनि ना तो छक–छक, छक–छक है, ना राम–राम, राम–राम है। लेकिन अगर हमारे मन में कोई धारणा है, हमें वैसी लगने लगेगी। और जब हम कण्ठ से बोल कर बताएंगे तो स्वाभाविक रूप से हम ट्रेन की सही आवाज तो नहीं निकाल पाएंगे, हम कुछ मिलती–जुलती आवाज निकाल कर बताएंगे।

ठीक ऐसे ही समाधि में जो शब्द सुना जाता है। वह शब्द ओम् से मिलता–जुलता है। यह नाम किसी ने दिया नहीं, यह हमारी भाषा का हिस्सा नहीं है। इसलिए ओंकार को भाषा का हिस्सा नहीं मानते। आपने देखा ओम् के लिए एक अलग ही चित्र बनाया गया है। चाहते तो उसको ऐसा भी लिख सकते थे 'अ' में 'ओ' की मात्रा 'म' और हलंत। लेकिन वैसा नहीं लिखा जानबूझ कर।

यह बताने के लिए कि यह हमारी भाषा का अंग नहीं है। वह हमारे अक्षरों से नहीं बनता। वह शाश्वत ध्वनि अ, ब, स, द, हमारी ए बी सी डी से अलग ही है। यही बताने के लिए उसके लिए एक अलग पिक्चोरियल चित्र जैसा बनाया। एक ओंकार सतनाम, वह एक ओम् ही सत्य है। और शेष सब उसी के प्रगट रूप हैं, उसी से जन्में। भिन्न–भिन्न रूप लिए।

तो परमात्मा, प्रभु, ईश्वर जो भी हम नाम देना चाहें उसका वास्तविक स्वरूप 'ओंकारस्वरूप' है और उसका सच्चा नाम बस यही है। 'एक ओंकार सतनाम' आगे गुरु नानक देव जी वर्णन करते हैं कि वह ओंकार कैसा है? कहते हैं वही है कर्तापुरुष। सब कुछ करने–धरने वाला। हमारा अहंकार हमसे कहता है कि हम हैं कर्त्ता। मैंने यह किया, मैंने वह किया, मैं यह कर सकता हूं, मैं वह कर सकता हूं। हमारा मैं, ईगो, हमारा घमण्ड, हमारा अहंकार कहता है कि मैं हूं करने वाला।

लोग अपना गुणगान करते हैं, मैंने यह किया, मैंने वह किया। गुरु नानक देव जी कह रहे हैं यह हमारा भ्रम है कि हम करने वाले हैं। कर्त्तापुरुष तो 'वह' है। ज्यादा से ज्यादा हम उसके हाथ हैं, ये हाथ की अंगुली यह तो नहीं कह सकती कि मैंने यह किया कि वह किया। अंगुली ने तो किया नहीं। इस हाथ के पीछे कोई और है जो इससे करवा रहा है। ठीक ऐसे ही हमारे पीछे वह अदृश्य शक्ति है, जो हमसे करवा रही है। हम करने वाले नहीं हैं।

अभी ये मित्र हारमोनियम बजा रहे थे। क्या हारमोनियम स्वयं बज रहा था?

क्या हारमोनियम कह सकता कि देखो मैंने कितना अच्छा शबद गाया? हारमोनियम यह नहीं कह सकता क्योंकि बजाने वाला कोई और है। अगर ये मित्र नहीं बजाएंगे तो हारमोनियम कैसे बजेगा? हारमोनियम स्वयं थोड़े ही बजता है? ठीक ऐसे ही हम भी इन्स्ट्रुमेन्ट्स हैं परमात्मा के। हम सब, सारे प्राणी, पशु, पंछी, वनस्पति हम जिनको जड़ पदार्थ कह रहे हैं वे भी, हम सब इन्स्ट्रुमेन्ट्स हैं, हमारे द्वारा कुछ किया जा रहा है, करने वाला कोई और है।

आप साइकिल या स्कूटर चला रहे हैं, तो क्या साइकिल या स्कूटर स्वयं चल रहा है? आप चला रहे हैं तो चल रही है साइकिल, आप रुक जाएंगे तो साइकिल रुक जाएगी, अपने आप नहीं चल सकती। लेकिन साइकिल को यह भ्रम हो सकता है कि देखा मैं कितनी चली? अरे इतने किलोमीटर यात्रा कर चुकी हूं, मेरे जैसा दुनिया में कोई नहीं। अगर साइकिल ऐसा कहेगी तो हम कहेंगे कि साइकिल पागल हो गई है।

जब हम कहते हैं कि हमने ये किया, हमने वो किया, जब हम अपनी महानता का गुणगान करते हैं, हम भी पागलपन की बात ही तो करते हैं। हमारे पीछे भी वह अदृश्य शक्ति है, उसकी याद करो, कर्त्तापुरुष वही है। और पुरुष शब्द का एक अर्थ बड़ा प्यारा है। पुर यानी होता है गाँव। आपने नाम सुना है न कानपुर, नागपुर, जबलपुर, 'पुर' यानी गाँव, शहर, हमारा यह शरीर भी एक शहर है। मेडिकल साईंस कहती है कि इसमें कई खरब कोशिकाएं हैं। यह एक महानगर है, छोटा–मोटा नगर नहीं, एक महानगर।

पूरी दुनिया की जितनी जनसंख्या है, उससे एक लाख गुना ज्यादा पॉपुलेशन सिर्फ हमारे शरीर के सेल्स की है। इन सेल्स या कोशिकाओं की गिनती कितनी है, आप अन्दाज लगा सकते हैं। एक सेंटीमीटर का दसवां हिस्सा होता है मिलीमीटर। एक क्युबिक मिलीमीटर में 55 लाख रेड ब्लड सेल्स, दस हजार व्हाइट ब्लड सेल्स और ढाई लाख प्लेट्लेट्स होती हैं, बस एक क्युबिक मीलीमीटर में। अब इतने बड़े शरीर में कितनी कोशिकाएं होंगी, आप अन्दाज लगा लें। शायद इतनी बड़ी हमें गिनती भी नहीं आती।

यह एक महानगर, पूरा विश्व है। इसलिए इसको कहा गया है 'पुर' और पुर के भीतर जो वास कर रहा है, वह है 'ओंकारस्वरूप' प्रभु। वह है पुरुष। वह जो चेतना हमारे भीतर मौजूद है उसके कारण ही सब कुछ हो रहा है। ये शरीर, ये मन, जो कुछ भी कर रहा है, चाहे हम सोचें, विचारें, ये मन की क्रियाएं हुईं। हम उठे, चले, ये सब शरीर की क्रियाएं हुईं। इन सब क्रियाओं के पीछे वह कर्त्ता पुरुष मौजूद है। इसलिए उसे पुरुष कह कर पुकारा गया। नगर में रहने वाला, वही है असली निवासी, उसके द्वारा ही सारा नगर संचालित हो रहा है। अगर वह गायब हो गया, ये नगर किसी काम

का नहीं।

कोई व्यक्ति जिन्दा था, मर गया, एक सेकेण्ड पहले उसकी आंखें देखती थीं, कान सुनते थे, हाथ–पैर चलते थे, सांस चलती थीं, हृदय धड़कता था, खून बह रहा था, पाचन क्रिया चल रहीं थीं, बोलता था, समझता था। अब उसकी मृत्यु हो गई, क्या हो गया? शरीर तो ज्यों का त्यों है। क्या आंख में कोई परिवर्तन हो गया या कान बदल गए, कि हृदय में कुछ बदलाहट हो गई? नहीं! कुछ भी नहीं, सब कुछ वैसा का वैसा है। लेकिन अब यह आंख देख नहीं सकती, अब ये हाथ कुछ काम कर नहीं सकते। क्यों? क्योंकि जो करने वाला था वह चला गया, विदा हो गया। इसका मतलब हुआ कि करने वाला यह तन–मन नहीं बल्कि वह कर्त्ता पुरुष ही है। वह जो हमारे भीतर ओंकार बनकर विराजमान है, वही परमात्मा है कर्त्ता पुरुष।

मेरे भीतर भी वही अभी बोल रहा है, आपके भीतर वही अभी सुन रहा है। हमारी क्रियाओं का हम घमण्ड न करें, गर्व न करें कि मैं करने वाला हूं, बस इतना ही समझें, हमारे भीतर से प्रभु ने ऐसा करवाया। हम उसके इन्स्ट्रेमेन्ट्स हैं, हम बांस की पोली पोंगरी हैं, उसने मुंह से फूंक मारी, हमसे गीत निकला। यह गीत बांसुरी का नहीं है, यह उस गायक का है।

गुरु नानक देव जी कहते हैं– 'एक ओंकार सतनाम, कर्त्ता पुरुष' और फिर कहते हैं– 'निरभउ, निर्बैर' उसे किसी का भय नहीं है और किसी से बैर भी नहीं है। क्यों? क्योंकि दूसरा कोई है ही नहीं। भयभीत होने के लिए दूसरा कोई होना तो चाहिए। और बैर के लिए, मित्रता के लिए, दुश्मनी के लिए कोई होना तो चाहिए। परमात्मा यानी सब कुछ 'द होल एक्जीस्टेंस', सर्वस्व। यानी सब कुछ उसमें इन्क्लूडेड है। तो उसके बाहर तो कुछ है नहीं, उसके अतिरिक्त कुछ है नहीं, वह एक ही है। एक ओंकार।

जब उसके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं तो भय किससे होगा? शत्रुता किससे होगी, मित्रता किससे होगी, अगर अकेले आप ही इस पृथ्वी पर हों? मान लो तीसरा विश्वयुद्ध हो जाए, सब खत्म हो जाए, केवल आप ही बचे संयोग से, क्या आपका कोई मित्र होगा? क्या आपका कोई बैरी होगा? कोई नहीं होगा। जब आप ही अकेले हो फिर तो भय की भावना का कोई सवाल ही नहीं आप किससे डरोगे? कोई है ही नहीं डराने वाला।

हमारी मित्रता, हमारी शत्रुता, हमारे भय, हमारे प्रेम, हमारी घृणा, हमारी करुणा, ये सब दूसरों से संबंधित हैं। कोई भी भावना वास्तव में हमारी नहीं है। किसी अन्य के कारण हमारे भीतर पैदा होती है। किसी को देखकर हमारे भीतर प्रेम उत्पन्न हो गया। कुछ मिनट पहले नहीं था, जब तक उसको नहीं देखा था। किसी को देखकर

हमारे भीतर गुस्सा आ गया। कुछ सेकेण्ड पहले नहीं था। उस व्यक्ति ने आकर कुछ कहा और हम आग–बबूला हो गए। क्या यह क्रोध हमारा है? यह दूसरे के द्वारा उत्पन्न हुआ है। अगर दूसरा हो हीं ना, फिर क्रोध भी नहीं होगा, न घृणा होगी, न वैमनस्य होगा, न कोई ईर्ष्या होगी, न कोई दुर्भावना होगी, न कोई सद्भावना होगी। तो परमात्मा निर्भय है, निर्बैर है क्योंकि कोई दूसरा है ही नहीं। वह एकमात्र है।

फिर आगे कहते हैं 'अकाल मूरत।' काल के दो अर्थ हैं। एक तो समय और काल का दूसरा अर्थ है मृत्यु। किसी की अचानक मृत्यु हो जाती है तो हम कहते हैं न कि काल के गाल में समा गए। संस्कृत भाषा ने अद्भुत किया है। इन दोनों को एक ही शब्द से व्यक्त किया है मृत्यु और समय। वास्तव में ये पर्यायवाची हैं।

जो भी चीज समय में जन्मी है, वह समयानुसार नष्ट भी हो जाएगी। हां, समय अलग–अलग हो सकता है। हो सकता है कि मच्छर का जीवन पंद्रह दिन का है, आज वह जन्मा है, पंद्रह दिन बाद मर जाएगा। उसका जीवनकाल पंद्रह दिन का है। एक बात पक्की है मर जाएगा। कुत्ते का जीवन काल लगभग बारह, तेरह साल है। जन्मा था, मरेगा। जो भी चीज बनी है, वह मिटेगी। हाथी की उम्र लम्बी है, सौ साल से भी ज्यादा है और पुराने समय में दूसरे प्रकार के जानवर हुआ करते थे जो अब नहीं रहे उनकी उम्र और लम्बी हुआ करती थीं तीन सौ, चार सौ साल। कछुआ अभी भी तीन सौ साल जीता है। लेकिन एक बात पक्की है कि तीन सौ साल बाद वह समाप्त हो जाएगा।

जिस चीज की शुरुआत हुई है, अंत सुनिश्चित है। तो समय और मृत्यु पर्यायवाची हैं। क्योंकि समय में जिस चीज का आगमन हुआ है, उसका प्रस्थान भी हो जाएगा। आपने एक मकान बनाया; हो सकता है मकान सौ साल रहे, दो सौ साल रहे लेकिन एक दिन ढह जाएगा। उसकी भी एक उम्र है, सीमा है। ठीक है किसी ने बहुत मजबूत बनाया ताजमहल, कि लालकिला हो सकता है हजारों साल रहे, क्योंकि बहुत मजबूत है। लेकिन हजारों साल बाद वह भी समाप्त हो जाएगा। हमेशा रहने को नहीं है। पिरामिड चार, साढ़े चार हजार साल पुराने हैं, बड़ी–बड़ी चट्टानों से बने हैं। लेकिन हमेशा नहीं रह सकते। हो सकता है एक लाख साल दो लाख साल रहें, किसी ना किसी समय नष्ट हो जाएंगे।

इस दुनिया में कुछ भी बचने वाला नहीं, यह दुनिया ही नहीं बचने वाली। वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि बड़े–बड़े तारे ब्लैक–होल्स में समा जाते हैं। गायब ही हो जाते हैं, पता ही नहीं चलता कहां गए? यू कैन नॉट ट्रेस आउट व्हाट हैपन्ड? विशाल तारे, हमारी पृथ्वी से साठ हजार गुना बड़ा सूरज है, और यह सूरज हमारी गैलेक्सी में धूल कण के बराबर भी नहीं है। वैज्ञानिकों ने इसकी भी उम्र का अंदाजा लगा लिया है। पृथ्वी बनी है चार अरब साल पहले और सूरज बना था दस अरब साल पहले। लेकिन

जिस चीज की शुरुआत हुई है, हो सकता है लम्बी उम्र हो सूरज की, दस अरब साल बीत गए, हो सकता है और सैकड़ों अरब साल रहे। लेकिन एक बात पक्की है कि एक दिन ठण्डा हो जाएगा। रोज–रोज ऊष्मा की किरणें, हीट रेज़, लाइट रेज़ बाहर निकल रहीं हैं। सूरज रोज छोटा होता जा रहा है, श्रिंक होता जा रहा है। वहां लगातार परमाणु विस्फोट हो रहे हैं, उसकी गर्मी है। परमाणुओं की गिनती कम होतीं जा रहीं है। अरबों साल बाद एक समय आएगा सूरज समाप्त हो जाएगा। सूरज से और करोड़ों–करोड़ों बड़े तारे हैं। अब तो बड़ी–बड़ी दूरबीनें बन गई हैं। बड़ा निरीक्षण हो रहा है और पता चल रहा है कि वे महातारे जो सूरज से भी करोड़ों गुना बड़े हैं, वे भी ब्लैक–होल्स में समा जाते हैं और गायब हो जाते हैं।

एक बात पक्की है; समय में जो भी जन्मा है वह समाप्त होगा। वह बच नहीं सकता। जन्म और मृत्यु आपस में जुड़े हुए हैं। एक डंडे के दो छोर हैं– जन्म और मृत्यु। क्या आप सोच सकते हैं एक छोर वाला डंडा? क्या ऐसा कोई डंडा हो सकता है जिसका एक ही छोर हो, दूसरा न हो? यह असंभव है, हो ही नहीं सकता। अगर एक छोर है तो दूसरा होगा ही होगा। तो जन्म और मृत्यु जीवन के दो छोर हैं, लेकिन परमात्मा का न तो जन्म हुआ और न ही मृत्यु हो सकती है। इसलिए वह अकाल मूरत, वह कालातीत, बियॉण्ड टाइम ऐन्ड बियॉण्ड डेथ है।

तो काल के ये दोनों अर्थ बड़े प्यारे हैं, मृत्यु भी और समय भी। और परमात्मा जो है वह ओंकार की ध्वनि, कभी शुरू नहीं हुई और कभी समाप्त नहीं होगी इसलिए वह अकाल मूरत अजोनी, किसी योनी से उत्पन्न नहीं हुई, उसकी कोई मां नहीं, उसका कोई पिता नहीं क्योंकि अगर वह भी जन्मी होगी तो वह भी समाप्त हो जाएगी।

मैं कुछ बोल रहा हूं, अभी मैंने कोई शब्द बोले, एक सेकेण्ड भी नहीं लगता और समाप्त हो गया। मैंने ताली बजाई, आवाज हुई, मुश्किल से एक सेकेण्ड टिकी और खत्म हो गई। जो चीज जन्मी है वह नष्ट होगी ही। अगर परमात्मा की भी कोई जननी है, कोई पिता है, कोई मां है, तब तो परमात्मा भी समाप्त हो जाएगा। नहीं! परमात्मा अजोनी है। वह कहीं से नहीं जन्मा, वह सदा–सदा से है। ऐसा कोई समय नहीं था जब वह नहीं था और ऐसा कोई समय नहीं होगा जब वह नहीं होगा। वह ओंकार की ध्वनि, वह युनिवर्सल साउंड शाश्वत और सनातन है। फॉर एवर, सिन्स फॉर एवर, नो बिगिनिंग, नो एन्ड।

हमारे सद्गुरु ओशो ने अपनी समाधि पर लिखवाया है– नेवर बॉर्न नेवर डाइड, ओन्ली विजिटेड दिस प्लैनेट अर्थ, ना कभी जन्में, ना कभी मरे, केवल इस पृथ्वी ग्रह पर इन–इन तारीखों के बीच में भ्रमण करने आए, घूमने–फिरने आए। शरीर तो एक दिन जन्मा था, 11 दिसंबर 1931 को और शरीर तो एक दिन मरा, 19 जनवरी 1990

को, यह किसके बारे में लिखवाया है नेवर बॉर्न नेवर डाइड?

अपने शरीर के भीतर, इस पुर के भीतर मौजूद उसी कर्त्तापुरुष के बारे में लिखवाया है कि उसका न कभी जन्म होता है, और न कभी मृत्यु होती है। वह अकाल मूरत, अजोनी, सैभम्, सैभम् यानी स्वयं–भू, कोई माता–पिता नहीं बस स्वयं हीं है, रहस्यमय! इसको कहते हैं रहस्य। इसलिए संतों को हम कहते हैं मिस्टिक यानी रहस्यविद्, ऋषि का मतलब होता है रहस्य को जानने वाला। अपने भीतर जब हम समाधि में डूबते हैं, तब इस महारहस्य का पता चलता है कि वह स्वयं–भू है। हमारे बाहर की दुनिया में, जगत में हम जो भी देखते हैं, जानते हैं उसके पीछे एक कार्य–कारण का सिद्धांत है। कोई भी चीज घट रही है, उसके पीछे कुछ कारण है। इसको हम कहते हैं– दि लॉ ऑफ कॉज ऐन्ड इफेक्ट।

अगर पानी भाप बन रहा है तो हमें पता है कि कहीं से गर्मी पैदा हो रही होगी, गर्मी की वजह से वह भाप बन रहा है। अगर ये घड़ी चल रही है, हमें पता है कि स्प्रिंग में पहले एनर्जी को भर दिया होगा, अब वही रीलीज हो रही है और कांटे को चला रही है। कोई चीज बिना कॉज के नहीं हो सकती।

हम इतने लोग यहां बैठे हैं। एक बात पक्की है, एक दिन हम नहीं थे, किन्हीं माता–पिता ने हमको जन्म दिया है। वो हमारे होने का कारण हैं। पृथ्वी है, तो हमें पता है इसका कारण है, सूरज से टूट कर ग्रह अलग हुए थे। सब चीजों का कुछ कारण है। गर्मी पड़ रही है, हमें पता है इसका कारण क्या है? ठण्ड के दिन आते हैं, हमें पता है कि मौसम कैसे परिवर्तित होता है? क्यों होता है?

विज्ञान इसी की खोज करता है, 'कॉज ऐण्ड इफेक्ट' की, कि एक आदमी बीमार है तो क्यों बीमार है? डॉक्टर इन्वेस्टिगेशन करेगा, पता लगायेगा, पता चल जाएगा कि मलेरिया के कीटाणु हैं, कि टी.बी. के कीटाणु हैं, यह है इसका कारण। कारण पता चल गया, फिर निदान हो जाएगा कि कैसे इसको ठीक करें?

तो हम अपनी इन्द्रियों से जो भी जगत में देखते हैं, सब चीजें कार्य–कारण से चल रही हैं। सब चीजें, चाहे हमें पता हो या न हो। हो सकता है, हमें कई चीजें नहीं पता। विज्ञान के विकास से पहले हमें बहुत सी चीजों का पता नहीं था कि कैसे होता है? समझो आज से पचास साल पहले जब टी.बी. के कीटाणु की खोज नहीं हुई थी, तब तक हमें नहीं पता था कि टी.बी. की बिमारी कैसे होती है? कोढ़ की बीमारी कैसे होती है? जब तक लेप्रोसी की बिमारी का कारण हमें नहीं पता था, हम उसे समझते थे कि पुराने जन्मों के कर्मों का दण्ड भुगत रहा है कोई, या किए होंगे कोई पाप। अब हमें पता है कि ये सब बकवास है, एक छोटा सा कीटाणु है जिस वजह से यह बिमारी होती है, दवाई खा लो ठीक हो जाएगी। हमें ठीक–ठीक कारण पता चल गया। हर चीज का

कारण है, अकारण कुछ भी नहीं है।

लेकिन वह जो ओंकार की ध्वनि है, वह अकारण है। वह स्वयं–भू है। इसलिए उसको हम कहते हैं, रहस्य। रहस्य मतलब हम जिसके कारण का पता न लगा सके। यह पता लगाना संभव ही नहीं है। इसलिए हम रहस्यविद् ऋषि को कहते हैं– रहस्य जानने वाला। अंग्रेजी में कहते हैं– मिस्टिक। यह रहस्य दुनिया में कहीं बाहर नहीं है, यह हमारे अंतर्तम में मौजूद है। उस ओंकार की ध्वनि का कोई स्रोत नहीं है। अन्य सारी चीजों का स्रोत है। मैंने ताली बजाई थी तो आवाज हुई। आवाज कैसे हुई? दो चीजों की टक्कर से हुई। तबला बज रहा था कैसे? उंगली से तबले पर चोट पड़ रही थी। दो चीजें टकरा रही थीं, इसलिए। मैं बोल रहा हूं, मेरे होंठ, होंठ से टकरा रहे हैं, मेरी जीभ तालु से टकरा रही है। हवा वोकल कॉर्ड से, स्वर यंत्र से टकरा रही है, इसलिए ध्वनि पैदा हो रही है। दुनिया में जितनी भी ध्वनियां हैं, किसी टक्कर से पैदा होती हैं। हवा गुजरती है वृक्ष से तो पत्तों की सरसराहट होती है। हमें कारण पता है कि यह सरसराहट की आवाज क्यों आ रही है? हवा और पत्तों के कारण। दुनिया में जितनी भी आवाजें हैं, उनका कारण है किन्हीं दो चीजों की टक्कर।

परमात्मा की ध्वनि कैसे होगी? वहां दूसरा तो कोई है नहीं। वो एक ही है। तो किसी से टक्कर तो हो ही नहीं सकती, इसलिए उस ध्वनि को, ओंकार की ध्वनि को 'अनाहत नाद' कहा जाता है– अनाहत, आहत यानी चोट। हम कहते हैं न, अखबार में न्यूज पढ़ते हैं कि बस पुल से गिरी, चार मरे, बीस आहत। आहत यानी चोट। सारी ध्वनियां चोट से उत्पन्न हो रही हैं, आहत ध्वनियां है। एक ध्वनि ऐसी है जो अनाहत है, बिना चोट के पैदा हो रही है, उसका कोई कारण नहीं है, बस वह है। यह एक रहस्य है कि वह कैसे है? इसे हम कभी भी न जान सकेंगे।

गुरु नानक देव जी कह रहे हैं वह स्वयं–भू है, सैभम्। और कैसे उसे जानते हैं? उसका उपाय बता रहे हैं, गुरु प्रसाद। सद्गुरु की कृपा से। जो स्वयं उस ध्वनि को जानते हैं, वही दूसरे को भी बता सकते हैं। जो स्वयं उसे नहीं जानता वह दूसरों को नहीं बता सकता। दुनिया में हो सकते हैं वे बड़े–बड़े प्रकाण्ड पंडित हों, बड़े विद्वान हों, शास्त्रों के ज्ञाता हों, बड़े फिलॉसफर्स हों, ऊंचे–ऊंचे दार्शनिक सिद्धांतों की बात कर सकें, लेकिन वे अनाहत ध्वनि के बारे में नहीं बता पाएंगे। क्योंकि वे खुद ही नहीं जानते। तो जो जानता है, वही अपने शिष्य को बता पाएगा। गुरुकृपा से ही यह संभव है। किसी शास्त्र के अध्ययन से नहीं होगा, किसी सिद्धान्त के वाद–विवाद से नहीं होगा, किसी पण्डित से, किसी पुरोहित से, क्रियाकाण्ड से, त्याग से, तपस्या से, सेवा से, दान से, किसी चीज से नहीं होगा। इस ओंकारस्वरूप परमात्मा को जानने का केवल एक उपाय है, वह है– गुरु प्रसाद।

हम किसी ऐसे व्यक्ति के शिष्य बन जाएं जो स्वयं उसे जानता है, उसके साथ उठते–बैठते उसकी छत्रछाया में, उसकी बातें समझते हुए, उसके द्वारा बताए गए ध्यान के प्रयोग करते–करते एक दिन हम भी उस रहस्यमयी ध्वनि को सुन लेंगे। हमारा जीवन भी आनन्द से ओत–प्रोत हो जाएगा। बिना गुरु के यह बात नहीं बन सकती। कोई सोचे कि मैं किताबें पढ़–पढ़ कर खुद ही सीख जाऊंगा; तुम किताबें पढ़–पढ़ कर दुनिया भर की बातें सीख सकते हो, एक बात नहीं सीख सकते। संत कबीर साहब ने तो बड़ी मजेदार बात कही है। उन्होंने कहा है–

'कर्त्ता करे ना कर सके, गुरु करे सो होए।
तीन लोक नौ खण्ड में, गुरु से बड़ा ना कोय।।'

ऐसी विचित्र बात किसी ने नहीं कही, कहते हैं कि एक काम ऐसा है जो ईश्वर भी नहीं कर सकता, केवल गुरु ही कर सकता है। इसलिए कहते हैं 'तीन लोक नौ खण्ड में, गुरु से बड़ा ना कोय' परमात्मा को नींचे रखते हैं, गुरु को ऊपर रखते हैं। गुरु से बड़ा ना कोय। कर्त्ता करे न कर सके। वह कर्त्तापुरुष भी एक काम नहीं कर सकता। 'गुरु करे सो होए' यह काम गुरु के करने से ही होगा।

वह काम कौन सा है? वह है परमात्मा को जनाना, परमात्मा को बताना। परमात्मा स्वयं भी अपने आप को नहीं बता सकता। कबीर साहब ने बड़ी विचित्र बात खोजी, बिल्कुल सही बात खोजी, सुनने में अटपटा लगता है। लेकिन यह काम परमात्मा भी नहीं कर सकता। वह स्वयं, स्वयं को उद्घाटित नहीं कर सकता। यह गुरु प्रसाद से ही संभव है। गुरु के बारे में ऐसी महिमा किसी अन्य ने नहीं कही।

गुरु नानक देव जी ने भी गुरु की महिमा गाई है, अन्य साहिबानों ने भी गुरु की महिमा गाई है, कबीर साहब ने तो गजब ही कर दिया। कहा कि परमात्मा से ऊपर रखता हूं गुरु को, गुरु की कृपा से परमात्मा का ज्ञान घटता है। परमात्मा स्वयं भी यह कार्य नहीं कर सकता। अगर कर सकता तो कर ही देता। गुरु महिमा आत्यंतिक है, दि अल्टिमेट है।

आगे कहते हैं–

'आदि सचु जुगादि सचु।'

आदि यानी शुरुआत और जुगादी यानी जुग–जुग के बाद, समापन। वह ओंकार की ध्वनि आदि में भी सच थी और अंत में भी सच होगी। अगर कभी सृष्टि की शुरुआत हुई है, तो उसके पहले ही वह अनहद ध्वनि थी। और अगर कभी प्रलय हो गई और सब कुछ समाप्त हो गया तब भी एक चीज रह जाएगी वह है ओंकार की ध्वनि। उसके नष्ट होने का कोई उपाय नहीं है, हां सृष्टि एक दिन जन्मी थी। वैज्ञानिकों ने हिसाब–किताब लगा लिया है, कहते हैं करीब–करीब नौ बिलियन वर्ष पहले सृष्टि की

शुरुआत हुई है। हो सकता है उनका अनुमान बिल्कुल सटीक न हो, पर एक बात तो पक्की है कि कभी शुरुआत हुई थी। और जब शुरुआत हुई थी तो एक और बात भी पक्की है हो गई कि कभी न कभी समाप्त हो जाएगी। उस शुरुआत के पहले भी ओंकार की ध्वनि थी, समापन और प्रलय के बाद भी ओंकार की ध्वनि रहेगी।

' आदि सचु जुगादि सचु।
है भी सचु नानक होसी भी सचु।।'

ये आज भी सच है और सदा–सदा सच रहेगा। इस ओंकार के मिटने का कोई उपाय नहीं। आज भी वही सच है। और जो कुछ भी है, 'है भी सच', जो कुछ भी हमें दिखाई पड़ रहा है, व्हॉटएवर एक्जिस्ट्स, इट एक्जिस्ट्स बिकॉज़ ऑफ दिस ओम्। जो भी है अस्तित्व में वह इस ओम् के कारण ही है। ओम् का स्वयं कोई कारण नहीं है, बाकी सब ओम् के कारण है। तो ऐसा समझ लें कि बाकी सबका जनक, बाकी सबकी मां, ओंकार की ध्वनि है। ओंकार का स्वयं कोई माता–पिता नहीं, शेष सब उसी से बना है। सारी सृष्टि की रचना उसी से हुई है। 'है भी सच, नानक होसी भी सच।' अब आगे बहुत महत्त्वपूर्ण बात, इस पर गौर करिएगा। कहते हैं–

'सोची सोच ना होवई जे सोची लख बार।'

कहते हैं, तुम लाखों, करोड़ों बार उसके बारे में सोचो, विचार करो, चिंतन–मनन करो, वाद–विवाद करो, शास्त्र और ग्रंथ रट लो लेकिन उसका पता नहीं चलेगा। और इसलिए अक्सर ऐसा होता है, जो विद्वान किस्म के लोग हैं, किताबों में जिनका भरोसा है, वे परमात्मा से चूक जाते हैं। कबीर और दादू जैसे अनपढ़ लोग ईश्वर को पा लेते हैं। नामदेव और रविदास ओंकार को जान लेते हैं। और बड़े–बड़े विद्वान, बड़े–बड़े पण्डित नहीं जान पाते। क्यों? क्योंकि वे सोच–विचार में लगे हैं। वे ईश्वर के बारे में भी सोच–विचार कर रहे हैं, चिंतन–मनन कर रहे हैं। ब्रह्म के बारे में चर्चा कर रहे हैं, चर्चा करने से वह प्राप्त नहीं होगा। बल्कि उल्टा है, अगर हम चर्चा कर रहे हैं, हमारे शोरगुल में उसकी वह सूक्ष्म और बारीक ओंकार की ध्वनि हम नहीं सुन पाएंगे। उसके लिए तो हमारा शांत हो जाना जरूरी है। इसलिए–

'सोचै सोचि न होवई जे सोची लखवार।'

सोच–सोच कर उस ओंकार स्वरूप परमात्मा को आज तक किसी ने नहीं पाया। यह विधि नहीं है उसे पाने की। जितना ज्यादा सोच–विचार चलेगा, हमारा मन उतना ही कोलाहल से भर जाएगा। और परमात्मा का संगीत हमें सुनाई नहीं देगा। हमारा अपना ही शोरगुल हमारी खोपड़ी में चल रहा होगा। हजारों–हजारों विचार। और याद रखना अगर हमारे विचारों की गिनती बहुत बढ़ गई, ये सोच–विचार बहुत ज्यादा हो गया तो हम विक्षिप्त हो जाएंगे, पागल हो जाएंगे। पागल में और सामान्य

आदमी में सिर्फ स्पीड का फर्क है, विचारों की स्पीड। सामान्य आदमी जरा धीरे–धीरे सोचता–विचारता है, पागल बहुत तेजी से। हमारा मन थोड़ा सा चंचल है, बदलते हैं विचार हमारे। लेकिन वक्त लगता है। पागल के विचार फटाफट बदलते हैं, उसकी स्पीड बहुत तेज है।

समझो एक आदमी आपको मिले, बड़े प्यार से आपसे हाथ मिलाए, हैलो हाय करे, नमस्कार करे और गले मिले और तुरन्त एक थप्पड़ लगा दे आपको। तो आप क्या कहेंगे कि आदमी पागल है? अभी इतने प्यार से मिल रहा था, हाथ मिलाया और अचानक चांटा मार दिया, यह पागल है क्या? यही काम हम भी करते हैं, लेकिन हम थोड़ा समय लगाते हैं। आज अगर हमने दोस्ती का हाथ बढ़ाया है, तो हो सकता है दो–तीन साल बाद हमारा झगड़ा हो, तब हम चांटा मारें। हमारी स्पीड जरा स्लो है। जिससे हमारी दोस्ती हुई है, एक दिन उसी से हमारी शत्रुता भी हो जाती है, लेकिन उसमें काफी वक्त लग जाता है। पागल आदमी सोचता है कि जब यही करना है तो क्यों ना फटाफट निपटा दिया जाए?

'काल करे सो आज कर काल करे सो अब।'

हममें और पागल में कोई खास फर्क नहीं है, जहां तक सोच–विचार का फर्क है। हम थोड़े स्लो हैं, वह एक्सीलेटर दबा कर बैठा हुआ है, फटाफट कर रहा है। और कारण क्या है उसके पागल होने का याद रखना। बहुत ज्यादा सोच–विचार। जब आप किसी चिंता में ग्रस्त होते हैं, तब बहुत ज्यादा सोचते हैं। तब क्या आपको नहीं लगता है कि आप थोड़ा सनक रहे हैं, पगला रहे हैं? इसका मतलब विचारों की अगर स्पीड बढ़ गई तो हम पागल हो जाएंगे। विचारों की स्पीड जितनी कम होगी हम उतने शांत होंगे।

तो ये सोच–विचार जो हमें पागलपन में ले जाते हैं, परमात्मा तक तो नहीं ले जा सकते। गुरु नानक देव जी बिल्कुल ठीक कह रहे हैं–

' सोचै सोचि न होवई जे सोची लखवार।'

लाखों करोड़ों बार उसके बारे में सोचते रहो लेकिन उसका पता नहीं चलेगा। क्या हीरे के बारे में सोचने से हीरा प्राप्त हो जाता है? और क्या पानी के बारे में सोचने से प्यास बुझ जाती है? आप पानी के बारे में चाहे कितना भी सोचो, पानी की पूरी फीजिक्स, पानी की पूरी केमिस्ट्री, पानी का पूरा केमिकल फॉर्मूला, सब कुछ आपको पता हो जाए, क्या उससे प्यास बुझेगी? कभी नहीं बुझेगी। प्यास तो पानी पीने से बुझती है, सोचने–विचारने से नहीं।

ठण्ड के दिन आ गए और आप सोचें स्वेटर के बारे में और कोट के बारे में, क्या उससे ठण्ड मिट जाएगी? इससे सिर्फ इतना ही पता चलेगा कि आपका

दिमाग खराब हो गया है। स्वेटर के बारे में सोचने की जरूरत नहीं है, स्वेटर पहनने की जरूरत है; अगर ठण्ड लग रही है तो सोचने से क्या होगा?

तो प्यारे मित्रों, सोचने से तो कुछ भी नहीं होता है, कोई भी महत्त्वपूर्ण काम नहीं होता। जो कुछ महत्त्वपूर्ण है उसका हमें अनुभव करना पड़ता है। क्या मीठे के बारे में सोचने से आपको मिठास का अनुभव हो जाएगा? नहीं! मीठा चखना पड़ेगा। ठीक ऐसे ही परमात्मा को जानना पड़ेगा, और ओंकार को सुनना पड़ेगा। सोचने का सवाल नहीं है।

'सोचै सोचि न होवई जे सोची लखवार।
चुपै चुप न होवई जे लाइ रहा लिवतार।'

अब एक और विचित्र बात। न तो सोचने से होगा, न तो बोलने से होगा, न तो चर्चा करने से होगा। अब इसकी ठीक उल्टी बात रहे हैं गुरु नानक देव जी कि चुप हो जाने से भी नहीं होगा। क्योंकि सोचना, बोलना और चुप होना, ये सब हमारे तन-मन के ही फंक्शन्स हैं। मैं अभी बोल रहा हूं आप से, इसी मुख का प्रयोग कर रहा हूं, इसी कण्ठ का प्रयोग कर रहा हूं। मैं चुप हो जाऊंगा, बोलना भी मुख का फंक्शन है और चुप हो जाना भी। अभी आप बैठे हैं, आप के पैर आराम से रखे हुए हैं, आप चल कर आए थे। क्या चलना और बैठना दोनों ही पैर की क्रियाएं नहीं हैं? जब चल रहे थे तो वह भी पैर का ही एक फंक्शन था। और अभी बैठे हैं आराम से, यह भी पैरों का ही फंक्शन है। दोनों ही पैर के ही काम हैं। बोलना और चुप होना, दोनों ही हमारे शरीर का यह जो कण्ठ नाम का यंत्र है, गला है हमारा, यह इसका ही फंक्शन है। और परमात्मा का ज्ञान कहां होगा? अपने भीतर की आत्मा में डूब कर, अपनी चेतना में डूबकर, ध्यानस्त, समाधिस्त होकर। वह शरीर का फंक्शन नहीं है।

तो चाहे हम बोलें, चाहे चुप हो जाएं, इससे परमात्मा का ज्ञान नहीं हो जाएगा। एक योगी हैं, नाम सुना होगा आपने, मौनी बाबा कहलाते हैं। उनकी महिमा में लोग कहते हैं कि बारह साल से मौन हैं, कि बीस साल से मौन हैं, वे बोले ही नहीं। इस धोखे में नहीं रहना कि उनको कुछ मिल गया। न बोलने से मिलता है प्रभु, न चुप होने से मिलता है क्योंकि ये दोनों तो शरीर की क्रियाएं हैं।

वह तो मिलता है अंतर आत्मा में डूबने से, वहां भीतर सुनने से। इन कानों से सुनने से नहीं। भीतर एक अलग प्रकार का श्रवण घटित होता है। वहां ओम् की ध्वनि सुनाई देती है। इन कानों की उसमें कोई जरूरत नहीं है। बहरा आदमी भी सुन सकता है। अंधा आदमी भी देख सकता है प्रभु के प्रकाश को। उसमें आंखों का कोई फंक्शन नहीं है। हां, बाहर की रोशनी देखने के लिए ये आंखें चाहिए। अंधकार देखने के लिए

को समझो, तृष्णा दुष्पुर है। और भूखे रहने से भी परमात्मा नहीं मिलेगा। कई लोग हैं जो धर्म के नाम पर उपवास करते हैं। आज एक महिला से मैं कह रहा था कि गुरुद्वारे में चलिएगा। तो कहने लगी कि आज तो मैं नहीं जाऊंगी आज एकादशी का उपवास है।

अब यह सोच रही है कि उपवास करके कोई भारी महत्त्वपूर्ण काम कर रही है, इससे ईश्वर प्राप्त हो जाएगा कुछ। पागल हो तुम! भूखे मरने से ईश्वर कैसे प्राप्त होगा? न पेट भरने से मिलता वह, न वह भूखे रहने से मिलता है। न बोलने से मिलता है, न चुप रहने से मिलता है। ये सब शरीर के फंक्शन्स हैं। भोजन भी पेट में जाता है और भूखे रहोगे तब भी पेट ही भूखा रहेगा, इसका आत्मा परमात्मा से क्या लेना–देना? भोजन का ओंकार की ध्वनि से क्या लेना–देना? किसलिए भूखे रह रहे हैं? शरीर को कष्ट देने की कोई जरूरत नहीं है।

शरीर को उसकी सुख सुविधा दो। आराम से रहो। हां! परमात्मा को जानना है तो कुछ और करना होगा। क्योंकि भूख तो हमारी कभी मिटती ही नहीं। दुनिया की कोई वासना कभी तृप्त नहीं होती। आज तक किसी की नहीं हुई। बड़े–बड़े शहंशाह अशोक, अकबर, हिटलर और सिकंदर, कोई तृप्त मरा क्या?

सिकंदर के बारे में तो आपने सुना होगा। दुनिया का सबसे बड़ा विश्व विजेता, उससे बड़ा विश्व विजेता आज तक नहीं हुआ। जब उसकी मृत्यु हुई थी तो उसने कहा था कि मेरे दोनों हाथ अर्थी के बाहर लटके रहने देना ताकि दुनिया देख ले कि सिंकदर भी खाली हाथ जा रहा है, एक भिखारी की तरह। एक धूल का कण भी अपने साथ नहीं ले जा सकते। कोई वासना तृप्त नहीं होती।

'सहस सिआणपा लख होहि त इक न चलै नालि।'

हमारा सयानापन, हमारी होशियारी, हमारी तर्क–बुद्धि, यह भी काम नहीं आती। सच पूछो तो हमारी सारी चतुराई और होशियारी दुनिया में शोषण करने के लिए है। दुनिया के जितने भी बड़े–बड़े शोषणकर्ता हैं, जो लूट रहे हैं दुनिया को, उनके पास बड़ी चालाक बुद्धि है। उनके पास बड़ी तार्किक बुद्धि है। वकीलों को देखते हैं, तर्क से कुछ भी सिद्ध कर सकते हैं। अपराधी को निरपराध सिद्ध कर सकते हैं, किसी सज्जन पुरुष के ऊपर अपराध मढ़ कर उसे फंसा सकते हैं, उसको जेल करवा सकते हैं, उसे फांसी पर लटकवा सकते हैं। यह जो तर्क है, क्या यह तर्क–बुद्धि परमात्मा को पाने के काम आएगी?

गुरु नानक देव जी इन सारी बातों के माध्यम से क्या कह रहे हैं? ना बोलकर, ना चुप रहकर, ना तर्क बुद्धि से, ना भूखे रहकर, ना उपवास कर के, ना सोच–विचार कर प्रभु को पाया जा सकता है। सोचना–विचारना मन की क्रिया है, भूखे रहना, बोलना शरीर की क्रिया है। हमारे तन मन की ऐसी कोई भी क्रिया नहीं है, जिसके द्वारा हम प्रभु

भी आंखें चाहिए। लेकिन भीतर परमात्मा का प्रकाश जानने के लिए इन आंखों को कोई काम नहीं है।

तो इसी उदाहरण से आप समझ लें। न हमारे बोलने से मिलेगा प्रभु, न हमारे चुप होने से मिलेगा। ऊपर–ऊपर से हम चुप हो जाएंगे और भीतर मन संकल्पों, विकल्पों में डोलता ही रहेगा। भीतर विचार चलते ही रहेंगे। मुंह बंद करने से क्या होगा? असली सवाल है मन कैसे बंद हो? भीतर विचार कैसे बंद हो? और हम सजग होकर, जागरूक होकर भीतर मौजूद हों, तब हमें ओंकार का नाद सुनाई देगा। अगर विचारों का हल्ला–गुल्ला वहां चल रहा है, मन की सड़क पर से ये विचारों का ट्रैफिक गुजर रहा है, इस शोरगुल में ओंकार की ध्वनि सुनाई नहीं देगी। आप अपने घर में बैठे हैं, टेलीविजन चल रहा है, जोर से रेडियो चल रहा है, बच्चे शोर–गुल मचा रहे हैं, खेल–कूद कर रहे हैं, बाहर एक छोटी सी चिड़िया पेड़ पर बैठी है, खिड़की से उसकी आवाज आ रही है लेकिन आपको सुनाई नहीं देगी क्योंकि घर के भीतर ऑलरेडी इतना शोरगुल मचा हुआ है। अगर चिड़िया की आवाज सुननी हो तो टी.वी. बंद करना होगा। बच्चों से कहना होगा कि शांत हो जाओ। घर के अन्य लोगों से कहना होगा कि चुप! बिल्कुल शांत होकर जब सुनेंगे तब चिड़िया की आवाज सुनाई देगी। बड़ी महीन और बारीक आवाज है वह। परमात्मा की आवाज सूक्ष्म और अतिसूक्ष्म है। ओंकार की ध्वनि से ज्यादा सूक्ष्म कोई आवाज नहीं है। हम जितनी भी आवाजों को जानते हैं वे ओम् की तुलना में बहुत लाउड हैं, बहुत जोर की हैं।

ओम् का वॉल्यूम बहुत कम है। उससे और कम कुछ हो ही नहीं सकता। अगर उसे सुनना है तो हमें सब भांति के विचारों से छुटकारा पाना होगा। क्योंकि हमारे भीतर जो शोरगुल मचा है, इस पुर के भीतर, इस शहर के भीतर जो हल्ला–गुल्ला है, जो विचारों का शोरगुल है, भावनाओं को शोरगुल है, जब ये बिल्कुल शांत और चुप हो जाएंगे, आंतरिक मौन होगा भीतर, तभी प्रभु का संगीत 'ओंकार' सुनाई पड़ना शुरू हो जाता है। तो केवल मुख से चुप हो जाने से कुछ नहीं होगा। गुरु नानक देव जी कह रहे हैं– 'चुपै चुप न होवई जे लाइ रहा लिवतार।' सिर्फ ऊपर–ऊपर से चुप हो जाने से बात ना बनेगी। एक आंतरिक मौन घटित हो, मन बिल्कुल साइलेंट हो जाए। एक भी विचार नहीं हो और हम पूरी तरह जागे हुए, सचेत हों ताकि कोई भी सूक्ष्म चीज हमसे छूट न जाए। उस चैतन्यता की अवस्था में अचानक हमें सुनाई पड़ना शुरू हो जाता है। प्रभु का वह गीत ओम् जैसा है, प्रभु का संगीत 'ओंकार' का ज्ञान घटित होता है।

तो प्यारे मित्रों न सोच–विचार जरूरी है और न ही ऊपर–ऊपर चुप्पी साधना जरूरी है। जरूरी क्या है? भीतर आंतरिक मौन घटे ताकि प्रभु का संगीत सुनाई दे, हमारा हल्ला–गुल्ला बंद हो। 'भुखिआ भुख न उतरी जै बंना पुरीआ भार।' भूख यहां

प्रतीक है तृष्णा का, कामना का, वासना का, हमारे भीतर हजारों वासनाएं हैं, कामनाएं हैं, हम ये चाहते हैं, वो चाहते हैं। मिर्जा गालिब ने कहा न–

'हजारों ख्वाहिशें ऐसी कि हर ख्वाहिश पर दम निकले।
बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले।।'

हमारे दिल में हजारों ख्वाहिशें हैं, मजे की बात है कि हमारी कोई ख्वाहिश पूरी नहीं होती, कितना ही पूरा करने की कोशिश करो। भगवान बुद्ध ने कहा है 'तृष्णा दुष्पूर है' इसका अंत ही नहीं आता। एक आदमी के पास साइकिल है, वह सोचता है मोटरसाइकिल मिल जाए फिर मैं खुश रहूंगा। हो सकता है एक दिन कोशिश करे, वो धन कमाए और मोटरसाइकिल खरीद ले, लेकिन याद रखना खुश तब भी नहीं हो पाएगा। जिस दिन उसके पास मोटरसाइकिल होगी तब वह देखने लगेगा कारों की तरफ कि अरे इस दोपहिया वाहन से क्या होगा कम से कम फोर–व्हीलर तो हो। तब जाकर सुखी हो पाऊंगा। एक दिन कार आ जाएगी घर में तब भी यह आदमी खुश नहीं होगा। तब यह कहेगा कि मारुति कार भी कोई कार है, गरीबों की कार है? यह तो बेकार लोगों के पास होती है। बेकार लोगों की कार है। अरे कोई विदेशी मॉडल की कार हो, तब जाकर जरा प्रसन्नता होगी।

हमारी भूख खत्म ही नहीं होती। जो हमें मिल जाए हम उसी से अतृप्त हो जाते हैं। फिर हम सोचने लगते हैं कि ऐसा हो जाए फिर हम खुश होएंगे। मगर खुश हम होते कभी नहीं। जब वह मिल जाता है, हम फिर नाखुश हो जाते हैं और आगे की सोचने लगते हैं कि अब ऐसा हो जाए।

जगजीत सिंह की वो प्यारी गजल आपने सुनी होगी–

'दुनिया जिसे कहते हैं, जादू का खिलौना है।
मिल जाए तो मिट्टी है, खो जाए तो सोना है।।'

जब तक नहीं मिला, दूर से चमकता है सोने जैसा। और जैसे ही हमारे हाथ में आता है, हमारा हाथ बड़ा जादुई है, एकदम चमत्कारी हाथ है, जैसे ही इसमें आता है, सब खाक हो जाता है, मिट्टी हो जाता है, उसकी कोई वैल्यू नहीं रह जाती। फिर हमें दूर चमकता हुआ कुछ और नजर आता है। जब उसको हम पा लेते हैं, तब हम पाते हैं कि वह भी बेकार है। दुनिया के अमीर से अमीर आदमी भी तृप्त नहीं हैं, दुनिया के बड़े से बड़े 'नोबल प्राइज विनर्स' भी तृप्त नहीं हैं, दुनिया के बड़े से बड़े कवि, पेंटर और अभिनेता भी तृप्त नहीं हैं। दुनिया के बड़े से बड़े ज्ञानी, विद्वान और पण्डित भी तृप्त नहीं हैं। यह कैसी विचित्र भूख है, जो खत्म ही नहीं होती? हमेशा ऐसा लगता है कि कुछ कमी है।

गुरु नानक देव जी कह रहे हैं, यह भूख कभी समाप्त नहीं होगी। इसलिए प्रकृति

को पा सकें, कोई भी क्रियाकाण्ड ऐसा नहीं है जिससे प्रभु का मिलन हो।

प्रभु मिलन के लिए एक तीसरे आयाम में जाना होगा। हम केवल तन मन ही नहीं, एक तीसरा तत्व और है हमारे भीतर, उसका नाम है चेतना। हम इन तीन चीजों के कॉम्बिनेशन हैं– तन, मन और चेतन। तन सबसे बाहर है, उसके भीतर मन है और उसके भी भीतर बिल्कुल केन्द्र में चैतन्य है, कॉन्शसनेस। उस चेतना में ओंकार की ध्वनि गूंज रही है। तो ध्यान में डूबकर हमें अपने केन्द्र में स्थित हो जाना है। थोड़ी देर के लिए हम अपनी परिधि को भूल जाएं। आधे घंटे के लिए संसार को भूल जाएं, शरीर को भूल जाएं, मन को भूल जाएं, सारे सोच–विचार, चिंता–फिक्र आधे घंटे के लिए छोड़ दें। तब क्या बचेगा? तब केवल हमारे भीतर की जो कॉन्शसनेस है, वह प्रगाढ़ रूप से प्रकट होगी और उसके भीतर गूंजती हुई ओंकार की ध्वनि को हम सुनेंगे और तब हमारा जीवन धन्य–धन्य हो जाएगा। हम नाच उठेंगे, हमारा जीवन एक उत्सव हो जाएगा। सुन लिया वह महासंगीत जिसे सुनकर समाधि लग जाती है। तब हम भी गुरु नानक देव की तरह कह सकेंगे, अपने अनुभव से कह सकेंगे कि हां! 'एक ओंकार सतनाम'। बस एक ही है। वह ओम् है, वही उसका सच्चा नाम है, शेष सब झूठ है। गुरु नानक देव जी अब एक सवाल उठाते हैं। अभी तो उन्होंने बता दिया कि कैसे परमात्मा नहीं मिलेगा? बोलने से नहीं मिलेगा, चुप रहने से नहीं मिलेगा, उपवास करने से नहीं मिलेगा, खाना खाने से नहीं मिलेगा, सोचने–विचारने से नहीं मिलेगा। अब एक सवाल उठाते हैं कि–

'किव सचिआरा होईए'

फिर उस परम सत्य से भेंट कैसे होगी? हम जिन्हें तथाकथित धार्मिक क्रियाकाण्ड सोच रहे थे कि इनके द्वारा प्रभु की प्राप्ति होगी, उनको तो उन्होंने इन्कार कर दिया कि इनसे नहीं होगी। न मंदिर जाने से होगा, न तीर्थयात्रा करने से होगा, न गंगा स्नान करने से होगा। इनसे प्रभु प्राप्ति नहीं होती। हम जिन–जिन को धार्मिक कृत्य समझ रहे थे, उनको तो उन्होंने क्रॉस कर दिया कि यह व्यर्थ है। अब सवाल उठता है फिर प्रभु मिलन कैसे होगा?

'किव सचिआरा होईए किव कूड़ै तुटै पालि।'

हम अंधकार में हैं, हम प्रकाश में फिर कैसे पहुंचेगे? क्या कोई उपाय ही नहीं है फिर? उपाय है, वरना गुरु नानक देव जी ने कैसे पाया? उपाय है, वरना संत कबीर साहब ने कैसे पाया? उपाय है, वरना सद्गुरु ओशो ने कैसे पाया? वह उपाय क्या है? तो पहली चीज तो पहले ही बता दी गुरु प्रसाद, गुरु की अनुकंपा और गुरु की अनुकंपा कौन ग्रहण कर पाएगा? जो शिष्य भाव में जीता है। गुरु जबरदस्ती किसी को कुछ नहीं दे सकता। हम लेने वाले बनें, हमारे पास झोली हो, पात्रता हो, हम ग्रहणशील

हों, रिसेप्टिव हों, तभी गुरु कुछ दे पाएगा।

केवल गुरु शिष्य का मिलन हो, तभी कोई सार्थक घटना घट सकती है। अकेला गुरु कुछ नहीं कर सकता है। और अकेला शिष्य भी कुछ नहीं कर सकता है। सारी दुनिया में शिष्य भटकता रहे, अगर किसी सद्‌गुरु से मुलाकात नहीं हुई, तो वह भटकता ही रहेगा, कुछ पा न सकेगा और अकेला सद्‌गुरु कितना ही करुणावान हो, कितना ही देने की कोशिश करे, अगर सामने वाला रिसेप्टिव नहीं है, ग्रहणशील नहीं है, तो गुरु किसी को नहीं दे पाएगा। वरना क्या एक बुद्ध की, एक महावीर की, एक नानक की करुणा में कमी थी, सारी दुनिया को दे जाते। लेकिन ऐसा नहीं हो पाता है।

गुरु नानक देव जी अपनी संतान तक को नहीं दे पाए, औरों की बात तो छोड़ो, कितना मुश्किल है? कोई लेने वाला तैयार हो तभी कोई दे सकता है। यह कोई ऐसी बात नहीं है कि जबरदस्ती दे दिया जाए, कि वसीयत में लिख दी कि जो परमात्मा मुझे मिला था, परमानन्द मैंने जाना था, चलो 50 परसेंट तुम भी ले लेना। लेकिन ऐसा नहीं होता है। यह अनट्रांस्फरेबल है; इसका हस्तांतरण नहीं हो सकता। यह तो एक बहुत इंटीमेट भावदशा में दिया जाता है, जहां गुरु शिष्य दोनों मौजूद होते हैं। एक लेने के लिए अपना हृदय खोल कर बैठा है, शांत, ध्यानस्थ, मौन। और दूसरा उलीचने को तैयार है। याद रखना गुरुदेव तो हमेशा ही देने को तैयार हैं, उनकी तरफ से कोई कंजूसी नहीं होती, तकलीफ कहां होती है? शिष्य की तरफ से होती है। गुरु की करुणा तो अपरम्पार है, वह तो सबको बांटने को तैयार है।

गुरु नानक देव जी ने इतनी यात्राएं क्यों कीं? कहां–कहां घूमे? पूरा हिन्दुस्तान घूम लिया, तिब्बत चले गए, नेपाल चले गए, लद्दाख चले गए, सोवियत रूस चले गए, यूरोप के देशों में चले गए, अरब देशों में चले गए। जहां–जहां तक जमीन जुड़ी हुई थी वहां–वहां चले गए; किसके लिए गए थे? शिष्य की खोज में। कोई लेने वाला मिल जाए। तो उनकी करुणा में तो कोई कमी नहीं होती, वह तो सबको लुटाना चाहते हैं क्योंकि यह संपत्ति ऐसी नहीं है कि लुटाने से कम होगी, इसमें कोई कमी नहीं होती।

एक जला हुआ दीया एक बुझे हुए दीये के पास आए तो बुझा हुआ दीया भी जल जाएगा। लौ छलांग लगा कर वहां भी जल जाएगी। लेकिन क्या जले हुए दीये में कुछ कम हो गया? नहीं! बुझे हुए दीये को तो जान आ गई, प्राण मिल गए समझो। जले हुए दीये का कुछ गया नहीं। तो गुरु का तो कुछ भी नहीं जाता वह तो सबको बताने को, लुटाने को तैयार है। लेकिन लेने वाले ही मुश्किल से मिलते हैं। तो गुरु प्रसाद से मिल सकता है लेकिन लेने की तैयारी चाहिए। ग्रहणशीलता चाहिए और अगली बात कहते हैं–

'हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि।'

प्रभु की मर्जी से, उसके हुक्म से, उसके आदेश से अपना जीवन जीना। उसकी रजा में राजी होना। हमारा अहंकार क्या कहता है कि मैं अपनी मर्जी से जिऊंगा, मैं ये चाहता हूं, मैं वो चाहता हूं, मैं ऐसा करूंगा, मेरी इच्छा पूरी हो। यह बात तो पहले ही आ गई कि हमारी भूख कभी मिटती नहीं, तृष्णा दुष्पूर है। जिसको यह बात समझ में आ गई कि तृष्णा दुष्पूर है, उसके जीवन से तृष्णाएं विदा हो जाती हैं, समाप्त हो जाती हैं। जो चीज कभी पूरी नहीं हो सकती, उसे हम पूरी करने की कोशिश क्यों करेंगे?

एक छोटी सी कहानी कह कर मैं अपनी बात पूरी करूंगा। एक अद्भुत आदमी हुआ मुल्ला नसरुद्दीन, सद्गुरु ओशो के प्रवचनों में आता है। वह एक सूफी फकीर था। एक युवक उसके पास आता था और कहता था कि मुझे कुछ ज्ञान दीजिए। कुछ परम सत्य के बारे में बताइये। आप इतने आनन्दित और शांत हैं, मैं भी होना चाहता हूं, कैसे होऊं? नसरुद्दीन उसको बहुत समझाने की कोशिश करता था लेकिन उसको कुछ पल्ले नहीं पड़ता था। वह युवक फिर दूसरे दिन आ जाता कि आप कहते तो बहुत अच्छा हैं लेकिन मुझे तो कुछ लाभ होता नहीं। नसरुद्दीन ने कहा कि ऐसा करो आज मैं तुम्हें सारा सीक्रेट बता ही देता हूं, लेकिन एक शर्त है, हम कुएं पर चलेंगे, मैं वहां पानी भरूंगा। शर्त यह है कि तुम बीच में कुछ बोलना नहीं। तुम बिल्कुल चुप रहना। अगर तुम बोले तो फिर बात खत्म, फिर हमारी शर्त टूट गई। फिर मैं तुम्हें वह परमज्ञान की बात नहीं बताऊंगा। उस युवक ने कहा– ठीक है, चुप रहने में मेरा क्या बिगड़ता है? तुम कुएं पर जा रहे हो पानी भरने, मजे से भरो, मुझे क्या लेना–देना, मैं चुपचाप खड़ा रहूंगा। नसरुद्दीन ने कहा ठीक है। नसरुद्दीन गया अपना घड़ा, बाल्टी, रस्सी लेकर कुएं पर। बाल्टी में रस्सी बांधकर कुएं में डाली। जब कुएं से वापस खींचने लगा, बस बाल्टी से तो छप, छप, छप, छप की आवाज आने लगी, जैसे पानी गिर रहा हो। उस युवक ने नीचे झांक कर देखा बाल्टी में छेद ही छेद थे। जब तक बाल्टी ऊपर आयी उसमें मुश्किल से दो इंच पानी बचा था। नीचे बड़े–बड़े छेद थे सब पानी गिर गया। नसरुद्दीन ने जल्दी से वह पानी घड़े में डाला। घड़े में पेंदी नहीं थी। देअर वॉज़ नो बॉटम। जैसे ही पानी डाला सब बह गया। नसरुद्दीन ने कहा अरे सारा पानी बह गया। उसने जल्दी से फिर बाल्टी डाली कुएं में। फिर खींचा, वह युवक तो कसम खा कर आया था कि बोलना नहीं है। लेकिन बड़ा बेचैन होने लगा कि आदमी कैसा है? बड़ी ताकत लगाता जल्दी–जल्दी खींचता फिर घड़े में डालता है। सारा पानी फिर बह जाता और यह थकता ही नहीं। फिर तीसरी बार, फिर चौथी बार, पांचवी बार होते–होते दस बार हो गया। अब उस युवक का धैर्य टूट गया। वह भूल ही गया कि मैंने कसम खाई है कि चुप रहूंगा। उसने कहा तुम सनकी हो! दिमाग तुम्हारा ठीक है? ये क्या कर रहे हो? नसरुद्दीन ने कहा तुम बोल गए, गेट आउट, तुमने शर्त तोड़ दी। अब तुमको वह सीक्रेट

बात नहीं बताऊंगा, परम ज्ञान की। भागो यहां से!

तो उस युवक ने कहा माफ करें, क्षमा करें। मैं भूल ही गया, मुझ से देखा नहीं जा रहा था, आप इतनी मेहनत कर रहे हैं लेकिन यह पानी तो कभी नहीं भरने वाला। बाल्टी में छेद है तो वह घड़ा तो कभी भरने वाला नहीं। घड़ा तो और गजब है ऊपर–ऊपर से दिख रहा है घड़े जैसा, नीचे कुछ है ही नहीं, बॉटमलेस है। नसरुद्दीन ने उस युवक को भगा तो दिया और कहा कि खबरदार अब मेरे पास आए। तुम जरा सा संयम नहीं रख सके। उस युवक को घर जाकर लगा कि मेरे बाप का क्या बिगड़ता था? वह कर रहा था पागलपन, तो करने देते, मैं चुप रह आता। लेकिन नहीं रह पाया, बड़ी गलती हो गई। उसको लगा कि फकीर ने जरूर मुझे कुछ शिक्षा देने की कोशिश की है, मैं समझ नहीं पाया। इतना पागल तो यह नहीं है, इतनी बुद्धिमानी की बातें करता है, पहुंचा हुआ ज्ञानी फकीर है। जरूर मुझे कोई शिक्षा देने की कोशिश कर रहा था मैं पकड़ नहीं पाया।

हफ्ते भर बाद फिर आया, उसने क्षमा मांगी और कहा कि आपने जरूर मुझे कुछ सिखाने की कोशिश की है। लेकिन मुझमें अक्ल नहीं है, कृप्या मुझे बताएं कि आप क्या सबक देना चाहते थे?

नसरुद्दीन ने कहा कि मैं यही सबक देना चाहता था कि अगर तुम ठीक पात्र नहीं हो, तुम बे–पेंदी के लोटे हो तो तुम में कुछ भी नहीं डाला जा सकता। पिछले दो–तीन साल से तुम मेरे पास आ रहे हो। ऐसा नहीं है कि मैंने डालने की कोशिश नहीं की। मैंने तो तुम्हें सब कुछ देने की कोशिश की, लेकिन तुम्हारे अन्दर कुछ टिकता ही नहीं। तुम पहले अपनी पात्रता तैयार करो और इस पात्रता का जो सबसे पहला सूत्र है गुरु नानक देव जी कहते हैं कि वह है– 'परमात्मा की मर्जी से जीना'।

विगत कुछ दिनों में आपसे जो चर्चाएं हुई हैं, वे कुछ सिखाने के लिए नहीं, बल्कि इस सत्य के प्रति जगाने के लिए हैं कि 'अहम्' नहीं, 'ब्रह्म' यथार्थ है। 'मैं–भाव' एक भ्रम है, इल्यूजन है। हर व्यक्ति, विराट समष्टि का हिस्सा है। जो हो रहा है वह संपूर्ण अस्तित्व की मर्जी से हो रहा है। इस तथ्य का अवलोकन करो। यह कोई सिद्धांत नहीं, वरन वास्तविकता है। इसे समझने शास्त्रों में मत समय गंवाना। सीधे जीवन का निरीक्षण करना– पक्षपात रहित होकर।

तब अभिमान धरासायी हो जाता है, अकड़ टूट जाती है, और भक्त नाच उठता है, गाने लगता है– 'हुकमि रजाई चलणा', फिर आता है समय उसके हुकुम में डूबने का। आनंदमग्न होने का। जो समझा है, उसे जीने का। चर्चा समाप्त, भक्ति आरंभ।

जय ओशो! जय ओशो! जय ओशो!